राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यत अखिल भारतीय तथा विशेषत. राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिबद्ध
विविध वाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावलि

प्रधान सम्पादक

पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर;
ऑनरेरि मेम्बर ऑफ जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटी, जर्मनी;
निवृत्त सम्मान्य नियामक (ऑनरेरि डायरेक्टर),
भारतीय विद्याभवन, बम्बई; प्रधान सम्पादक,
सिंघी जैन ग्रन्थमाला, इत्यादि

ग्रन्थाङ्क ६६

मत्स्य-प्रदेश की हिन्दी-साहित्य को देन

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

मत्स्य-प्रदेश की हिन्दी-साहित्य को देन

लेखक

डॉ. मोतीलाल गुप्त, एम. ए., पी-एच. डी.

रीडर हिन्दी-विभाग,

जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर.

प्रकाशनकर्त्ता

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्दे २०१९ भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८४ खिूस्ताब्द १९६२

प्रथमावृत्ति १००० मूल्य ७ ००

मुद्रक—हरिप्रसाद पारीक, साधना प्रेस, जोधपुर

RAJASTHAN PURATANA GRANTHAMALA

PUBLISHED BY THE GOVERNMENT OF RAJASTHAN

A series devoted to the Publication of Samskrit, Prakrit, Apabharamsa, Old Rajasthani-Gujarati and Old Hindi works pertaining to India in general and Rajasthan in particular

*

GENERAL EDITOR

PADMASHREE JINVIJAYA MUNI, PURATATTVACHARYA

Honorary Director, Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur; Honorary Member of the German Oriental Society, Germany, Retired Honorary Director, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay; General Editor, Singhi Jain Series etc. etc.

* *

No. 66

MATSYA PRADESH KI HINDI SAHITYA KO DEN

By

DR. MOTILAL GUPTA,
M A., Ph -D.
Reader, Hindi Department,
University of Jodhpur,
Jodhpur.

* * *

Published

By

The Hon Director, Rajasthan Prachya Vidya Pratisthana
(Rajasthan Oriental Research Institute)
JODHPUR (RAJASTHAN)

V. S. 2019] [*1962 A D*

सञ्चालकीय वक्तव्य



प्राचीन काल में राजस्थान के विभिन्न भाग विभिन्न नामो से प्रसिद्ध थे। उदाहरण-स्वरूप राजस्थान का उत्तरी भाग जाँगल, पश्चिमी भाग मरुकान्तार, दक्षिणी डूगरपुर-बांसवाडा का प्रदेश वागड, मेवाड का प्रदेश शिवि और मेदपाट, पुष्कर का क्षेत्र पुष्करारण्य, अर्बुदप्रदेश अर्बुदारण्य और अलवर-जयपुर का अधिकाश भाग मत्स्य कहा जाता था। महाभारत-काल में मत्स्य-प्रदेश का विराट नगर विशेष प्रसिद्ध था जहां पाण्डवो ने अज्ञातवास किया था। वीर अभिमन्यु की विवाहिता उत्तरा भी इसी विराट की राजकुमारी मानी जाती है। विराट के खण्डहर जयपुर-क्षेत्र में अब भी विद्यमान हैं और शिलालेखों में उत्कीर्ण जो अशोक की धर्मलिपियां भारत के इने-गिने स्थानो मे मिलती हैं उनमें एक विशिष्ट स्थान इस वैराट का भी है। इस प्रकार मत्स्य-प्रदेश हमारे देश में राजस्थान का एक अति महत्त्वपूर्ण और प्राचीन इतिहास-प्रसिद्ध भू-भाग है।

भारतीय स्वाधीनता के पश्चात् देशी रियासतो का एकीकरण प्रारम्भ हुआ तो मत्स्य-राज्य के अन्तर्गत अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली की रियासतें सम्मिलित की गईं। दिल्ली के निकट होने से मत्स्य-प्रदेश का भौगोलिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक दृष्टि से मध्यकाल में और भी विशेष महत्त्व रहा है। ब्रिटिश-शासन के विरुद्ध भरतपुर का स्वाधीनता-सघर्ष भारतीय और राजस्थानी इतिहास की एक गौरवपूर्ण घटना है जिसका हृदय-स्पर्शी चित्रण हमारे अनेक भाषाकवियों ने किया है।

मत्स्य-प्रदेश के शासको से प्रोत्साहन प्राप्त कर अथवा स्वान्त सुखाय अनेक साहित्यकारो और विद्वज्जनो ने सस्कृत, हिन्दी तथा राजस्थानी में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रथों के रूप में ऐसी रचनाएँ हमारे ग्रथ-भडारो में प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होती हैं जिनकी विधिवत् खोज, अध्ययन, सम्पादन और प्रकाशन का कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण है।

राजस्थान-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान का एक प्रधान उद्देश्य यह रहा है कि राजस्थान के विभिन्न भागो में हस्तलिखित ग्रथो की खोज की जावे और राजस्थान की साहित्यिक एव सास्कृतिक समृद्धि के विषय में आलोचनात्मक ग्रथ प्रकाशित किये जावें। इसी दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। राजस्थान के अन्य भू-भागो के प्राचीन हस्त-लिखित ग्रथो और साहित्य के विषय में प्रकाशन के लिए भी हम समुत्सुक रहेंगे।

विद्वान् लेखक श्रीयुत डॉक्टर मोतीलालजी गुप्त ने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पी-एच० डी० की उपाधि के लिए लिखा है। उन्होने इस कार्य के लिए मत्स्य प्रदेश के ग्रथ-भडारो का प्रत्यक्ष अवलोकन कर परिश्रमपूर्वक अनेक अज्ञात हिन्दी ग्रथो तथा ग्रंथकारो के विषय में जानकारी प्राप्त करके अध्ययन प्रस्तुत किया है। लेखक की दृष्टि प्रबन्धगत विषय के

अनुसार मुख्यत हिन्दी-ग्रथो और हिन्दी-ग्रंथकारो की ओर रही है जिससे मत्स्य-प्रदेश में रचित बहुत से संस्कृत तथा राजस्थानी भाषा के ग्रथो और उनके कर्त्ताओ का विवरण इस प्रबन्ध मे नहीं आ सका है। फिर भी मत्स्यप्रदेशीय साहित्य की एक रूपरेखा अवश्य तैयार हो गई है। श्रीयुत गुप्तजी ने कई दिनो तक प्रतिष्ठान की ग्रथ-सूचियो और ग्रंथों का निरीक्षण एव अध्ययन करके अपने प्रबन्ध में आवश्यक सशोधन और परिवर्द्धन भी कर लिए हैं।

आशा है कि विद्वज्जन प्रस्तुत प्रकाशन से पूर्ण लाभान्वित हो कर विद्वान् लेखक के परिश्रम को सफल बनावेंगे।

मुनि जिनविजय
सम्मान्य संचालक
राजस्थान-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान,
जोधपुर।

जोधपुर,
विजयादशमी, वि० स० २०१६



आमुख

प्रस्तुत प्रबन्ध का शीर्षक है "हिन्दी साहित्य को मत्स्य प्रदेश की देन"। निबन्ध का विषय चुना गया था साहित्य की उस अमूल्य निधि को देख कर जो हस्तलिखित पुस्तको, खोज-सूचनाओं अथवा मुद्रित पुस्तको के रूप में इतस्तत' बिखरी हुई पड़ी है। उस सामग्री के महत्त्व और उपयोगिता पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। अब तक हिंदी साहित्य के जो इतिहास लिखे गए हैं उनमे अधिकांशतया प्रधान लेखको, उनकी रचनाओ और इस साहित्य के समष्टिगत प्रभाव पर ही प्रकाश डाला गया है। विभिन्न जनपदों में जो साहित्य-सृजन हुआ उसके मूल्याकन पर जो ध्यान दिया जाना चाहिये था वह नहीं दिया गया। हाँ, इस सम्बन्ध मे डॉक्टर सत्येन्द्र का 'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन' एक अपवाद अवश्य है। परिणाम यह हुआ कि यहा की बहुत सी मूल्यवान सामग्री अभी तक अप्रकाशित पड़ी हुई है। इस प्रसग मे मत्स्य प्रदेश की अपनी एक विशेषता है। इस जनपद का अधिकाश भाग ब्रज भाषा-भाषी है। शेष में शुद्ध ब्रज भाषा का प्राचुर्य न होते हुए भी उसका समुचित प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। फिर सामन्तशाही समय में विभिन्न राज्यो के अन्तर्गत होने के कारण मत्स्य के प्रत्येक भाग में साहित्य को विभिन्न रूप मे राज्याश्रय प्राप्त हुआ। राज्याश्रय प्राप्त साहित्य भी अपना स्थान रखता है। राजस्थान की सास्कृतिक विकास योजना के साथ मत्स्य प्रदेश के इस साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रस्तुत निबन्ध इसी का प्रयास है कि राजस्थान के समष्टिगत साहित्य-योग में मत्स्य की सेवा का मूल्याकन प्रस्तुत किया जाये।

इस विषय पर अभी तक किसी भी जिज्ञासु ने प्रकाश नहीं डाला। इधर-उधर लिखे गए कुछ लेख नगण्य मात्र ही है। अतएव, उनका आभार मानते हुए भी यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय, उसकी सामग्री, प्रायः सभी मौलिक है और सामग्री के सभी अग मूल रूप में लेखक के अध्ययन का विषय रहे हैं। अपने प्रबन्ध से पूर्व प्रकाशित किसी भी सम्मति को बिना देखे और जाच किए प्रमाणित नहीं मान लिया गया है। मुंशी देवीप्रसाद एवं महेशचन्द्र जोशी ने अलवर और करौली के कुछ कवियो की कविता का सक्षिप्त परिचय, बहुत दिन हुए, लिखा था; परन्तु यह परिचय सामग्री की उपलब्धि के अनुपात मे इतना कम है कि अपने ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसका दूसरा कोई भी उपयोग नहीं रह जाता। भरतपुर के बैकुण्ठवासी महाराजा सवाई श्री कृष्णसिंहजी के राज्यकाल मे 'भारत वीर' नाम का एक सुन्दर साप्ताहिक निकलता था। इस में कभी-कभी कुछ लेख मत्स्य प्रदेश के लेखको के विषय में निकल जाते थे। कुछ नए लेखको को भी इससे प्रोत्साहन मिलता था। परन्तु अद्यावधि कोई ऐसा मार्ग नहीं है जिसके द्वारा समस्त साहित्यकारो की रचनाओं का रसास्वादन कराया जा सके। अलवर से निकलने वाले 'तेज प्रताप' और 'अरावली' का भी केवल ऐतिहासिक महत्त्व ही रह गया है।

भरतपुर राज्य मे प्रचुर सामग्री वर्तमान थी। परन्तु खोज करने पर पता चला कि उसका अधिकांश भाग प० मयाशकर याज्ञिक द्वारा भरतपुर से बाहर गया और उसका

अभी तक कोई विशेष उपयोग नहीं हो पाया। 'याज्ञिक' जी के निजी संग्रहालय के रूप में वह प्रसिद्ध है। यही हाल उस सामग्री का हुआ जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से खोज कार्य की सूची बनाने वालो को दी गई थी। सच तो यह है कि इन दुर्घटनाओं के कारण आज के परिवार जिनके पास हस्तलिखित पुस्तकों का भंडार है अब किसी भी खोज करने वाले पर विश्वास नहीं करते और अपनी पुस्तकें दिखाने मे भी आना-कानी करते हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को भी इन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। आशंकापूर्ण वातावरण ने उसके मार्ग में अनेक शूलो को अंकुरित कर उसे पर्याप्त रूप मे कंटकाकीर्ण कर दिया। परन्तु प्रभु के प्रसाद से सभी विघ्न-बाधाएँ दूर होती चली गईं। मत्स्यप्रदेश वासी होने के कारण ही कदाचित यह संभव हो सका।

लिखित सामग्री की अभिव्यक्ति के प्रकरण में अनेक विचार सामने आये। कभी विचार हुआ कि सामग्री का विभाजन राजाओ अथवा आश्रयदाताओ के राज्यकाल के अनुसार किया जाये और इस प्रकार प्रत्येक काल के साहित्य का मूल्यांकन हो। परन्तु इसमें दुविधा यह थी कि मत्स्य के अन्तर्गत सभी राज्यों का पृथक-पृथक अन्वेषण करना पड़ता और यह विवेचन कभी पुनरुक्तियो से बच न पाता। दूसरा विचार यह उत्पन्न हुआ कि क्रमागत रूप से लेखकों और उनकी रचनाओं का विवरण दे कर फिर उसकी आलोचना की जाये। परन्तु यह शैली भी अधिक उपयोगी सिद्ध न हुई क्योंकि ऐसा करने से प्रबन्ध केवल 'नॉट्स' जैसा रूप धारण कर लेता। अन्त में यही उचित समझा गया कि विषय के अनुसार सामग्री को बाँट दिया जाये। इस प्रकार के विभाजन से समस्त सामग्री की क्रमागत प्रवृत्तियो का भी पता चल सकेगा और उनका मूल्यांकन करने में भी सुगमता हो जायगी। तीसरा लाभ यह होगा कि हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियो के दृष्टिकोण से अध्ययनकर्ता को यह भी मालूम हो सकेगा कि किसी भी प्रसंग में मत्स्य प्रदेश की देन क्या है? कितनी है? और कैसी है? वास्तव मे यही इस प्रबन्ध का लक्ष्य भी था। प्रबन्धकर्ता का विश्वास है कि इस प्रणाली द्वारा वैज्ञानिक अनुसंधान की रक्षा हो सकी है और व्यवहारिकता का भी निर्वाह हो गया है। फिर मत्स्य प्रदेश की जो विशेषता है वह भी सामने आ गई है। उदाहरण के लिए "अनुवाद"-प्रसंग। आलोच्य काल का यह प्रसंग बड़ा ही मधुर और महत्त्वपूर्ण है। आज जब अहिन्दी भाषा-भाषी अथवा अंग्रेजी के हिमायती हिन्दी साहित्य में प्राचीन संस्कृत ग्रन्थो के अनुवाद तक के अभाव की ओर इंगित करते हैं तो यह प्रकरण उन्हें एक प्रकार की चुनौती देता है। यह दुर्भाग्य की बात है कि अप्रकाशित होने के कारण यह सभी साहित्य जन-साधारण से दूर पड़ा है परन्तु इससे यह तो स्पष्ट है ही कि हिन्दी वालो ने उसकी अवहेलना ही नहीं की, उसके महत्त्व को भी नहीं समझा।

संक्षेप मे प्रस्तुत प्रबन्ध सामग्री की प्रचुरता, मूल पुस्तको के अध्ययन और परिणाम, सामग्री की अभिव्यक्ति एवं अब तक की प्रकाशित एतद्‌विषयी साहित्य के सदुपयोग आदि सभी दृष्टिकोणो से मौलिकता, गम्भीरता और विशदता के प्रयास का विनम्र दावा कर सकता है। प्रस्तुतकर्ता को तभी प्रसन्नता होगी जब विद्वद्वर्ग अपनी सम्मति से इस में दिए गए परिणामो को अपनी सहमति प्रदान करेगा।

मत्स्य प्रदेश में उपलब्ध इन विविध कृतियो का अध्ययन अनेक प्रकार से उपयोगी है—न केवल कुछ विशिष्ट कवियो के कृतित्व से ही परिचय होता है वरन् उस समय की प्रचलित साहित्यिक प्रवृत्तियो और विधाओ का भी परिज्ञान होता है। साथ ही राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक प्रसगो पर भी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। राजस्थान का हस्तलिखित साहित्य प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होता है और कुछ लोगो ने इस ओर कार्य भी किया है। इस प्रसग में 'शिवसिह-सरोज', 'मिश्रबंधु-विनोद', 'राजस्थान का पिंगल साहित्य', आदि पुस्तको के नाम लिए जा सकते हैं परन्तु मत्स्यप्रदेश से सबधित सामग्री इन कृतियो में भी उपलब्ध नहीं होती और लगभग यही दशा नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों की है।

इस शोध-प्रबध में कुछ ऐसे कवियों का नामोल्लेख भी हुआ है जो मत्स्यप्रदेश के तो नहीं कहे जा सकते किंतु जिनका निकटतम सबध इस प्रदेश के राजाओं अथवा सामान्य जनता से रहा है, यथा—रसरासि, कलानिधि, देवीदास आदि। एक बात मैं और कह दूं। इस प्रबंध में मेरा उद्देश्य मत्स्य के सपूर्ण साहित्य का अनुशीलन नहीं रहा और न ऐसा सभव ही होता। मैंने तो इस बात की चेष्टा की है कि प्राप्त सामग्री में से ऐसा चुनाव किया जाय जिससे इस प्रदेश की प्रमुख काव्य-प्रवृत्तियो का परिचय मिल सके। इसी दृष्टि से कवियो की जीवन-सबंधी सामग्री का भी प्राय· अभाव मिलेगा। इस सबध में मैंने अपना दृष्टिकोण विवरणा-त्मक और आलोचनात्मक रखा है किन्तु अब मैं समझने लगा हूं कि भाषा-विषयक अध्ययन भी बहुत उपयोगी होगा। अलवर के जाचीक जीवण कृत 'प्रतापरासो' को इस दृष्टि से सपा-दित किया जा चुका है और भरतपुर के सोमनाथ सबधी काव्यो का भाषा-विषयक अध्ययन जारी है।

इस शोध प्रबध का निर्देशन-कार्य आचार्यवर डॉ० सोमनाथजी गुप्त, अवकाश प्राप्त प्रिंसिपल महाराजा कॉलेज, जयपुर तथा वर्तमान सचालक राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के द्वारा हुआ। मत्स्य प्रदेश के हस्तलिखित साहित्य में डॉक्टर साहब की रुचि बहुत समय से रही है और जब मैंने यह विषय प्रस्तावित किया तो आपने उसका प्रसन्नतापूर्वक अनुमोदन किया। अपने साथ कुछ हस्तलिखित ग्रथो का पाठ कराना, अनेक पते-ठिकाने बताना और हस्तलिखित ग्रंथो को उपलब्ध करने की युक्तियां बताना डॉक्टर साहब जैसे साधन-सम्पन्न व्यक्ति का ही कार्य था। यह एक सुखद प्रसग है कि इस प्रान्त के प्रमुख साहित्यकार का नाम भी 'सोमनाथ' ही है और अभी तक मैं इन सोमनाथजी में उलझा हुआ हूँ। अपने शोध-छात्रो को जो सुविधाए, प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन डॉ० गुप्त देते हैं वह अनुकरणीय है। इस स्थान पर इस विषय की ओर ध्यान आकृष्ट करने वाले स्वर्गीय पडित नन्दकुमार (सन्यास लेने पर बाबा गुरुमुखिदास) का कृतज्ञतापूर्वक नाम स्मरण करना भी आवश्यक है। वे कहा करते थे 'मत्स्य क्या भरतपुर के हस्तलिखित साहित्य पर ही दर्जनो शोध-प्रबंध प्रस्तुत किए जा सकते हैं।' यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकता है किन्तु यहां की सामग्री का यत्किंचित अनुशीलन करने के पश्चात मेरा भी मत है कि शोध-सामग्री यहाँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। स्वर्गीय पडितजी के व्यक्तिगत नोटो से मैंने काफी लाभ उठाया। इस प्रसग मे मेरे गुरुवर पं० मदनलालजी शर्मा, प्रसिद्ध अन्वेषक मुनि कान्तिसागरजी, स्व०

भरतपुर नरेश के पूज्य डीग वाले पंडितजी, पं० हरेकृष्ण, वैद्य देवीप्रकाशजी अवस्थी, पं० श्यामसुन्दर सांस्यधर आदि के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। श्री हिन्दी साहित्यसमिति, भरतपुर; राजकीय पुस्तकालय, भरतपुर; अलवर-म्यूजियम; अलवर-नरेश के व्यक्तिगत पुस्तकालय के अधिकारियों आदि को अनेक धन्यवाद देना भी मेरा कर्तव्य है। प्राप्त सामग्री का बहुत कुछ अंश इन्ही स्थानों से प्राप्त हुआ। भरतपुर के महाराजा व्रजेन्द्र-सवाई श्री व्रजेन्द्रसिंहजी तथा अलवराधीश श्री तेजसिंह जू देव के प्रति भी मैं विनम्र आभार अर्पित करता हूँ। इन विद्याप्रेमी नरेशों के सहयोग तथा सुझावो का अनेक स्थानों पर उपयोग हुआ है। मुझे कहा गया कि मेरे शोध-प्रबंध के परीक्षक मेरे आदरणीय गुरुवर डॉ० धीरेन्द्रजी वर्मा तथा आगरा हिंदी विद्यापीठ के डॉ० गौरीशंकर सत्येन्द्र थे। इन दोनो विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट सुझावों का यथा-संभव समावेश करने का प्रयास कृतज्ञतापूर्वक किया गया है।

इस कृति का प्रकाशन राजस्थान सरकार के राजस्थान प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा हो रहा है। संभवत. इस प्रतिष्ठान द्वारा किसी भी शोध-प्रबंध के लिए दिया गया, यह प्रथम सम्मान है। प्रतिष्ठान के सम्मान्य संचालक, विविध भाषाओं के अद्वितीय विद्वान और प्रसिद्ध खोजकर्ता मुनिवर पद्मश्री जिनविजयजी ने इस प्रबन्ध को अच्छी तरह देखने की कृपा की और राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित करने के लिए उपयुक्त समझा। उनके द्वारा मिला यह प्रोत्साहन मेरे लिए अत्यन्त मूल्यवान है। प्रतिष्ठान के उपसंचालक पंडित प्रवर गोपालनारायणजी बहुरा के अनेक मूल्यवान परामर्श तथा पुस्तक-प्रकाशन में अभिरुचि के प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। प्रवर शोध सहायक श्री पुरुषोत्तमलालजी मेनारिया ने अपने अथक परिश्रम द्वारा परिशिष्ट नं० १ तथा २ को उनका वर्तमान स्वरूप प्रदान किया, साथ ही प्रतिष्ठान के अन्य वरिष्ठ कर्मचारी भी इस कार्य में सहयोग प्रदान करते रहे – इन सभी के प्रति मैं आभारी हूँ। इस पुस्तक का मुद्रण-कार्य सुन्दर रूप में सम्पन्न कराने के लिए मैं साधना प्रेस के व्यवस्थापक श्री हरिप्रसादजी पारीक का भी कृतज्ञ हूँ।

—मोतीलाल गुप्त

हिन्दी विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय,
जोधपुर, तारीख ८ दिसम्बर, १९६२ ई०

समर्पण

अनेक हस्तलिखित ग्रन्थो के संग्रहकर्ता मेरे पूज्य पिता

दीवान श्री रामचन्द्रजी

तथा

स्नेहमयी जीजी (पूज्य माताजी) के चरणो मे

सादर समर्पित

—मोतीलाल गुप्त

विषय - सूची

सञ्चालकीय वक्तव्य

ग्रामुख

अध्याय १ – पृष्ठ-भूमि १ – ३०

मत्स्यप्रदेश की परम्परा और प्राचीनता – १, आधुनिक मत्स्यप्रदेश के चारो राज्य – ३, प्रदेश की विशेपताए – ५, यहा के देवता – ७, समीपवर्ती प्रदेश का प्रभाव – ८, अन्य प्रवृत्तिया – ९, प्रचलित भाषा और बोलिया – ९, प्रान्त के साहित्य और सस्कृति पर प्रभाव – १०, चारो राज्यो की एकता – १३, ब्राह्मणो की प्रधानता – १५, अन्य वर्ण – १५, पेशेवार – १६, मत्स्यप्रान्त की साहित्यिक परम्परा – १७, साहित्यिक सामग्री के स्थान – १९, कुछ पुराने साहित्यकार – २२, लालदास – २२, नल्लसिंह – २२, करमाबाई – २३, जोधराज – २३, हस्तलिखित ग्रन्थो की प्रचुरता – २५, अलवर और भरतपुर का सापेक्षिक महत्त्व – २८, अनुसधान के स्थान – २९।

अध्याय २ – रीतिकाव्य ३१ – ९२

हिन्दी मे रीतिकाव्य – ३१, काव्यसम्प्रदाय ३१, रससम्प्रदाय – ३१, अलकार-सम्प्रदाय – ३२, रीतिसम्प्रदाय – ३२, वक्रोक्तिसम्प्रदाय – ३३, ध्वनिसम्प्रदाय – ३३, मत्स्य के रीतिकार और उनकी प्रवृत्तिया – ३४, गोविन्द कवि – ४०, शिवराम – ४४, सोमनाथ – ५०, कलानिधि – ५७, बखतावरसिंह के राजकवि भोगीलाल . बखतविलास – ६५, सिखनख – ६८, हरिनाथ व विनयप्रकाश – ७०, रामकवि अलकारमजरी – ७४, छदसार – ७५, ब्रजचद शृगारतिलक ७७, मोतीराम ब्रजेन्द्रविनोद – ७८, जुगलकवि : रसकल्लोल – ८१ रसानद सिखनख – ८४, ब्रजेन्द्रविलास – ८६, सिद्धान्तनिरूपण की विशेषताए – ८९, कवि देव आदि के आगमन – ९१।

अध्याय ३ – शृगारकाव्य ९३ – १२०

शृगारकाव्य के अतर्गत सामग्री – ९३, मत्स्यप्रान्त मे भक्ति – ९३, लक्ष्मणसवधी शृगार – ९४, भक्ति की अपेक्षाकृत कमी – ९५, प्रेम का तात्विक निरूपण – ९६, देवीदास प्रेमरतनाकर – ९६, सोमनाथ : प्रेमपच्चीसी – ९८, बख्तावरसिंह : श्री कृष्णलीला – १००, मान कवि . शिवदानचन्द्रिका – १०४, चतुर कवि तिलोचन-लीला १०५, पद मगलाचरण होरी – १०५, भोलानाथ लीलापच्चीसी – १०९, वृजदूलह – ११०, वीरभद्र : फागुलीला – ११२, वदुनाथ . रासपचाध्यायी – ११४, राम कवि विरहपच्चीसी . ११६, रसानद रसानदघन – ११७, लोक-गीत – ११८, मत्स्यशृगार की विशेपताए – ११९।

अध्याय ४ – भक्तिकाव्य १२१ – १६८

मत्स्य की भक्ति के रूप – १२१, धार्मिक सम्प्रदाय – १२२, भक्ति के चारो रूप – १२४, रामकाव्य – १२६, हनुमाननाटक – १२६, रामकरुण नाटक – १२७, अहिरावणवधकथा – १२७, वलदेव कवि : विचित्र रामायण – १२६, कृष्ण-काव्य – १३३, दानलीला – १३३, नागलीला – १३४, अलीवख्श कृष्ण-लीलाए – १३५, वीरभद्र वृजविलास – १३६, रसनायक विरहविलास – १३८, रसरासि : रसरासिपच्चीसी – १४१, रामनारायण राधामगल – १४३, सोम-नाथ महादेवजी को व्याहुलो – १४७, रसानद गगाभूतल आगमन कथा – १५०, रामप्रसाद : गगाभक्ततरगावली – १५१, उमादत्त : कालिकाष्टक – १५३, उदय-राम . गिरवरविलास – १५४, ध्रुवविनोद – १५८, जुगलकवि : करुणा-पच्चीसी – १५६, चरणदासी साहित्य – १६०, भक्तिसागर – १६०, सहजो वाई – १६२, दया वाई – १६३, संतसाहित्य – १६५, गुलाममुहम्मद – १६७, मत्स्य की भक्ति और यहा के साहित्य की विशेष वातें – १६७ ।

अध्याय ५ – नीति, युद्ध, इतिहास-सवधी तथा अन्य १६६ – २२५

विविध साहित्य – १६६, युद्धसवधी – १७०, कथासाहित्य – १७१, इतिहास – १७१, अकवर कृत राजनीति – १७२, देवीदास राजनीति – १७२, हरिनाथ : विनयविलास – १७४, अकलनामा – १७५, वीरकाव्य – १७७, जाचीक जीवण प्रतापरासो – १७८, सूदन . सुजानचरित्र – १८३ खुसाल कवि : विजयसग्राम – १८८, दत्त . यमनविध्वसप्रकास – १६१, स्फुट छद – १६४, कथासाहित्य – १६८, अखेराम : सिंहासनवत्तीसी – १६८, विक्रमविलास – २०१, गगेस विक्रम – विलास – २०३, वैद्यनाथ : विक्रमचरित्रपचदण्डकथा – २०३, सोमनाथ सुजान – विलास – २०५, रामलाल . विवाहविनोद – २०६, गणेश कवि विवाहविनोद – २०७, इतिहाससवधी पुस्तकें – २१०, उदयराम सुजानसवत – २११, शिववख्श-दान अलवर राज्य का इतिहास – २१४, शिकारसाहित्य – २१८, सोभनाथ : सभाविनोद – २२०, लाल ख्याल – २२२, इतिहाससवधी साहित्य की विशेषताए – २२४ ।

अध्याय ६ – गद्य-ग्रन्थ २२६ – २४५

गद्य - प्रयोग के स्थल – २२६, कुछ निष्कर्ष – २२८, कलानिधि उपनिषत्सार – २२६, हितोपदेश – २२६, गोविंदानदघन – २३०, श्रीधरानद . साहित्यसारसग्रह चिंतामणि – २३१, विनयसिंह : भाषा-भूषण टीका – २३३, फितरत पोथी सिंहासन वत्तीसी – २३७, अकलनामा – २३६, वैरागसागर – २४१, हुक्मनामे, परवानें आदि – २४२, इनमे पाई जाने वाली कुछ विशेष वातें – २४४ ।

अध्याय ७ – अनुवाद-ग्रन्थ २४६ – २६२

अनुवादक्षेत्र मे कार्य – २४६, कलानिधि . युद्धकाण्ड – २४८, भाषा कर्णपर्व –

२४६, रसानद : सग्रामरत्नाकर – २५०, गीता के अनुवाद – २५४, सोमनाथ : भागवत दशमस्कध – २५५, कलानिधि : उपनिषत्सार – २५६ रामकवि हितामृत लतिका – २५७, देविया खवास : हितोपदेश अनुवाद – २५७, सुजानविलास – २६०, अनुवादसबधी कुछ बातें – २६० ।

अध्याय ८ – उपसहार २६३ – २७२

खोज के आधार पर कुछ निष्कर्ष – २६३, मत्स्य के गौरवपूर्ण प्रसग – २६३, नवधा भक्ति – २६४, बलभद्र की टीका – २६४, वस्तविलास – २६५, ध्वनि – प्रकरण – २६५, लक्ष्मण-उर्मिला-शृगार – २६५, प्रेमरतनाकर – २६५, विचित्र रामायण – २६५, राधामगल – २६६, व्याहुलो – २६६, तीन नाटक – २६६, लाल-ख्याल – २६६, इतिहासप्रधान वीर काव्य : अनुवाद – २६६, भाषा-भूषण की टीका – २६७, चरणदासी साहित्य – २६७, रामगीत – २६७, गद्यसाहित्य – २६७, मत्स्य की वीर गाथाए – २६८, भक्तिकाव्य – २६६, रीतिसाहित्य – २७०, मत्स्य का गद्य-साहित्य – २७१, लिपि-सबधी बाते – २७२ ।

परिशिष्ट – १ कविनामानुक्रमणिका २७३ – २८०

परिशिष्ट – २ ग्रन्थनामानुक्रमणिका २८१ – २८६

परिशिष्ट – ३ कुछ अन्य कवि २८७ – २६३

परिशिष्ट – ४ सहायक ग्रथों की सूची २६४ – २६६



बीकानेर
अलवर
जयपुर
जोधपुर
टोंक
आबू
कोटा
चित्तोड
उदयपुर

● राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के शाखा-कार्यालय।

× मत्स्य-प्रदेश के स्थान जहां लेखक ने हस्तलिखित ग्रन्थों का परीक्षण किया—
१ तिजारा, २ कामा, ३ डीग, ४ राजगढ़, ५ लछमनगढ, ६ सिनासिनी, ७ कुम्हेर, ८ भरतपुर, ९ बयाना, १० धौलपुर, ११ करौली, १२ हलेना और १३ अलवर।

मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन

[सन् १७५०-१६०० ई०]

अनुसधेय काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों का आलोचनात्मक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण

अध्याय १

पृष्ठभूमि

मत्स्य प्रदेश, चार राज्यों से मिल कर बना है—

१. अलवर,
२. भरतपुर,
३. धौलपुर तथा
४. करौली ।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् उपर्युक्त चारो राज्यो को मिला कर एक संयुक्त राज्य 'मत्स्य' के नाम से बना दिया था। कहा जाता है, इन चारो राज्यों का सयुक्त नाम 'मत्स्य' श्री कन्हैयालाल माणिक्यलाल मुशी के मस्तिष्क की उपज है। अब तो मत्स्य का भी विलीनीकरण हो गया और ये चारो रियासते राजस्थान का अग बन चुकी है।

मत्स्य-प्रदेश का वर्णन प्राचीन ग्रन्थो मे भी आता है और यह स्पष्ट है कि यह जनपद पहले भी था। इसकी स्थिति के विषय मे विभिन्न अनुमान है, किन्तु कुरुक्षेत्र एव मत्स्य को पाचाल तथा शूरसेन देश के अतर्गत मानना चाहिये। मनु के कथनानुसार उत्तर-पश्चिम भारत मे कुरुक्षेत्र वा थानेश्वर का निकटवर्ती प्रदेश, पाचाल या कान्यकुब्ज का अचल, शूरसेन वा मथुरा प्रदेश इन सब जनपदो के समीप ही मत्स्य देश था।[1]

महाभारत के भीष्म पर्व मे तीन मत्स्य देशो का उल्लेख मिलता है—

१. पश्चिम मे स्थित मत्स्य देश,
२. पूर्व मे चेदि (बुदेलखड) मे तथा
३. दक्षिण मे दक्षिण कोसल के निकट।

किन्तु मनु द्वारा प्रतिपादित मत अधिक मान्य है जिसमे आदि-मत्स्य का वर्णन

---

[1] मत्स्य सरकार द्वारा बनाई गई ऐतिहासिक कमेटी की रिपोर्ट। अपूर्ण तथा अप्रकाशित खोज पर लिखे कुछ पृष्ठो के आधार पर। (उपलब्धि-स्थान—श्री हरिनारायण [illegible], अलवर)।

किया गया है। इसी आदि मत्स्य देश मे पाडवो ने अज्ञातवास किया था। जयपुर राज्य के अतर्गत 'वैराठ'[१] और अलवर राज्य के अतर्गत 'माचाडी'[२], दो प्राचीन गावो के नाम क्रमश. 'विराट' तथा 'मत्स्य' के प्रतीक अब भी विद्यमान हैं। मत्स्य के समीप ही जिस कुशला जनपद का उल्लेख है[३] वह कुशलगढ भी माचाडी से वैराठ जाने के रास्ते पर है। महाभारत-कालीन कुरुक्षेत्र मे पटियाला से यमुना के पूर्व तक का देश भी इसमे शामिल था।[४] अलवर राज्य के उत्तरी भाग तिजारा तहसील आदि कुरुक्षेत्र के अतर्गत थे और शूरसेन के अतर्गत मथुरा के आस-पास का प्रदेश, व्रज, अलवर का पूर्वी हिस्सा, रामगढ, गोविन्दगढ आदि, भरतपुर, धौलपुर के राज्य तथा करौली का बहुत अंश था। यही कुरुक्षेत्र तथा थानेश्वर का प्रान्त मत्स्य कहलाता था। कुरुक्षेत्र से दक्षिण तथा शूरसेन के पश्चिम मे इसकी स्थिति थी। अतएव इन चार राज्यो को सम्मिलित करने पर 'मत्स्य' नाम बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ।

विराट देश अति प्राचीन है। इसका उल्लेख चीनी तथा मुसलमान इतिहासकारो ने भी किया है।[५] इस देश पर मुसलमानो के काफी हमले हुए और धर्म-परिवर्तन के लिए अत्याचार भी हुए। सम्राट अशोक के समय मे वैराठ नगर अति समृद्धशाली था। राव बहादुर चिंतामणि विनायक वैद्य ने इसे शूरसेन के पश्चिम मे माना है। शूरसेन की राजधानी मथुरा थी। वर्तमान विद्वानों ने यह मान लिया है कि राजपूताने का वैराठ ही आदि-मत्स्य या विराट देश है।[६] विराट और मत्स्य अति प्राचीन नाम है और उनका सम्बन्ध इसी स्थान से है। मत्स्य का इतिहास अति प्राचीन है। हमने इसका अभिप्राय ऊपर लिखे चार राज्यो से लिया है।

मत्स्य-प्रदेश के ये चारो राज्य अपना-अपना अलग ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। ये रियासते अधिक प्राचीन तो नही, किन्तु जितने भी समय का इनका इतिहास मिल सका वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भरतपुर तथा धौलपुर जाटो की रियासते थी, और अलवर तथा करौली राजपूतो की।

---

१ अलवर से जयपुर जाते समय मोटरो के रास्ते मे सीमा पर स्थित।

२ माचाडी अलवर राज्य मे ही है और यही से अलवर के राजाओ का विकास हुआ। यह गाव आजकल राजगढ तहसील मे पडता है।

३ महाभारत मे।

४ काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग २, अंक ३।

५ मत्स्य सरकार द्वारा बनाई गई ऐतिहासिक कमेटी की खोज।

६ हिन्दी विश्वकोष।

१. अलवर—अलवर का इतिहास काफी पुराना है, किन्तु अलवर के वर्तमान राजाओ की परम्परा सन् १७७५ से चली जब प्रतापसिहजी ने भरतपुर के जाटो से अलवर का दुर्ग छीन लिया। अलवर के राजा सूर्यवशी कछवाहे है। कुछ लोगो ने इनके वश को सतयुग से मिलाने की चेष्टा की है।[1] अलवर का दुर्ग बहुत पुराना और 'दिव्य' जाति का है।[2] किसी समय यहा जाटो का आधिपत्य था, किन्तु उनके उदासीन होने पर १७७५ मे प्रतापसिह ने किला छीन लिया। प्रतापसिह माचाडी[3] के जागीरदार राव मुहब्बतसिह के पुत्र थे। वे जयपुर तथा भरतपुर दोनो दरबारो मे रह चुके थे।[4] इन्होने राजगढ से अपना राज्य बढाना आरम्भ किया, सबसे पहला किला सन् १७७० मे राजगढ मे ही बनवाया। राव प्रतापसिहजी के कोई पुत्र न था, अत उन्होने थानागाजी से बख्तावरसिह को अपना उत्तराधिकारी चुना। बख्तावरसिह को महाराव राजा की उपाधि मिली। ये १८१५ ई. मे गद्दी पर बैठे थे। इनके उत्तराधिकारी बनैसिह अथवा विनयसिह कला और साहित्य के प्रेमी थे। इन्होने अनेक इमारते बनवाई। शिवदानसिह इनके पुत्र थे और उन्होने अपने पिता के पश्चात् १८७४ ई तक राज्य किया। मगलसिह पाचवे राजा थे और इनका समय सन्१९०० तक है। इनके पश्चात् महाराजा जयसिह राजा हुए और वर्तमान महाराजा तेजसिह[5] इनके बाद गद्दी पर बिराजे। अलवर की साहित्यिक चेतना बहुत जागरूक रही है, इसका कारण यहा के राजाओ की साहित्यिक अभिरुचि है।

२. भरतपुर—भरतपुर का इतिहास बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है। यहा की वीरता और दृढता की प्रशसा अग्रेजो ने भी मुक्त कठ से की है।

---

[1] पिनाकीलाल जोशी 'अलवर राज्य का इतिहास' (अप्रकाशित) दो भाग।

[2] दुर्ग सात प्रकार के होते हैं— १ गिरि दुर्ग, २ वन दुर्ग, ३ जन दुर्ग, ४ रथ दुर्ग, ५ देव दुर्ग और ६ पक दुर्ग तथा ७ मिश्र दुर्ग। (मानसार, १० अध्याय ९०/९१)
देव दुर्ग—
१ यह वर्षा आतप आंधी पानी से अप्रभावित होता है। इसकी दीवारो पर गणेश, गुह, श्री मन्दिर, कार्तिकेय, सरस्वती, अश्विनौ आदि उत्कीर्ण किये जाते हैं। (शिल्परत्न)
२ इसका निर्माण ऐसे स्थान पर किया जाना चाहिए जो प्रकृति से ही सुरक्षित हो। (एन् इसाईक्लोपीडिया ऑफ हिन्दू आर्किटेक्चर, वॉल्यूम ७, पृष्ठ २२९)।

[3] अनेक विद्वान् 'मत्स्य' का अपभ्र श मानते है। व्युत्पत्ति सदिग्ध अवश्य है।

[4] भरतपुर मे महाराज जवाहरसिह तथा जयपुर मे महाराजा माधोसिह के आश्रित रहे थे।

[5] इनकी निजी पुस्तकशाला मे अध्ययन और अनुसधान करने का अवसर मिला तथा कई अमूल्य, किन्तु अप्रकाशित पुस्तकें प्राप्त हुईं।

भरतपुर के अन्तर्गत वयाना, कुम्हेर और डीग तो वहुत पुराने बताये जाते हैं, तथा सिनसिनी[१] को कुछ लोग 'शौरसेनी' से सम्बन्धित करते हैं।[२] राज्य की स्थापना वदनसिंहजी द्वारा सवत् १७७५ मे हुई, जब उन्होने डीग को अपनी राजधानी बनाया। इन्ही के द्वारा कुम्हेर का शिलान्यास हुआ। अपने बडे लडके सूरजमल को डीग का और दूसरे लड़के प्रतापसिंह को वैर का शासक बनाया। वदनसिंहजी के ये दोनो ही पुत्र बडे साहित्यिक और विद्या-पारखी थे और अनेक कवि तथा विद्वानो को इनके यहा आश्रय मिला। वदनसिंहजी के उपरान्त इनके पुत्र सूरजमल या सुजानसिंह गद्दी पर बैठे। सन् १७३२ मे सूरजमलजी द्वारा भरतपुर को राज्य मे मिलाया गया। तब तक यहा खेमकरण सोगरिया का आधिपत्य था। भरतपुर जीतने के बाद राज्य का विकास होता रहा। प्रसिद्ध साहित्यिक रानी किशोरी इनकी ही पत्नी थी।[३] सूरजमलजी ने वहुत-से युद्ध किये और युद्धभूमि मे ही वीर गति प्राप्त की। इनके पुत्र जवाहरसिंह १८२० से १८२५ ई. तक राजा रहे। दिल्ली की चढाई और वहा की विजय इन्ही के द्वारा हुई। जवाहरसिंहजी के पश्चात् माधोसिंह और फिर दुर्जनसिंह गद्दी पर बैठे, किन्तु अगले प्रसिद्ध राजा रणजीतसिंह हुए, जो सवत् १८३४ से १८६२ तक राजा रहे। इनके पुत्र रणधीरसिंह ने १८८० तक राज्य किया। इनके पश्चात् बलदेवसिंह राजा हुये, जो स्वय एक प्रसिद्ध कवि थे। केवल तीन वर्ष राज्य करने के बाद इनके पुत्र बलवतसिंह सवत् १८८२ से १९०९ तक राजा रहे।[४] तदनतर प्रसिद्ध नीति-विशारद जसवतसिंह हुये, जिन्होने पूरे ४० वर्ष राज्य किया। हमारा काल यही तक चलता है। इनके पुत्र रामसिंह, फिर कृष्णसिंह और वर्तमान महाराजा ब्रजेन्द्रसिंह इस वंश मे राजा हुये।[५]

३ **धौलपुर**—यह दूसरी जाट रियासत है। इसका कुछ प्राचीन इतिहास भी मिलता है।[६] सन् ७९२ से १९६४ तक यहा तोमर राजपूत

---

[१] सिनसिनी के जाट ही भरतपुर के राजा बने। ये सिनसिनवार कहलाते है।

[२] ठाकुर देशराज, 'जाट जाति का इतिहास'।

[३] पडित गोकुलचन्द्र दीक्षित, 'ब्रजेन्द्र वशभास्कर'।

[४] भरतपुर के इतिहास मे कवियो के प्रसिद्ध आश्रयदाता। इनके समय मे मौलिक तथा अनूदित सभी प्रकार की कृतिया प्रस्तुत हुईं। अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थ भी लिपिवद्ध कराये गये।

[५] वर्तमान नरेश काव्य-प्रेमी हैं, इनकी पैलेस-लाइब्रेरी मे कुछ सुन्दर साहित्यिक सामग्री है।

[६] इम्पीरियल गजेटीयर ऑव इण्डिया, जिल्द ११।

राज्य करते थे। इस किले को सिकन्दर लोदी ने जीत कर मुसलमानी राज्य मे मिलाया। खानुग्रा की लडाई के पश्चात् यह मुगलो के हाथ ग्राया। भरतपुर, ग्रलवर पर चढाई करने वाला नजफखा सन् १७७५ मे यहा भी पहुँचा था। कुछ समय बाद धौलपुर मराठो के हाथ लगा। सन् १८०६ मे धौलपुर, वाडी, राजाखेडा ग्रौर सरमथुरा को मिला कर महाराज-राना कीरतसिंह को दे दिए गए। ये बमरोली के रहने वाले जाट थे ग्रौर कीरतसिंह यहा के प्रथम महाराज-राना थे। इन्होने १८०६ ई० से १८३६ तक राज्य किया। इनके उपरान्त भगवतसिंह राजा हुए, जो ग्रग्रेजो के बहुत भक्त थे। निहालसिंह इनके पौत्र थे ग्रौर उनका शासन १८७३ से १६०१ ई तक रहा। हमारा ग्रालोच्य काल भी यही तक चलता है। इनके पश्चात् इनके वडे लडके रामसिंह राजा हुए, तदुपरान्त उदयभानसिंहजी महा-राज-राना हुए। मत्स्य के प्रथम राज्यप्रमुख ये ही महानुभाव थे। यह स्पष्ट है कि धौलपुर ग्रौर उसका किला बहुत प्राचीन है, किन्तु ग्राज का धौलपुर सन् १८०६ मे ही ग्रपनी सीमा निर्धारित कर सका।[१] धौलपुर की साहित्यिक चेतना विशेष महत्वपूर्ण नही रही।

४. **करौली**—यहा के महाराज जादो राजपूत है। ये कृष्ण के यादव वश से ग्रपना सम्बन्ध स्थापित करते है। किसी समय इनका राज्य बहुत बडा था। ११वी शताब्दी मे यहा का राजा इतिहास-प्रसिद्ध विजयपाल था।[२] ग्रर्जुनपाल ने यह प्रान्त १३२७ ई० मे प्राप्त किया ग्रौर १३४८ मे ग्राधुनिक राजधानी करौली की स्थापना की। इस पर मुसलमान तथा मुगलो के ग्रधिकार भी रहे। सन् १८१७ मे करौली को मराठो से ले लिया गया ग्रौर करौली के राजाग्रो को दे दिया। सन् १८५० में नरसिंहपाल यहा के राजा हुए ग्रौर सन् १८५४ मे मदनपालजी को राज्य मिला। सन् १८८६ मे महाराज भवरपाल गद्दी पर बैठे ग्रौर इनके उपरान्त भोमपालजी तथा गणेशपालजी राजा हुए।

इन चारो राज्यो मे नीचे लिखी कुछ बाते समान रूप से पाई जाती हैं, जिनसे इस प्रदेश की सस्कृति एव साहित्य निरन्तर प्रभावित होते रहे ग्रौर यहा की एकता स्थिर रही।

---

[१] सिंधिया के साथ सुलह करते समय जब ग्रग्रेजो द्वारा उसे गोहद दिया गया था।

[२] 'विजयपाल रासो' की एक प्रामाणिक पुस्तक यहा उपलब्ध है।

१. यह प्रदेश शूरसेन, व्रज, का एक प्रमुख अग है, और यहा की साहित्यिक भाषा व्रज भाषा ही रही। इस प्रान्त के किसी भी भाग मे जो पुस्तके अनुसधान मे मिली, वे व्रज भाषा की थी। एक दो पुस्तको के गद्य मे 'काई' और 'छै' आदि मे कुछ राजस्थानी प्रभाव हैं, किन्तु सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य व्रज भाषा का ही है।

२ अन्य राज्यो की भांति यहा भी कवियो को राज्याश्रय मिलता रहता था। इतना ही नही, कुछ राजा तो स्वय कवि होते थे, काव्य-सम्वन्धी चर्चा करते रहना ही जिनका रुचिकर कार्य था। स्वतन्त्र तथा अनूदित रचनाएँ वरावर प्रस्तुत होती रहती थी। भरतपुर के वलवन्तसिह और कुछ अश तक अलवर के विनयसिह इस कार्य मे बहुत आगे बढ़े हुए थे।

३. इस प्रदेश का साहित्य व्रजमण्डल से बहुत प्रभावित था। मत्स्य का कुछ भाग तो व्रज के अन्तर्गत आ ही जाता है, जैसे—डीग, कामा। यहा का काफी भाग व्रज के सन्निकट है, जहाँ की साहित्य-प्रवृत्ति का अनुगमन यहा के कवियो द्वारा वरावर होता रहा।

४ मत्स्य के साहित्य मे सभी प्रकार की पुस्तके उपलब्ध हुई है, जिससे सिद्ध होता है कि यहा के साहित्यिको की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी और कुछ न कुछ कलात्मक कार्य वरावर चलता रहता था। अन्य कलाओ की अपेक्षा साहित्य-कला में अच्छा कार्य हुआ। वास्तु-कला के भी कुछ सुन्दर नमूने आज तक मौजूद हैं। डीग के भवन इसका उत्तम प्रमाण हैं।[१] इन्ही राजाओ द्वारा कुछ छत्रिया आदि भी वनवाई गई जो उनके पूर्वजो के स्मारको के रूप में हैं।[२] गोवर्द्धन की कुजे भी कुछ ऐसा हो प्रयास हैं।

५. इस प्रदेश के सभी राज्य वैष्णव मत के अनुयायी रहे, अतएव साहित्य पर इसका काफी प्रभाव पडा। शिवजी, हनुमानजी, गणेशजी, देवीजी, गगाजी आदि की उपासना समान रूप से होती रही और शिवस्तुति, हनुमाननाटक, गगाभूतलआगमनकथा जैसे ग्रन्थो का निर्माण हुआ। यह एक सामान्य-सी वात है, क्योकि वैष्णव और शैवो मे अधिक भेदभाव नही रहा है।

६. सन् १७५० से १९०० ई० तक का समय रीतिकाल के अन्तर्गत आता है, और यहा भी रीति-सम्वन्धी रचनाएँ अधिक मिलती हैं, अतएव मत्स्य प्रदेश

---

[१] मुगलकालीन वास्तु-कला से प्रभावित 'गोपाल भवन' आदि कई भवन डीग मे हैं।

[२] गोवर्द्धन मे अनेक सुन्दर स्मारक वने हुए है। भरतपुर के महाराजाओ की अत्येष्टि क्रिया यही होती रही है।

का यह साहित्यिक काल रीतिकाल के अन्तर्गत माना जाना चाहिए। इसमे सन्देह नही कि अन्य प्रकार का काव्य भी प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। इन विभिन्न प्रवृत्तियो का विश्लेषण और स्पष्टीकरण अगले कुछ अध्यायों में किया गया है। हिन्दी साहित्य मे रीतिकाल के अन्तर्गत जो भी प्रमुख प्रवृत्तिया उपलब्ध होती है, वे सभी मत्स्य-प्रदेश मे भी पाई जाती है।

व्रजभूमि के निकट होने के कारण यहा कृष्ण की भक्ति का बहुत प्रचार रहा। वैसे, राम और लक्ष्मण की भक्ति भी रही, और भरतपुर दरबार के तो इष्टदेव ही लक्ष्मणजी है। प्राय. मन्दिरो मे राम, कृष्ण तथा शिवजी की पूजा होती है। हनुमानजी के भी मन्दिर काफी हैं, किन्तु अपेक्षाकृत छोटे, क्योकि वे राम के सेवक है। अतएव स्वामी के जैसे वैभवपूर्ण मन्दिर त्यागी हनुमान कैसे पसन्द करते? इस प्रदेश के पास ही कृष्ण की क्रीडा-भूमि है, जो कभी करौली और कभी भरतपुर के आधिपत्य मे रही। आज भी मथुरा मे असकुण्डा पर भरतपुर की कोठी विद्यमान है। गोवर्द्धन, मथुरा, दाऊजी, गोकुल आदि बराबर अपना प्रभाव डालते रहे है। गोवर्द्धन तो भरतपुर महाराजा के इष्ट हैं और सात कोस की परिक्रमा लगाने का उत्साह आज तक राजपरिवार मे है। 'गिरवर विलास'[१] नामक पुस्तक से मालूम होता है कि किस प्रकार यहा भरतपुर के राजा ने अनेक स्थानो का निर्माण कराया और यहा का प्रसिद्ध दीप-दान प्रारम्भ हुआ।[२] व्रज के इन स्थानो से पण्डे बराबर आते-जाते रहे और उनकी कुछ साहित्यिक कृतिया भी अनुसधान मे मिली।[३] इन स्थानो मे राजाओ का आना-जाना भी बराबर बना रहता था और यहा के साहित्य तथा सस्कृति मत्स्य को बराबर प्रभावित करते रहे। आज भी मत्स्य-प्रदेश का एक बडा भाग व्रज से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, वही बोली, वही वेष-भूषा और वे ही रीति-रिवाज। मथुरा के चौबे राज्यो मे बराबर आते-जाते रहते थे और इनमे से कुछ तो दरबारो मे बराबर उपस्थित रहते थे।[४] व्रज से निकट होने के कारण यहा का वातावरण भी बहुत कुछ व्रजभाषा के अनुकूल बन गया था।

व्रज प्रांत मे व्रज भाषा के अनेक गौरव-ग्रन्थो का प्रणयन हुआ। हिन्दी के प्रसिद्ध अष्टछाप के कवि इसी प्रान्त मे थे और उनकी वीणाएँ यही निनादित

---

[१] भरतपुर के प्रसिद्ध कवि उदयराम कृत।

[२] इस विषय पर प्रकाशित लेखक का एक स्वतन्त्र लेख देखें—जीवन साहित्य, वर्ष १, अक ३।

[३] जैसे—पद मगलाचरण बसंतहोरी, तिलोचन लीला।

[४] उदाहरण के लिए भरतपुर नरेश बलवन्तसिंह के दरबार मे जीवाराम चौबे।

हुई। गद्य और पद्य दोनो प्रकार का साहित्य निर्मित हुआ। हिन्दी काव्याकाश के सूर्य, सूर और भ्रमरगीत को माधुर्य-परिपूरित करने वाले नन्ददास इसी प्रान्त की उपज थे। नन्ददास के भ्रमरगीत का बहुत प्रचलन था और उसका प्रभाव मत्स्य के अनेक ग्रन्थो मे पाया जाता है। प्रसिद्ध कवि केशवदास के पूर्वज भी भरतपुर राज्यातर्गत कुहेर के निवासी थे। कुछ समय पूर्व यहा के साहित्य का उद्धार तथा व्रज भाषा की प्रगति को वढाने के हेतु 'व्रज-साहित्य-मण्डल' की स्थापना हुई है और उसका अब तक का कार्य काफी प्रशसनीय है।

आगरा और मथुरा मत्स्य प्रान्त के समीपवर्ती नगर हैं। आगरे मे तो मुगलो का बहुत कुछ प्रभाव था और यहा के कुछ कवि, सम्भवत· राज्याश्रित भी थे।[1] इन कवियो का पास के राज्यो मे दौरा होता रहता था, तथा उनके ग्रन्थो का लिपिवद्ध करने का काम भी चलता था। कुछ कवि राज्यो के राज-कवि वन जाते थे और अपने आश्रयदाता के नाम पर रचना भी कर देते थे। कुछ राजाओ की तो शिक्षा के सम्बन्ध मे भी सन्देह है, और इसी कारण उनके द्वारा रीति-ग्रन्थो पर की गई अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण टीकाओ को देख कर आश्चर्य होता है।[2] आगरा प्रसिद्ध वादशाही नगर है और कुछ समय तो यह और इसके आसपास का प्रदेश भरतपुर के अधीन रहा था। अतएव यहा की साहित्यिक चेतना का मत्स्य-प्रदेश पर प्रभाव पडना स्वाभाविक ही है। मथुरा के साहित्य और सरकृति तथा कृष्ण की लीलाओ का भी मत्स्य साहित्य पर वहुत प्रभाव पडा।

हिन्दी साहित्य मे सन् १९०० ई० तक का काल रीतिकाल तथा गद्यकाल दोनो से सम्वन्धित है। १९वी शताब्दी के पिछले पचास वर्ष तो आधुनिक गद्य के कहे जा सकते हैं। परन्तु मत्स्य प्रान्त मे पाये गये ग्रन्थो का अनुसधान करने पर विदित होता है कि मत्स्य-प्रदेश मे १९०० ई० तक का सम्पूर्ण काल रीतिकाल के अन्तर्गत ही मानना चाहिए। यहा तो वही भाषा, वही साहित्यिक प्रवृत्ति, वही दरवारी रग-ढग और उसी प्रकार के साहित्यिक ग्रन्थ उपलब्ध होते है, जैसे रीति काल के अन्तर्गत। जिस समय अग्रेजो द्वारा खडी वोली गद्य के हेतु प्रयास किया जा रहा था और खडी वोली गद्य का एक स्वरूप बनने लग गया था, उस समय-मत्स्य प्रदेश मे वही रीतिकालीन पद्धति चल रही थी। हो सकता है, इसका एक कारण यहा की शिक्षा की कमी रही हो, क्योकि पिछले

---

[1] महाकवि राय, सुन्दर आदि।

[2] महाराजा विनयसिंहजी के नाम पर 'भाषाभूषण' की टीका।

बहुत वर्षो तक यहा का शिक्षा-प्रतिशत बहुत कम था। राज के कवियो मे भी अधिकतर उत्तरप्रदेश—मथुरा, आगरा प्रान्त से आते थे। इस समय के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि सोमनाथ मथुरा के रहने वाले मथुरिया चौबे अथवा माथुर चतुर्वेदी थे। इटावा,[1] आगरा,[2] आदि नगरो से बराबर कवि आते रहते थे जो रीतिकालीन ग्रन्थो की परम्परा को निभाने का प्रयत्न करते थे। अतएव हम यहा के साहित्य को रीतिकाल मे ही ले सकते है। वैसे यहा, भक्ति की अविरल धारा बही, और राम तथा कृष्ण की भक्ति का पूर्ण प्रचार होने से दोनो शाखाओ का काव्य उपलब्ध होता है। खोज मे हमे एक प्रेम-गाथाकार भी मिला और निर्गुण का प्रतिपादन करने वाले कुछ सत भी। किन्तु इनका निर्गुण सगुण से प्रभावित है, और सतगुरु, अनहद, माया आदि की बाते कहते हुए ये कृष्ण को भगवान् मान कर उनकी लीलाओ का भी वर्णन करते है।

यहां की साहित्यिक परम्परा का परिचय पाने के लिए हिन्दी के रीतिकाल को देखना चाहिए। इसके अतिरिक्त मत्स्य के काव्य मे वीर-रस का दर्शन भी अनेक पुस्तको मे होता है। इस प्रान्त मे कई 'रासो' या 'रासा' पाये गये और सूदन का 'सुजान चरित्र' तो वीर-रस का ख्यातिप्राप्त ग्रन्थ है। कृष्ण की लीलाओ से अन्य स्थानो की भाँति इस प्रदेश मे भी अनेक पुस्तको के प्रणयन की प्रेरणा हुई। साथ ही कुछ 'मगल' भी लिखे गये, जैसे—पार्वतीमगल, जानकीमगल, और उसी आधार पर लिखा गया राधामगल। रुक्मिणीमगल तो पहले भी लिखे गये थे किन्तु 'राधामगल' इस प्रान्त की विशेषता है।[3] राजाओ एव राजकुमारो के हेतु सामान्य ज्ञान के लिए समय-समय पर लिखे कुछ ग्रथ भी मिलते हैं। ऐसे 'अकलनामे' भरतपुर और अलवर दोनो स्थानो मे मिले। हितोपदेश, आईने-अकबरी आदि के अनुवादो द्वारा राजाओ को राजनीति से भी परिचित कराया जाता था। हितोपदेश का प्रचलन बहुत रहा, और यहा के राजकुमारो के लिए अनेक 'विष्णु शर्मा' हुए जिनके गद्य-पद्यमय उपदेश यथेष्ट प्रचलित हुए।

भाषा के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि अलवर को छोड कर शेष प्रान्त की भाषा सामान्य रूप से ब्रज ही है। भरतपुर और करौली तो ब्रजभाषा के

---

[1] देव के पौत्र भोगीलाल अलवर राज्य के आश्रित थे।

[2] आगरा ताजगज के निवासी देवीदास करौली राज्याश्रित थे।

[3] गोसाई रामनारायण कृत। अन्य 'मगलो' के साथ राधामगल की एक ह लि प्रति डीग के एक वयोवृद्ध पुजारीजी के पास पाई गई।

गढ ही रहे हैं। इन स्थानो मे यही भाषा साहित्य तथा बोलचाल दोनो के काम आती थी। साहित्य के इतिहास मे यह एक सुन्दर उदाहरण है कि बोलचाल तथा पुस्तको मे एक ही भाषा का उपयोग एक ही समय मे किया जाय। साहित्यिक कार्य के लिए सर्वत्र व्रजभाषा का ही प्रयोग हुआ। विनयसिंहजी द्वारा लिखी गई भाषा-भूषण की टीका बहुत सुन्दर व्रजभाषा गद्य मे है। भाषा की ऐसी सुन्दर छटा बहुत कम देखने मे आती है। इसमे कोई सन्देह नही कि इस प्रान्त के ग्रन्थो को देखने पर स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि यहां की साहित्यिक भाषा निरन्तर व्रजभाषा ही रही। राजनैतिक दृष्टि से मत्स्य राजस्थान का अश है किन्तु इसके साहित्य पर राजस्थानी का कोई भी प्रभाव नही है। मत्स्य का अधिक भाग मथुरा और आगरा से अधिक मिलता-जुलता है, राजस्थान के अन्य भागो मे नही। मत्स्य और राजस्थान के अन्य प्रान्तो मे यह विभिन्नता स्पष्ट रूप मे देखी जा सकती है। जहा तक राजस्थानी का सम्बन्ध है, मेरे द्वारा किये गये अनुसधान मे कोई भी ग्रन्थ राजस्थानी के उपलब्ध नही हो सके। इतना ही नही, जो भी ग्रन्थ प्राप्त हुए, उन पर राजस्थानी का कोई प्रभाव भी लक्षित नही होता। इसका कारण न केवल व्रज-भाषा प्रान्त से निकटता है, प्रत्युत कवियो का प्रधानत व्रज-भाषा-भाषी होना है। कवियो मे राजस्थान-निवासी कवि न के बराबर थे। प्राय सभी कवि व्रजमण्डल से आये, फिर इनके द्वारा राजस्थानी का प्रयोग कैसे सभव होता। एक बात और भी है संभवत. उस समय व्रजभाषा के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा मे की गई रचना पसन्द भी नही की जाती। काव्य मे व्रजभाषा के लिए एक विशिष्ट स्थान है और इसी का मान-सवर्धन सभी को अभीष्ट था। कुछ वीरकाव्यो मे राजस्थानी का आभास केवल मूर्द्धन्य वर्णों के सयुक्ताक्षरो-सहित प्रयोगो तक सीमित है। शब्दो मे टकार, झनझनाहट, उग्रता आदि से ही कुछ लोग राजस्थानी मे खीचने का प्रयत्न करते हैं। उनके कारको, क्रियाओ तथा सर्वनामो का रूप देखने पर इस बात मे कोई सदेह नही रह जाता कि वे ग्रन्थ व्रजभाषा के ही हैं। अतएव मत्स्य-प्रान्त के इस काल मे साहित्य की भाषा व्रजभाषा ही रही, अन्य किसी भाषा का कोई भी प्रभाव दिखाई नही पड़ता।

मत्स्य प्रान्त के साहित्य और सस्कृति पर तीन प्रभाव स्पष्ट रूप मे दिखाई देते है:—

१. हिन्दुत्व का प्रभाव, जिससे जनसाधारण का जीवन और राजघरानो की परम्परा अधिकाश रूप मे प्रभावित है। यहा के मन्दिर, त्यौहार और

उत्सव, उपासना की प्रणाली आदि इसी प्रभाव के अन्तर्गत है। साहित्य मे भी प्रधान रूप से हिन्दू धर्म का प्रभाव दिखाई देता है। मानना पडेगा कि यहा का सम्पूर्ण भक्ति-काव्य इसी विचारधारा के अन्तर्गत है।

२ मुसलमानो का प्रभाव दरबारी प्रथा के रूप मे दिखाई देता है। जिस प्रकार मुगल सम्राट अपने मुसाहिबो के साथ दरबार किया करते थे, उसी प्रकार, वही दरवार, वही वेश-भूपा तथा रसूमात का अनुकरण सभी राजघरानो मे किया गया। साहित्यिक कृतियो में भी इस प्रभाव के दर्शन होते है, जैसे—मुगल सम्राटो के अनुसार किए गए दरबारो के वर्णन—लाल, वाज बटेर आदि के युद्धो का वर्णन (देखें 'लाल ख्याल')। शिकारो के भी विस्तृत विवरण प्राप्त होते है। कला पर मुगल-प्रभाव बहुत कुछ दिखाई देता है। राजस्थान के बहुत-से राजाओ ने मुगलो की आधीनता स्वीकार को और मुगल दरवारो का वातावरण लगभग सभी रियासतो मे आ गया। राजाओ के महल, दरवार हाल, राजाओ के चित्र आदि देख कर मुगल-कालीन सभ्यता के प्रभाव को मानना पडता है। साहित्य मे भी मुगलो और मुसलमानो के सम्पर्क से बहुत कुछ हुआ और मत्स्य-प्रान्त का साहित्य भी उसके प्रभाव से अछूता नही बचा। न केवल मुसलमान कलाकारो ने साहित्य-सृजन मे ही भाग लिया, जैसे—फितरत,[1] गुलाम-मोहम्मद,[2] अलीबख्श,[3] वरन् साहित्य की अभिव्यक्ति पर भी इसका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। निर्गुण-काव्य पर मुसलमानी प्रभाव बहुत कुछ पडा, और साथ ही शृङ्गार की कविता मे विलास की अभिरुचि मुगल दरबारो से ही ग्रहण की गई। उस समय के कवियो की वेश-भूषा भी मुगल राज्य के दरबारियो जैसी होती थी। इसके अतिरिक्त फारसी और अरवी के अनेक शब्द काव्य मे प्रयुक्त हुए। प्रसिद्ध नजफखा की लडाइयो के वृत्तान्तो मे मुसलमानो की वार्ता खडी बोली, उर्दू ही प्रतीत होती है।[4] अनेक रियासतो का राजकाज फारसी-उर्दू मे होता था। अतएव कोई कारण नही कि साहित्य भी इससे प्रभावित न होता। किन्तु एक बात अवश्य है कि कवियो ने इस अहिन्दू प्रभाव को पूर्णत. स्वीकार नही किया और न

---

[1] गद्यकार—सिंहासन बत्तीसी के रचयिता।

[2] प्रेम-गाथाकार—'प्रेमरसाल' के लेखक।

[3] कृष्णलीलाकार—मडावर के जागीरदार।

[4] सूदन—सुजानचरित्र।

अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को ही इसके अर्पित किया। उनकी अन्तरात्मा इस प्रभाव के विरुद्ध जिहाद की आवाज बुलन्द करती रही, और उस सभ्यता को हिन्दू सभ्यता मे विलीन करने का प्रयास करती रही।

३ अंग्रेजो का प्रभाव इतना स्पष्ट दिखाई नही देता। वैसे धीरे-धीरे सभी हिन्दू राजाओ ने उनकी आधीनता स्वीकार की, किन्तु मत्स्य राज्यो मे यह प्रभाव बहुत हल्का दिखाई देता है। इस सम्बन्ध मे भरतपुर की गाथा तो बहुत गौरवपूर्ण है। अनेक बार आक्रमण करने पर भी अंग्रेजो को भरतपुर का दुर्ग विजय करने मे सफलता नही मिली और लॉर्ड लेक को हर बार मुँह की खानी पडी। अन्त मे धोखे से भरतपुर का किला काबू मे किया गया। आज तक भी यह किला 'लोहागढ' नाम से प्रख्यात है। कविवर वियोगी हरि ने अपनी 'वीर सतसई' मे जाटो की इस वीरता का बखान करते हुए लिखा है—

> 'वही भरतपुर दुर्ग है, अजय दीर्घ भयकारि।
> जह जट्टन के छोकरे, दिए सुभट्ट पछारि।।'

फिर भी धीरे-धीरे इस नई विदेशी सभ्यता का प्रभाव पडता रहा। कई एक साहित्यकार तो अंग्रेजो की आज्ञा मान कर ऐसा साहित्य प्रस्तुत कर गये जो किसी भी राज्य के लिए लज्जा की बात हो सकती है। इसी प्रकार का अलवर राज्य का एक हस्तलिखित इतिहास महाराज अलवर की पुस्तक-शाला मे मुझे मिला।[1] राजनीति के कुछ अगो मे अंग्रेजो की छाप पाई जाती है। यह मानना पडेगा कि साहित्य मे इस विदेशी शक्ति का प्रभाव लडाइयो के कुछ वर्णनो को छोड कर अधिक नही पडा। साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव न पडने के दो कारण तो स्पष्ट ही हैं—

(अ) साहित्यकार अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य से परिचित नही थे।

(आ) राज्यो मे अंग्रेजो का आना-जाना बहुत कम रहा। मत्स्य के राज्य इस मामले मे काफी सजग रहे, और उन्होने अपनी मान-प्रतिष्ठा का ध्यान रखा।

परन्तु वैसे तीनो सभ्यताओ का सम्मिश्रण हुआ और सभ्यता का एक नवीन ही रूप बन गया जो ब्रिटिश भारत में अधिक व्याप्त था और राजस्थान में इतना अधिक नही। राजस्थान की साहित्य और सस्कृति की परम्परा मुसलमानी प्रभाव

[1] शिवबख्शदान कृत—दो जिल्दो मे।

से अवश्य ही न बच सकी और मत्स्य-प्रदेश मे भी यह प्रभाव देखा जाता है।

इस प्रदेश के ये चार राज्य, जाट और राजपूतो के है—भरतपुर मे सिनसिनवार जाट, धौलपुर मे बमरावलिया जाट, अलवर मे सूर्यवशी कछवाहे तथा करौली मे यादववशी राजपूत। मत्स्य-प्रदेश का जो वर्णन महाभारत तथा कई अन्य पुराणो मे मिलता है उसके आधार पर इन राज्य-परिवारो मे एक विचित्र शृखला मिलती है।[1]

राजा उपरिचर भारत के प्रसिद्ध सम्राट हुए हैं। इनकी राजधानी चदेरी थी। इनके पाच पुत्रो मे बडे बृहद्रथ मगध देश के राजा हुए। कुशाम्ब[2] कौशाम्वी के राजा हुए और मत्सिल 'मत्स्य' ढुढार देश के अधिपति हुए। प्रत्यग्रह और कुरु दो अन्य पुत्र थे। जब राजा मत्सिल ढुढार देश के राजा होकर आये तो उन्होने अपने नाम से इस ढुढार देश को 'मत्स्य देश' के नाम से प्रसिद्ध किया और मत्स्यपुरी नाम का नगर बसाया।[3] यह नगर आज भी राजगढ तहसील, जिला अलवर मे माचाडी नाम से स्थित है। यही स्थान अलवर के राजाओ की पुरानी बैठक है। आज भी वह स्थान देखा जा सकता है। राजा मत्सिल के समय मे इस नगर मे बौधेय, पौण्ड्रव, बच्छल आदि जातिया बसती थी।[4] प्राचीन तत्र-ग्रन्थो मे आजकल के जयपुर-अलवर राज्यो को मत्स्य देश के ही अतर्गत माना गया है। राजा मत्सिल ने यमुना और सतलज के मध्यवर्ती प्रान्त पर भी अपना अधिकार कर लिया और सतलज के तट पर 'मत्स्यवाट' नामक नगर बसाया, जिसे अब 'माच्छीबाडा' कहते हैं। कुछ लोग वर्तमान 'मस्लीपट्टन' का सम्बन्ध 'मत्स्यपत्तनम्' से स्थापित करते हैं। इस प्रान्त मे जो स्थान पाये जाते हैं, जैसे पाण्डुपोल, उनसे स्वत सिद्ध है कि विराट राजा का राज्य यही कही था और पाडवो का अज्ञातवास मत्स्य मे ही हुआ।

इस प्रदेश के राज्यो मे एक और घनिष्ठ सम्बन्ध भी उपलब्ध हुआ है।[5] राजा धर्मपाल यादव की तेरहवी पीढी मे राजा तहनपाल हुए थे। राजा

---

[1] मत्स्य-इतिहास द्वारा प्रस्तुत 'मत्स्य का इतिहास' नामक अप्रकाशित पुस्तक के आधार पर।

[2] भागवत मे इन्हें चेदि देश का ही राजा बताया गया है।

[3] महाभारत आदि-पर्व, अध्याय ६४, श्लोक ४५१ से पाया जाता है कि इन भाइयो ने अपने अपने नाम पर भिन्न-भिन्न नगर बसाये।

[4] जनरल कनिंघम बयाना राजवश की खोज।

[5] खीचियो के जागा मूकजी की बही के आधार पर।

तहनपाल के पन्द्रह पुत्रो मे से ज्येष्ठ मदनपाल के वशजो का राज्य धौलपुर में, उनमे से छोटे धर्मपाल का राज्य करौली मे और तीसरे भुवनपाल के वशजो का राज्य भरतपुर मे वताया गया है। यादववश या यदुवश से इस वात की पुष्टि होती है। जाट लोग अपने को यदुवशी कहते है। कहा जाता है कि जाटो मे विवाह करने के कारण ये लोग जाट कहलाये। करौली के राजा तो अब तक यादव राजपूत हैं। अतएव इन तीनो राज्यो मे एक ही वश की तीन शाखाएँ प्रतिष्ठित हैं।[1] प्रस्तुत भौगोलिक स्थिति के अनुसार, जो चित्र के आधार पर सन् १७५० ई० से अभी तक उसी रूप मे है, हम अपने प्रदेश को ब्रजमडल और मेवात, दो भागो मे विभाजित कर सकते हैं। साहित्य की दृष्टि से मेवात कुछ विशेष महत्त्व नही रखता। इसका कारण यहा के निवासियो का धर्म-परिवर्तन हो सकता है।[2]

ऊपर दिये विवरण के अनुसार मत्स्य-प्रान्त मे जाट और राजपूतो का होना तो आवश्यक है ही—ये ही राज-परिवार है। सिनसिनी और वमरौली ख्यातिप्राप्त स्थान हैं और इन स्थानो का इतिहास भी गौरवमय है। इनके अतिरिक्त इन राज्यो मे, विशेषत अलवर और भरतपुर मे, मेवो की सख्या काफी रही। मेव वे लोग हैं जो मुस्लिम काल मे हिन्दू से मुसलमान वनाये गये। इनके रीति-रिवाज हिन्दुओ से वहुत मिलते-जुलते है। विवाह के समय जहाँ मौलवी निकाह पढाता है वहाँ पडित फेरे भी डलवाते है। भरतपुर राज्य मे एक पडित 'काजीजी' कहलाते थे क्योकि उन्हे मुसलमानो के विवाह की दक्षिणा मिलती थी।[3] मेवो के नाम भी हिन्दुओ की तरह से ही होते है। स्त्रियो में 'चन्द्रवदनी', पुरुषो मे 'सूरज', 'नारान' इस प्रकार के नाम अब भी मिलते है। कालातर मे इन्हे 'सूरज खा' और नारान खा' मे वदल दिया गया। किन्तु आज तक मेवो की वहुत-सी वाते हिन्दुओ से मिलती-जुलती है। भारत का विभाजन होने से पूर्व मुस्लिम लीग का जो प्रचार हुआ उसके कारण मेवो की भावना परिवर्तित हो गई, उनमे कट्टरता आ गई और हिन्दुओ को वे अपना शत्रु समझने लगे। हमे वह समय याद है जव मेव तथा मुसलमानो के सम्मिलित लम्वे-लम्वे जलूस निकलते थे, जिनमे पाकिस्तान की माग की जाती थी। एक

---

[1] जनरल कनिघम—वयाना राजवश की खोज।

[2] कहा जाता है, मेव मेवाड के आदि निवासी थे। जव मीणे, भील, गूजर लोगो को मेवाड से निकाला तो वे आमेर के पहाडो मे आये और धीरे-धीरे फैलते गये। महमूद गजनवी के समय मे ये मुसलमान हुए और मेव कहलाये।

[3] इस प्रथा के अन्तिम काजी स्व० प० लक्ष्मीनारायण शास्त्री थे।

समय ऐसा भी आया जब 'मेविस्तान' का ख्वाब भी देखा जाने लगा। सन् १९४७ मे स्वतत्रता प्राप्ति के अवसर पर भरतपुर और अलवर मे मेवात मेवो से खाली हो गया था। अब पुन. मेव अपने गावो मे लौट आये है। इनके पश्चात् इस प्रान्त के निवासी ब्राह्मण, वैश्य आदि है। राज्य के साहित्यकारो मे ब्राह्मणो का प्राधान्य रहा, इसके कई कारण है—

१ कवियो के प्रति पूज्य भाव का निर्वाह ब्राह्मण शरीर के प्रति अच्छा होता है।

२ पठन-पाठन का कार्य ब्राह्मण परिवारो मे ही होता था, उन्ही के यहाँ पुस्तके रहती थी और उन्ही मे, उनसे मिलने वाली प्रेरणा।

३ पहले का बहुत कुछ साहित्य सस्कृत भाषा मे था और ब्राह्मण ही इस देव-वाणी के अधिकारी समझे जाते थे। अत साहित्य के क्षेत्र मे वे ही आगे रहे।

४ प्राय. भारत के सभी भागो मे ब्राह्मण ही राजकवि होते रहे। मत्स्य मे भी इसी प्रवृत्ति का अनुकरण किया गया।

साहित्य के क्षेत्र मे कुछ वैश्य और कायस्थ भी अवतरित हुए। इस अनुसधान मे थोडे ही ग्रथ ऐसे मिले जिनके रचयिता निश्चित रूप से ब्राह्मणेतर है, जैसे-बल्देव खण्डेलवाल, गोविन्द नाटानी, अजुध्याप्रसाद कायस्थ, चतुर्भुज निगम और रसानन्द जाट। काव्य-प्रतिभा राजघरानो मे भी मिलती है, जैसे भरतपुर के बल्देवसिंह और अलवर के बख्तावरसिंह। इस प्रान्त का बहुत-सा भाग हरिजनो से बसा हुआ है, जिनमे जाटवो (चमारो) की सख्या अधिक है। ये लोग अपने कार्य के अतिरिक्त खेती-बारी भी करते हैं। इन राज्यो मे मुसलमान भी काफी थे। मेव तो सब मुसलमान ही थे और इनमे लालदास जैसे धर्म-प्रवर्तक और साहित्यकार हुए। लालदासजी[1] का सप्रदाय लालदासी कहलाता है, ये लोग लालदास को ही मानते हैं। इनका उपदेश निर्गुण सतो का सा है। राम-नाम-जप एव कीर्तन को प्रधानता देते हैं। नम्रता, पवित्रता आदि का भी ध्यान रखते हैं। हिन्दू

---

[1] लालदासजी धोली दूब, अलवर, मे सवत् १५९७ मे उत्पन्न हुए। अलवर से १६ मील दूर बाबोली मे अधिक रहते थे। इनकी वाणी का संग्रह 'लालदासकी चेतावणी' के नाम से स्व० हरिनारायणजी पुरोहित द्वारा हुआ है। इनका 'मखदूम साहब' लालदासियो के लिए वेदसदृश है। भरतपुर के 'नगला' गाव मे इनकी मृत्यु हुई। लालदासी साहित्य पर इधर और भी कार्य हुआ है।

और मुसलमान दोनो को मिलाने की चेष्टा इनके द्वारा भी हुई। इनका कहना था—

> हिन्दू तुर्क को एक हीभाव। राह बनाई दोनो अजायब ॥
> हिन्दू तुरक एक सो बुझे। साहब सब घट एकहा सुझे ॥

अलीबख्श[1] जैसे उच्च घराने के मुसलमान भी साहित्य-सृजन मे भाग लेते थे।

कुछ ऐसे परिवार रहे हैं जिनको जीविका ही साहित्यिक रचना और दरबारो मे कवित्त-गायन पर चलती थी। राजस्थान के चारण और भाट विख्यात हैं। काव्य-कला इनका पेशा था—राजाओ की प्रशसा, उनका गुणगान, उनके पूर्व-पुरुषो की गौरवगाथा को दरबारो मे सुनाना। अलवर मे बारहट[2] और भट्ट[3] लोग इस कार्य मे बहुत आगे रहे हैं। भरतपुर मे चौबे[4] इस ओर सजग थे। साथ ही कुछ भाट और चौबदार इस ओर ध्यान रखते थे। इन लोगो का राज्य से सपर्क रहता था और उन्हे कुछ मासिक मिलता रहता था। राजकवि रखने की परम्परा बहुत प्राचीन है, किन्तु मत्स्य-प्रान्त के राजकवियो का क्रम-बद्ध पृथक् वृत्तान्त उपलब्ध नही होता, हाँ, कवियो का बहुत बडा प्रतिशत राज्याश्रित था। कुछ लोगो को तो अब तक थोडी-बहुत 'परवरिश' मिलती रही, किन्तु अब यह प्रथा धीरे-धीरे लुप्त होने लगी है।

इस प्रान्त के इतिहास पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि अलवर और भरतपुर के राज्य तो बडी विकट परिस्थितियो मे निर्मित हुए। इन राज्यो को स्थापित करने का श्रेय व्यक्तिगत वीरता को है। भरतपुर का राज्य महाराज बदनसिहजी ने १७३२ के लगभग स्थापित किया। यह समय घोर मार-काट का था और राज्य की स्थापना इधर-उधर से छीन-झपट कर की गई थी। इनके पिता चूरामन तो एक प्रकार से व्यवस्थित डाकू ही कहे गए हैं, किन्तु साथ ही एक वीर लड़ाका भी। बदनसिहजी के पश्चात् सूरजमल को तो लडाइयो मे अपनी जान ही दे दनी पडी। जवाहरसिह की वोरता का गुण-गान आज भी सर्वत्र होता है। इसी प्रकार अलवर के प्रतापसिहजी ने भी अपना

---

[1] यह 'राव' कहलाते थे और इन्हें मडावर की जागीर मिली हुई थी। अलवर नरेश ने लेखक को इनका परिचय 'प्रिंस अलीबख्श ऑव मडावर' कह कर दिया था।

[2] जैसे शिवबख्श।

[3] जैसे मुरलीधर भट्ट।

[4] सोमनाथ, वैद्यनाथ चौबे थे। आज तक इनका परिवार भरतपुर मे दानाध्यक्ष कहलाता है।

राज्य इधर उधर से छीन-झपट कर स्थापित किया। कहा जाता है—

अष्टादस बत्तीस मे, अरिमिर ढोल वजाय।
महाराज परतापसिह, गढ जीते सब धाय ॥[1]

धौलपुर और करौली की गाथा इतनी विकट नही है। इनके वर्तमान स्वरूप को बनाने मे अग्रेजो का हाथ रहा। करौली को १८१७ ई० मे मराठो से लेकर करौली के राजाओ को दे दिया, और इसी प्रकार सन् १८०६ मे धौलपुर का राज्य महाराज कीरतसिंह को दिया गया। इस प्रकार मत्स्य के राज्यो का आधुनिक निर्माण सन् १७५० से १८२० के अतर्गत हुआ और इस काल की साहित्यिक चेतना भी उसी प्रवृत्ति के अनुरूप रही। सन् १८२० से १९०० तक का समय अपेक्षाकृत शान्ति का था और इसमे अनेक प्रकार के काव्य-साहित्य की रचना हुई। साहित्य-सृजन की दृष्टि से यह प्रान्त बहुत महत्वपूर्ण है। अनुसधान मे मिली सामग्री के आधार पर तथा पुराने जानकार व्यक्तियो से वार्तालाप करने के उपरान्त मेरी यह धारणा है कि यहा का साहित्यिक वातावरण बहुत ही जागरूक रहा। यद्यपि यहा के राजाओ को निरतर युद्ध करने पडते थे, किन्तु कवि लोग भी अपना काम बराबर करते रहते थे। सूरजमल और जवाहरसिंह के समय मे भी, जब इन राजाओ को इतिहास-प्रसिद्ध युद्धो मे भाग लेना पडा, काव्य-रचना यथेष्ट मात्रा मे हुई। कुछ राजा तो स्वभाव से विद्या-व्यसनी थे और उनकी शक्ति तथा धन का सदुपयोग साहित्य की अभिवृद्धि मे होता था। उदाहरण के लिए भरतपुर के एक राजा बलवन्तसिहजी को ही लीजिए।[2] इनके समय मे साहित्य के विविध अगो की पूर्ति हुई। अनेक पुस्तको के अनुवाद हुए। बहुत-सी पुस्तकें लिपिबद्ध की गईं। कम से कम २५-३० साहित्यकारो के नाम प्राप्त होते हैं[3]—

१ महाराज बलवतसिंह स्वय. २ श्रीधरानन्द रीतिकार. ३ बलदेव, खण्डेलवाल वैश्य—विचित्र-रामायण के रचयिता. ४ गणेश—विवाह विनोदकार ५ रामकवि—रीति के सम्पूर्ण विषयो के लेखक ६ लक्ष्मीनारायण—गगालहरी ७ जुगल कवि—रसकल्लोल. ८ वैद्यनाथ—विक्रम-पचदण्ड-कथा ९ रूपराम—ज्योतिप-

---

[1] बहुत समय तक अलवर का राज-सकेत— 'गढ जीते सब धाय' ही रहा। कुछ ही वर्षों पूर्व महाराज जयसिंहजी ने इसे 'आत्मान सतत विद्धि' में परिवर्तित किया।

[2] इनका समय सन् १८२६ से १८५३ तक है।

[3] स्व० पडित मयाशंकर याज्ञिक की खोज मे भी इस समय के बहुत-से कवियो के नाम दिये गये हैं।

ग्रन्थो के लेखक १० रमानन्द—प्रसिद्ध कवि, अनेक ग्रन्थों के कर्ता ११ देविया खवास—रसानन्द के सेवक, राजनीतिकार १२ वटुनाथ—रासपचाध्यायी १३ रामकृष्ण—दानलीला १४ भोलानाथ कायस्थ—शकरशरण (शिवपुराण का भाषानुवाद) १५ ललिताप्रसाद—रामशरण ग्रन्थ १६ सेवाराम—नल-दमयन्ती चरित्र १७ गोपालसिंह—सग्रहकर्ता १८ मोतीराम—नायिकाभेद पर पुस्तक १९ मणिदेव—महाभारत के कुछ पर्वों के अनुवादकर्ता. २० व्रजेस—स्फुट काव्य २१ व्रजचन्द—शृ गार तिलक २२ व्रजदूलह—पद रचयिता २३ पशु-कवि—कृष्णगायन २४ देवीदास—सुधासागर २५ जीवाराम—प्रसिद्ध लिपिकार. २६ चतुर्भुज मिश्र—अलकार-आभा २७ गोपालसिंह ड्योढीवान—स्फुटपद २८ 'लाल-ख्याल' के रचयिता।

कला के अन्य अगो की दृष्टि से हम कोई और विशेष बाते नही पाते। कुछ भवनो के निर्माण की बात पहले कही जा चुकी है। दरबारो में चित्रकार और सगीतज्ञ कुछ तो अवश्य थे ही, किन्तु उनकी ख्याति इतनी नही हुई कि उनका कुछ विवरण दिया जा सके। अलवर तथा भरतपुर के म्यूजियमो में जो चित्र-सग्रह मिलते है उनसे इस दिशा मे कुछ प्रकाश पडता है, परन्तु कह नही सकते कि यह केवल सग्रह-कार्य है अथवा राजदरबारो मे किया गया यही के चित्रकारो का कृतिकलाप। यदि राजदरबारो मे भी कार्य हुआ होगा तो उनकी सख्या बहुत कम रही होगी। ऐसा मालूम होता है कि इन सग्रहालयो मे अधिक कार्य सग्रह का ही है। हाथीदात पर नक्काशी का काम, पत्थर की कारीगरी, मिट्टी के बर्तन आदि यहा की दस्तकारी के सुन्दर नमूनो में देखे जा सकते है, किन्तु इनका युग धीरे-धीरे बीतता जा रहा है और ये उद्योग भी नष्ट होते जा रहे हैं। जीविकोपार्जन का प्रधान साधन कृषि रहा और दूसरा सरकारी नौकरी। नौकरी के बहाने बहुत-से परिवारो का पालन हो जाता था। भरतपुर मे एक पलटन 'बाईसी'[१] कहलाती थी। कहा जाता है, इसमे किसी समय २२०० जवान थे। ये जवान बड़े विचित्र थे, जिनमे कुछ तो माता के उदर मे बैठे हुए भी जवानी प्राप्त कर लेते थे, और कुछ अपने दाह-सस्कार के उपरान्त भी हाजरी पाते हुए अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। इनकी वेश-भूषा निराली थी—अंगरखा, पाजामा और तुक्केदार पगडी तथा कमर मे बधी तलवार। इनको कुछ कार्य भी नही करना पडता था। इनका नाम रजिस्टर मे दर्ज हो जाता था और महिना समाप्त होने पर तनख्वाह मिल जाती थी। जनता की सामान्य प्रवृत्ति

[१] 'बाईस' शब्द जयपुर मे भी बहुत प्रचलित रहा—महाराज प्रतापसिंहजी को अपने दरबार मे सब तरह के गुणीजनों की बाईसी सग्रह करने का विशेष शौक था, जैसे—कवि बाईसी, वीर बाईसी, गधर्व बाईसी आदि—कर्णकुतूहल ५-१९।

धार्मिक थी। लोग बेईमानी नही करते थे। समय पड़ने पर व्यापार करने वाले बनिये भी तलवार पकड लेते थे। कुछ बनिया-परिवारो की कहानी तो बहुत ही ओजपूर्ण है।[1] और पेशे भी यथाक्रम चलते थे।

इस प्रान्त का बहुत कुछ साहित्य उपलब्ध है। यहा की साहित्यिक सस्थाओ मे काफी हस्तलिखित पुस्तके मिलती है। यह सभी सामग्री काफी पहले की एकत्रित की हुई है। आजकल तो खोज का काम कुछ अन्य प्रकार ही है, लुप्तप्राय, किन्तु सुन्दर साहित्यिक ग्रन्थो को एकत्रित करने की ओर कोई ध्यान नही दिया जाता। इसमे कोई सदेह नही कि यदि इस ओर थोडा भी ध्यान दिया जाय तो बहुत-से लुप्त साहित्य का उद्धार किया जा सकता है और हिन्दी साहित्य के भण्डार की अभिवृद्धि हो सकती है।[2] अपनी खोज के सिलसिले मे मुझे अनेक स्थानो पर जाना पडा, बहुत-सी सस्थाओ तथा व्यक्तियो के सग्रहालयो को देखने का भी अवसर मिला। भरतपुर का बहुत कुछ साहित्य वहा के राजकीय पुस्तकालय (अब जिला पुस्तकालय) तथा श्री हिन्दी साहित्य समिति मे प्रस्तुत है। राजकीय पुस्तकालय मे सग्रहीत सम्पूर्ण सामग्री भरतपुर राज्य के तोशाखाना से प्राप्त हुई थी। एक प्रकार से यह सग्रह राजाओ द्वारा ही किया गया है और कालान्तर मे पुस्तकालय को प्रदान कर दिया गया। श्री हिन्दी साहित्य समिति का हस्तलिखित साहित्य अनेक व्यक्तियो के कठोर परिश्रम का फल है। इस ओर विशेष परिश्रम करने वाले व्यक्तियो मे वैद्य देवीप्रकाश अवस्थी (अब स्वर्गीय) तथा पडित नन्दकुमार शर्मा (अब गुरुमुखिदास) के नाम लिये जा सकते है। हस्तलिखित पुस्तको को सग्रह करने का प्रथम प्रयास पडित मयाशकर याज्ञिक द्वारा हुआ और उन्होंने अपने निजी पुस्तकालय मे बहुत-सी हस्तलिखित प्रतिया एकत्रित की। भरतपुर की कुछ सामग्री अन्यत्र भी मिलती है, जिनमे महाराज भरतपुर का नाम प्रमुख है। सामग्री अव्यवस्थित है परन्तु काम की कई चीजे मिली। राज्य-परिवार से सम्बन्धित और भी कई व्यक्ति है जिनके पास

---

[1] इन वीर परिवारो मे हल्दिया वश विशेष उल्लेखनीय है। अलवर राज्य से सबधित खुशालीराम हल्दिया का वर्णन पढने योग्य है। जयपुर राज्य मे यह परिवार बहुत प्रसिद्ध हुआ और अलवर मे भी इस परिवार के लोग है। इस वंश मे आजकल जयपुर के राव नरसिंहदास हल्दिया प्रमुख हैं। हल्दिया वश की वीरता और राजनैतिक चातुरी इतिहास-प्रसिद्ध है। देखें—मेरे द्वारा सपादित तथा रा प्रा. वि प्र मदिर से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला 'प्रताप रासो'।

[2] प्रसन्नता का विषय है कि राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर इस सबध मे बहुत ही प्रशसनीय कार्य कर रहा है।

पुस्तको के सग्रह है, जैसे—रावराजा यदुनाथसिह, वृन्दावन वाले राजाजी, वैर वाले राजाजी।[1] प्राप्त सामग्री अव्यवस्थित और जीर्णावस्था मे मिली है।

अलवर मे सामग्री तो कम है किन्तु है अधिक व्यवस्थित। इसका सबसे बडा सग्रह अलवर म्यूजियम मे है। पहले पोथीशाला के नाम से एक सरकारी विभाग था किन्तु बाद मे यह सम्पूर्ण सामग्री म्यूजियम को दे दी गई।[2] महाराज अलवर का निजी पुस्तकालय अनेक सुन्दर हस्तलिखित पुस्तको से परिपूर्ण है। मैने कई दिन उनके 'विजय पैलेस' पर ही व्यतीत करके पुस्तकालय का अवलोकन किया और कुछ उपयोगी सामग्री मिली। अनुसधान के क्षेत्र मे पडित रामभद्र ओझा का नाम प्रमुख है। कवि जयदेवजी की शिष्य मण्डली भी जिसमे, पडित नाथूराम, पडित हरिनारायण किकर तथा व्रजनारायण आचार्य के नाम लिये जा सकते है, इस ओर अग्रसर हुई। कुछ साहित्य बारहठो के पास है और कुछ भट्ट लोगो के पास। यहा के अनेक कवि वारहठ हैं, जैसे–उम्मेदराम, रामनाथ, शिवबख्श, बख्तावरदान। जावली के ठाकुर साहब के पास कई पुस्तके मिली। तिजारा मे भी एक सग्रहालय था किन्तु उसकी सामग्री अब नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। वसवा, राजगढ आदि स्थानो मे भी सामग्री प्राप्त होती है किन्तु ऐसी अवस्था मे जिससे लाभ उठाना बहुत कठिन है।

इसी प्रसग में मन्दिरो का नाम भी लिया जा सकता है, जिनमे प्रधानता वल्लभकुली मन्दिरो की है जहा कृष्ण साहित्य मिलता है। कामा के प्रसिद्ध चन्द्रमाजी के मन्दिर मे हस्तलिखित सामग्री है, परन्तु इस प्रकार की सामग्री से कोई विशेष प्रयोजन हल नही होता, क्योकि प्रथम तो उस सामग्री का दर्शन ही कष्ट-साध्य है और उसमे प्राय. पूजा सबधी पद हैं। इनका साहित्यिक मूल्य भी थोडा ही प्रतीत होता है। सूर के पदो को संग्रह करने की ओर बहुत रुचि रही है। इस प्रसग मे एक बात जान कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। सूर के पाच-छै हजार पद प्रचलित हैं किन्तु मुझे एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने बताया कि नगर के पास एक ग्राम मे एक ठाकुर के यहा सूर के सवा लाख पदो की हस्तलिखित पुस्तक मौजूद है। हिन्दी जगत मे यह समाचार बहुत महत्वपूर्ण है और सभव है इसका पता लगने पर सूर सबधी धारणाओ मे अनेक परिवर्तन हो। उस ग्राम

---

[1] वैर के आदि शासक प्रतापसिहजी कवियो के लिए कल्पवृक्ष सदृश थे। इस प्रदेश के प्रसिद्ध कवि सोमनाथ इन्ही के आश्रित थे। आज भी वैर वालो के पास कुछ साहित्य बताया जाता है, किन्तु मुझे उपलब्ध नहीं हो सका।

[2] इस समय यह सामग्री रा० प्रा० वि० प्र० की देखरेख मे दे दी गई है।

का पता टिकाना बहुत कुछ पूछने पर भी वे न बतला सके। पता नही उन्हे स्मरण ही नही आया अथवा वे बताना ही नही चाहते थे। डीग के पास घाटा नामक स्थान मे गुसाइयो का एक पुस्तकालय है जिसमे हस्तलिखित पुस्तके भी मौजूद हैं, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से इस सग्रह का मूल्य अधिक नही, क्योकि वैद्यक-पुस्तके ही अधिक सख्या मे है। कुछ सामान्य पदावली और कृष्णलीला-साहित्य अवश्य मिलता है। गोवर्द्धन मे कुसुमसरोवर पर निवास करने वाले कृष्णदास बाबाजी ब्रज-साहित्य के अनुसधान मे लगे हुए हैं। गोवर्द्धन और भरतपुर का बहुत घनिष्ठ सबध रहा है। एक प्रकार से गोवर्द्धन भरतपुर का ही भाग है क्योकि अग्रेजी राज्य मे होते हुए भी यहाँ की आधे से अधिक भूमि भरतपुर की थी। भरतपुर के राजाओ का दाह-सस्कार गोवर्द्धन मे ही होता है। मानसी गगा के उत्तरी तट पर भरतपुर के राजाओ की छत्रिया बनी हुई है जो स्थापत्य-कला का अच्छा नमूना है। कुसुमसरोवर पर भी महाराजा सूरजमल तथा वर्तमान महाराज की पितामही की सुन्दर छत्रिया है। इनमे से पहली छत्री मे अनेक चित्र हैं जिनका सबध भरतपुर राज्य और वहा के मन्दिरो से है। भरतपुर मे स्थित मन्दिर हरदेवजी के पुजारी गोसाईं बेनीप्रसाद जी ने बताया कि गोवर्द्धन की छत्री मे भरतपुर के हरदेवजी के मन्दिर का ही चित्र है। अस्तु, यहा की सामग्री प्राय अव्यवस्थित अवस्था मे है और बहुत कुछ सुन्दर हस्त-लिखित साहित्य समुद्रपार यूरोप और अमेरिका भेजा जा चुका है।[1] फिर भी जो कुछ साहित्य मौजूद है वह मत्स्य की प्रतिष्ठा स्थापित करने मे यथेष्ट है। सभव है, अनुसधानकर्त्ताओ द्वारा कुछ और भी महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हो सके।

हमारे चारो राज्यो का वर्तमान स्वरूप सन् १७५० के लगभग निर्मित हुआ और हमने अपने अन्वेषण का समय तभी से चुना है। इन स्थानो मे इससे पहले का साहित्य बहुत कम मात्रा मे उपलब्ध होता है। इस समय से पहले की सामग्री प्राप्त करने की दृष्टि मे जयपुर के कुछ पुस्तकालयो को देखा गया। वहा के सार्वजनिक पुस्तकालय में तो हस्तलिखित पुस्तको की सख्या बहुत कम है। अपने काम की हमे एक ही उपयोगी पुस्तक 'दयाबोध' प्राप्त हुई जो मुद्रित प्रति के

[1] दो एक महाशय यही काम करते थे। एक महाशय भजनलाल बोडीवाला अपनी जीविका अमेरिका और जर्मनी को हिन्दी की हस्तलिखित पुस्तकें भेज कर ही प्राप्त करते थे। अमेरिका के विश्वविद्यालयो मे सग्रहीत हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची देखने पर इस बात की पूर्ण पुष्टि हो गई।

अनुसार थी। जयपुर महाराज की राजभवन लाइब्रेरी का अनुसधान करने पर इस काल से पहले का काफी साहित्य मिला, किन्तु उसमे यह पता लगाना कठिन है कि मत्स्य प्रान्त मे कितना काम किया गया होगा। निश्चित रूप मे इस प्रदेश से सबधित कुछ नाम सामने आते है, जैसे—

(१) लालदास—इनका जन्म १५९७ वि० मे हुआ था। इनका मत लालदासी कबीरपथ से मिलता जुलता है। ये दादू-नानक के समकालीन थे। इनका जन्म मेव जाति मे हुआ था, किन्तु यह हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर पक्ष-पाती थे। इनका संग्रह 'लालदास की वाणी' है। भगवान का संकेत राम, साहब, धनी आदि अनेक नामो से किया है—

डोरी पकडो राम की, नित उठ जपिये राम।
कहा मोहला जगत सू, पडे धनी सू काम॥

यह एक पहुँचे हुए महात्मा थे और इनके मानने वाले इनको बहुत ऊँचा मानते है। इनके नाम से शेरपुर मे अब तक मेला लगता है। कहा जाता है, बादशाह अकबर इनका दर्शन करने के लिए इनके स्थान धौली दूब मे स्वय ही आये थे। इनका मृत्यु-सवत् १७०५ बताया जाता है। लालदासजी को हम सरलता से सत कवियो की कोटि मे रख सकते है—

कहे लाल साँई को प्यारो, श्रवण सुनो इक सबद हमारो।
हिन्दू तुरक एकसो सूझै, साहब घट सब एकहि सूझै॥

कहे लाल साँई को प्यारो, साहब एक दणावण हारो।
हिन्दू तुरक को एकहि साहब, राह बणाई दोय अजायब[१]॥

लालदासी मत आज भी प्रचलित है। ये लोग लालदास के अतिरिक्त और किसी को नही मानते। किसी शुभ अवसर के होने पर 'लालदास का रोट' करते है। लालदास की मृत्यु नगला जिला भरतपुर मे हुई। असाढ शुक्ला १५ को शेरपुर जिला अलवर मे इनके नाम से हर साल मेला लगता है।

(२) नल्लसिह—इनका सम्बन्ध करौली राज्य से था और इन्हे वहां के राजाओ का आश्रय प्राप्त था। विजयपाल बयाना के प्रसिद्ध राजा थे

---

[१] 'अरावली पत्रिका', जिल्द तीन, सख्या १-३। अलवर की इस साहित्यिक पत्रिका का सुरुचिपूर्ण संपादन होता था—बहुत कुछ अनुसधित तथा विवरणात्मक साहित्यिक सामग्री भी रहती थी। किन्ही कारणो से यह पत्रिका केवल कुछ समय ही चल सकी।

और इनसे सम्बन्धित "विजयपाल रासो" नाम से एक सुन्दर वीरकाव्य की रचना नल्लसिंह द्वारा की गई। इस पुस्तक की तथाकथित प्रामाणिक एक हस्तलिखित प्रति करौली के मन्दिर मे है जिसके दर्शन किये जा सकते हैं। इनका समय बहुत पुराना है और ये वीरगाथा काल के कवियो मे गिने जाते

इनके काव्य के सम्बन्ध मे अनेक सदिग्ध बाते हैं और साथ ही इस हस्तलिखित प्रति के सम्बन्ध मे भी। वैसे कुछ लोग तो इस प्रति को नल्ल के समय का ही लिखा हुआ मानते है।

(३) **करमाबाई**—यह वही प्रसिद्ध करमाबाई है जिनकी खिचडो का भोग जगदीश मे अब भी लगता है। इनकी समाधि, अरावली पर्वत की तलहटी मे, गढी मामोड पर है। यह स्थान अलवर के अन्तर्गत आता है। इनकी साहित्यिक कृतियाँ उपलब्ध नही होती किन्तु इनके कवि होने की प्रसिद्धि अवश्य है। भक्तभाल मे करमाबाई का उल्लेख इस प्रकार है—

हुती एक बाई ताको 'करमा' सुनाम जानि,
विना रीति भाति भोग खिचरी लगावही।
जगन्नाथ देव आप भोजन करत नीके,
जिते लगें भोग तामें यह अति भाव ही॥
गयो ताह साधु, मानि बडो अपराध करै,
भरै वहु सास सदाचार ले सिखाव ही।
भइयो अवार देखें खोलि के किवार,
जो पै जूठनि लगी है मुख धोए बिनु आव ही॥

(४) **जोधराज**—ये अत्रि गोत्रीय आदि-गौड ब्राह्मण थे। डाक्टर ग्रियर्सन का कहना है कि वह १४२० ई० मे पैदा हुए। कहा जाता है ये निमराना (अलवर) के महाराज चन्द्रभान के आश्रित थे। इन्ही की आज्ञा से 'हम्मीर रासो' एक प्रसिद्ध वीर-काव्य की रचना हुई।[१] शुक्लजी तथा बा० श्यामसुन्दरदास ने इनके काव्य की प्रशंसा की है। मिश्रबन्धु इन्हे तोपकवि की श्रेणी मे रखते हैं। डाक्टर ग्रियर्सन के समय को न मानते हुए खवा (जयपुर) के कुमार ने जो डा० दास को पत्र लिखा उसमे जोधराज को १८ वी शताब्दी वि० का माना है। इनकी रचनाएँ गद्य मे भी मिलती हैं। हम्मीररासो वीर और शृंगार दोनो की सफल रचनाओ का उदाहरण है। इसी प्रणाली पर बहुत समय बाद अलवर के राजकवि चन्द्रशेखर

---

[१] का० ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

वाजपेयी ने स० १६०२ मे 'हम्मीर हठ' और लिखा था। यह भी एक सुन्दर वीर काव्य है।

इन कवियो की रचनाओ से दो तीन बाते हमारे सामने आती है—

१ मत्स्य प्रदेश मे वीर काव्यो की परम्परा प्रचलित हो चुकी थी। 'विजयपाल रासो' तथा 'हम्मीर रासो' जो वीर गाथा काल के शीर्ष है यही लिखे गए। यह परम्परा बराबर चलती रही। सूदन के 'सुजान-चरित्र,' तथा जाचीक जीवन के 'प्रताप रासो' का प्रणयन इसी पद्धति का अनुगमन था। कुछ समय उपरान्त 'यमन-विध्वस-प्रकाश'[1], 'महल-रासो'[2] आदि ग्रन्थ भी लिखे गए।

२ धर्म की ओर प्रवृत्ति रही। कृष्ण और राम भक्ति तो थी ही क्योकि यह प्रान्त यदुवशी तथा सूर्यवशी राजाओ के द्वारा शासित था। यदुवशभूषण 'कृष्ण' और सूर्यवशावतस 'राम' विषयक कविता का प्रचार क्यो न होता ? निर्गुण भक्ति के लिए भी कुछ क्षेत्र बन गया था और राज्य के मेव तथा हिन्दुओ मे स्नेहयुक्त सम्मिलित जीवन विताने का प्रयास किया जाने लगा था।

३ उस समय काव्य की भाषा राजस्थानी से प्रभावित थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगो ने जनवाणी का उपयोग किया। लालदास[3] को तो ऐसा करना आवश्यक ही था और अन्य कवि राजस्थान के थे ही। अतएव यही की बोली ली गई। भाषा-विषयक यह परम्परा आगे नही चल पाई। काव्य मे व्रजभाषा की माधुरी पर सब कोई मुग्ध थे, फिर मत्स्य ही पीछे क्यो रहता और विशेषकर जब मत्स्य की काव्य-धारा उत्तर-प्रदेश से आये पडितो द्वारा प्रवाहित की गई थी। राजस्थानी के दर्शन कही-कही ही हो पाते हैं। उस समय की एक विशेषता और थी, मुसलमानो की बाते मिश्रित खडी बोली उर्दू मे कराई जाती थी। जैसे—

इस वास्ते तुमसे अरज बहु भाति कीजत है बली।
अब हाथ उस पर रक्खिए तब लेह जग फते अली॥

इस समय के उपलब्ध साहित्य पर दृष्टिपात करने से जन-जीवन सबधी कुछ बाते और मिलती हैं। मत्स्य प्रदेश मे सगुणोपासना का जोर था—राम और

---

[1] दत्तकवि—उग्र काव्यकार।

[2] जयदेव, अलवर।

[3] लालदास ने साधारण कोटि के लोगो को जन-वाणी मे उपदेश दिया।

'इक प्रीति श्री हरदेव सौ .. '

सूरजमल की छत्री मे भी हरदेवजी के मन्दिर का चित्र है[1] । कुछ समय उपरान्त ऐसा हुआ कि राजा ने लडाई के लिए गोसाईजो को भी कहा । 'गोसाई' लडाई पर कैसे जाते ? वैरागी तो तैयार थे ही, अतएव राज्य के गुरु बैरागी हो गये और श्री लक्ष्मणजी की मानता शुरू हुई । पहले राज्य के झडे के नीचे 'गोकुलेन्दु की जय' लिखा जाता था । पिछले महाराज ने राज्य-चिन्ह के नीचे 'लक्ष्मणजी सहाय' के स्थान पर 'गोकुलेन्दुर्जयति' लिखवाया था । इसे पुन. बदल कर 'लक्ष्मणजी सहाय' कर दिया गया है । राजा, ब्राह्मण, वैश्य, कायस्थ सभी धर्म की मर्यादा का निर्वाह करते थे । पढने-लिखने का स्तर बहुत नीचा था । फिर भी कुछ धनी व्यक्ति समाज मे अपने पढने के लिए हस्तलिखित प्रतिया लिखवाते थे । इन प्रतियो की प्रतिष्ठा भी खूब थी । मेरे पूज्य पिताजी के पास जो हस्त-लिखित प्रतियो का थोडा सा सग्रह था वह उनके पूजा वाले बस्ते मे रहता था और उन्ही मे से कुछ पुस्तको का पाठ नित्य नियम मे शामिल था । उस समय हस्त-लिखित प्रतियो का खूब प्रचलन था, मूल्य भी आज के हिसाब से कुछ अधिक नही था । ४०, ५० पत्र की पुस्तक का मूल्य एक रुपया चार आना तथा १५०-२०० पत्रो की पुस्तक ४-५ रुपये की मिलती थी । भरतपुर तोशाखाने की कुछ किताबो पर यह मूल्य लिखा हुआ पाया गया[2] । हस्तलिखित पुस्तके बहुत सुन्दरता के साथ लिखी जाती थी। आरम्भ से अन्त तक एक ही प्रकार की लिपि रहती थी और स्याही मे भी अन्तर नही आता था। यदि किसी शब्द को काटने की आवश्यकता पडती थी तो यह कार्य 'हरतार' लगा कर किया जाता था ।

प्राप्त साहित्य मे राजघरानो के अतिरिक्त सामान्य जन-जीवन के भी कुछ चिन्ह मिलते है । राजाओ का कार्य युद्ध करना, शासन करना तथा कवियो को आश्रय देना होता था । प्रजा को सर्वदा राजा के सुख-वैभव का ही ध्यान रखना पडता था । किन्तु राजा लोग समय-समय पर प्रजा को आमन्त्रित करते थे। उत्सवो के अवसर पर बहुत भीड हो जाती थी और अनेक शुभ अवसरो पर दान, इनाम आदि भी दिये जाते थे । राज्य मे ब्राह्मणो का सम्मान होता था और राज-कार्य मे भी उनसे सहायता ली जाती थी । इनके अतिरिक्त कायस्थ, वैश्य आदि भी सेवा मे लिए जाते थे और राजा इस बात का ध्यान रखते थे कि

---

[1] यह छत्री गोवर्द्धन मे कुसुम सरोवर नामक स्थान पर है।

[2] उदाहरणार्थ 'हितोपदेश भाषा कलमी जिल्द समेत डेढ रुपया' ।

उनकी प्रजा सुखी रहे। राजा के विनोद, आखेट, क्रीड़ा आदि जनता को भी उत्साह प्रदान करते थे। महल की रगरेलियो के अलावा कभी कभी 'लाल' की जोट भी तैयार की जाती थी।[1] राजपुत्रो को पढाने के लिए पडित रखे जाते थे जो हितोपदेश और आइने अकवरी आदि से राजनीति और सामान्य नीति सिखाते थे। वैद्यक और ज्योतिष का भी कार्य चलता था। अग्रेजी अस्पताल उस समय तक स्थापित नही हुए थे। लोगो का स्वास्थ्य उत्तम कोटि का था। कभी-कभी राज-परिवारो मे झगडे भी हो जाते थे। भरतपुर के दुर्जनसाल, करौली के मदनपाल और अलवर के मोहव्वतराय आदि इसके उदाहरण है। इस समय मे अग्रेजो का आतक सभी जगह छाया हुआ था। यद्यपि कुछ लोग उन्हे अछूत समझते थे किन्तु उनकी ओर से सर्वदा सजग रहते थे। 'फिरंगी' नाम जन-साधारण मे आतक का सूचक होता था। लोगो का साधारण ज्ञान सुनी-सुनाई वातो पर आधारित होता था। जीवाराम के 'अक्कलनामे' से जिन वातो का ज्ञान होता है वे वास्तविकता से दूर है। वगाले मे जादू की वात केवल जनश्रुति पर अवलम्बित है नही तो उस समय तक वगाल पर पूर्ण रूप से अग्रेजो का अधिकार था और जादू-आदि सब दूर हो चुके थे तथा जादू आदि के स्थान पर वहाँ आधुनिक विज्ञान की वातें प्रारम्भ हो चुकी थी।

मन्दिरो और गाय को पूज्य भाव से देखा जाता था। गगा और यमुना की पवित्रता प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करती थी। शिवजी की पूजा घर-घर होती थी और जिस प्रकार आजकल शिवरात्रि को महादेवजी का 'व्याहुला' सुना जाता है उसी प्रकार भक्त लोग तव भी रात्रि को व्याहुला सुनते और जागरण करते थे। लोगो के विचार धार्मिक थे और राजा को देवता मान कर उसमें भक्ति और विश्वास रखते थे। मत्स्य का जन-समाज कुछ पिछड़ा हुआ प्रतीत होता है, सामान्यत वे उस समय की प्रचलित विचारधारा से पीछे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्स्य मे उन्नीस सौ तक पश्चिम का प्रभाव आया ही नही था। लोग अग्रेजो को अछूत समझते थे और इसी प्रकार विदेशी सभ्यता तथा सस्कृति को। कुछ लोग अग्रेजो से हाथ मिलाने के पश्चात् स्नान तक करते थे। उर्दू और फारसी का प्रचार था और सस्कृत का सम्मान। कुछ लोग हिन्दी के उत्थान मे सतर्क थे और ऐसे ही पुरुषो के उद्योग से आज हिन्दी का अस्तित्व राज्यो मे दिखाई पड रहा है।

हमे अपने अनुसधान मे अनेक प्रकार की हस्तलिखित प्रतिया मिली। इनमे

---

१ 'लाल ख्याल' देखे।

कई प्रकार के कागज का प्रयोग किया गया है, कुछ देशी और कुछ विदेशी। स्याही चमकदार और गहरे काले रग की लगाई गई है। विराम लगाने, दोहा, चौपाई, कविता आदि शीर्षक लगाने मे कही-कही लाल स्याही का उपयोग भी होता था। जहा कहीं कुछ काटने की आवश्यकता पडती थी तो हरतार लगाया जाता था। इन हस्तलिखित प्रतियो मे कुछ लेख बहुत ही सुन्दर और स्पष्ट तथा मोटे अक्षरो मे है। राजदरबार मे इन हस्तलिखित पुस्तको को बडे यत्न से रखा जाता था। जिल्दे सुन्दर बनती थी और उन पर रेशमी कपडा चढाया जाता था। एक ही पुस्तक मे आवश्यकता के अनुसार छोटे बडे अक्षर लिखे जाते थे। उस समय लोगो मे सग्रह की प्रवृत्ति थी। उच्च कोटि के कवियो की कृतिया लिपिबद्ध की जाती थी और कुछ लोग अपनी रुचि के अनुसार पद, कवित्त, सवैया, दोहा आदि सग्रह कर लेते थ। कुछ ग्रन्थो का बहुत प्रचलन था और उनकी अनेक हस्तलिखित प्रतिया मिली है, जैसे—

(१) **प्रचलित धार्मिक ग्रन्थ**—तुलसी के सभी ग्रन्थ लिपिबद्ध मिले। इनमे मानस, विनय, कवितावली तथा रामाज्ञा (सुगनौती) पर विशेष ध्यान दिया गया था। मानस के अनेक काण्डो की अलग-अलग बहुत-सी प्रतिया मिली। 'तुलसी' के साथ वाल्मीकि रामायण की भी प्रतिया पाई गईं। महाभारत की हस्तलिखित प्रतिया कम ही मिली। सभव है इसका कारण इसका वृहद् आकार हो। इनके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण, महाभारत, भागवत, शिवपुराण, देवीमहात्म्य, हितोपदेश आदि के पद्यानुवाद प्रस्तुत किए जाते थे। इन अनुवादो का कुछ भी उद्देश्य रहा हो किन्तु ये इस बात का प्रमाण हैं कि इन ग्रन्थो की ओर लोगो की रुचि थी और इनका पाठ भक्ति तथा श्रद्धा के साथ किया जाता था।

(२) **बिहारी सतसई**—की अनेक प्रतिया मिली है जिनमे कुछ सटीक भी है। इसी प्रकार देव के ग्रन्थो की भी हस्तलिखित प्रतिया हैं। केशव की रामचन्द्रिका पर भी लोगो का ध्यान गया। देवजी तो इधर-उधर जाते ही रहते थे और उनके साथ इनके ग्रन्थो का प्रचार भी बढता था। पद्‌माकर के फुटकर छद बहुत-से लोगो ने सग्रह किये थे।

(३) **सूर के पद**—अनेक सग्रह मिले, किन्तु ये अपेक्षाकृत बहुत छोटे है। इनके सकलन का कार्य प्रायः वल्लभकुली मदिरो मे होता था। सूर के पदो की हस्तलिखित पुस्तकें बहुत-से मन्दिरो मे पाई गईं जिनमे से आरती और पट खुलने के समय सूर के पदो का गायन होता था। इन

प्रतियो को देखने से पता लगता है कि कालान्तर मे लोगो ने अपने बनाये हुए भी अनेक पद सूर के पदो मे सम्मिलित कर दिये।

(४) **हितोपदेश आदि सस्कृत ग्रन्थ**—हितोपदेश का बहुत प्रचलन था और हमारी खोज मे इस ग्रन्थ के अनेक अनुवाद मिले जो गद्य और पद्य दोनो मे हैं।

अलवर और भरतपुर इन दोनो स्थानो मे बहुत कुछ सामग्री मिली। मत्स्य प्रान्त के इन दोनो प्रमुख स्थानो के उपलब्ध साहित्य का अध्ययन करने पर कुछ बाते विशेष रूप से दिखाई देती हैं—

१ अलवर का काव्य अधिक सौम्य है। उसमे न उद्दडता है और न उग्रता, किसी बड़ी लड़ाई का वर्णन भी नही है। कही कही उपद्रव करने वालो पर जो सख्ती की गई उसी को बढा कर लिख दिया गया है। राजाओ के प्रति बहुत ही श्रद्धा थी और जो भी ग्रन्थ उपलब्ध हुए है वे किसी न किसी राजा के 'विलास' या 'प्रकास' है। दत्त कवि, जिनकी उग्रता उल्लेखनीय है, इस नियम के अपवाद कहे जा सकते है।

२ भरतपुर का काव्य बहुत उग्र और तीव्र है। उसमे काफी गर्मी और कटुता है। लडाइयो के कारण इसमे वीर-रस का अच्छा समावेश हो गया है। भरतपुर के कवि कुछ स्वतत्र प्रकृति के भी प्रतीत होते हैं। राजाओ की गुण-गाथाओ के अतिरिक्त कुछ स्वतत्र ग्रन्थ भी है, जैसे—सिंहासन बत्तीसी, नवधा भक्ति, महादेव को व्याहुलो, शिवस्तुति, ब्रजलीला तथा अनेक ग्रन्थो के अनुवाद। अलवर का क्षेत्र इतना विस्तृत प्रतीत नही होता।

३. अलवर मे अग्रेजो के प्रति कोई भी विद्रोह-भावना नही देखी जाती। किसी ने तो अग्रेजो के इशारे पर अलवर की बहुत-सी लज्जाजनक बाते कह डाली है। सभव है उन बातो मे सत्य का भी अश हो, किन्तु कोई भी सम्मानपूर्ण व्यक्ति इस प्रकार की बाते कहना पसन्द नही करेगा। अग्रेजो ने अनेक बार अलवर राज्य मे हस्तक्षेप किया। केडल नाम के अग्रेज की कारगुजारी प्रसिद्ध ही है।

४ भरतपुर मे अग्रेजो के लिए और साथ ही मुसलमानो के लिये बहुत उग्र पद्य लिखे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अग्रेज और मुसलमान

दोनो ही भरतपुर से भयभीत रहते थे—

(अ) भेजी फोरि पटक पछार षात षभन तैं
रेजी अगरेजन की रोवैं कलकत्ता मे ।[१]

(आ) हल्ला मे हारेंगे फिरगी हजार भाति
जालिम जटा के कटा करि डारेंगे ।[१]

(इ) तेगन तें तोड डारे मूड अगरेजन के
परे रहे खेत मे भिखारी के से कूलरा ।

जब भरतपुर के जाट अंग्रेजो से इस प्रकार का आतंकमय व्यवहार कर रहे थे तब—

माचोरी कौ राव सो तौ जग मे जनानो भेष
करि पहरे कर चूडी अनवट घूघरा ।

इसमे सदेह नही, यह अतिशयोक्तिपूर्ण कविता है, क्योकि इसमे उदयपुर, जयपुर को भी ऐसा ही कहा है—

चौंके द्रगपाल छत्र धारी महिमडल के
जैपुर उदैपुर उठाय आयो लूगरा ।[१]

अलवर के साहित्य मे गभीरता की गरिमा है। भरतपुर का काव्य उग्रता से चमत्कृत है। इसका कारण दोनो स्थानो का वातावरण और परिस्थिति भी है। वैसे अलवर का राज्य महाराजा प्रतापसिंह ने भरतपुर से ही छीना था और युद्ध मे भी करारी हार पहले ही दे चुके थे, जब प्रतापसिंह जयपुर सेना के नायक थे। किन्तु भरतपुर मे कुछ कारण ऐसे बने रहते थे कि कवियो की अपनी वाक्-प्रतिभा को वीर-रस से सवधित करने के अवसर मिल ही जाते थे ।

इस अनुसधान का कार्य अनेक स्थानो मे हुआ है, जैसे—सार्वजनिक पुस्तकालय, राजाओ के विशाल भवन, मदिरो के जगमोहन, पुराने पडितो की बैठके, राजगढ और डीग के खडहर, नगर और डहरा जैसे छोटे गाव, मथुरा, आगरा जैसे बडे नगर, पुराने क्षतिग्रस्त मदिर, यमुना का तट, कुसुम-सरोवर तथा उसके पास की छत्रिया, वृन्दावन की कुजे, किलो के कुछ भग्नावशेष, राजकीय सग्रहालय, वारहठो के सामान्य द्वार, पसारियो की रद्दी, दीमक लगे बस्ते, वेदपाठी ब्राह्मणो के चरण, गिरिराज की पर्वत-शृंखलाएँ आदि। इस कार्य के सम्पादन मे बहुत-से व्यक्तियो का सहयोग रहा जिनमे चारो राज्य के नरेश, वहा के साहित्यकार, क्यूरेटर, पुस्तकालयाध्यक्ष, राज कर्मचारी आदि सम्मिलित हैं। अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है कि लोगो की कुछ ऐसी मनोवृत्ति है कि

---

[१] 'परसिद्ध' कवि द्वारा।

वे अपने पास सग्रहीत साहित्य को प्रकट होने देना नही चाहते। अनेक स्थानो पर तो बस्ते मात्र का दर्शन हुआ, किन्ही स्थानो पर पुस्तको के स्पर्श की आज्ञा नही मिली और कुछ महानुभावो ने तो केवल बातो मे ही टहला दिया।

मैंने सम्पूर्ण सामग्री को छ भागो मे विभाजित किया है—

१ रीति-काव्य,
२ शृंगार-काव्य,
३ भक्ति-काव्य,
४. नीति, युद्ध, इतिहास आदि,
५. गद्य-ग्रन्थ, और
६. अनुवाद-ग्रन्थ।



रीति - काव्य

सन् १७५० से १६०० ई० तक का अधिकाश रीतिकाल के अतर्गत आता है और यही रीति-परम्परा मत्स्य मे भी चली। यहा के अनेक विद्वान कवियो ने इस ओर ध्यान दिया और रीति के सभी प्रसगो पर अपनी वाणी का उपयोग किया। पडित रामचन्द्र शुक्ल के कालविभाजनानुसार रीतिकाल सवत् १६०० वि० मे ही समाप्त हो जाता है, किन्तु मत्स्य प्रदेश मे सन् १६०० ई० तक की प्रवृत्ति को देखते हुए १७५० से १६०० ई० तक का सम्पूर्ण काल रीतिकाल मे ही रखना उपयुक्त होगा। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे रीतिकाल बहुत महत्त्व रखता है, और जहाँ तक सख्या का प्रश्न है, इस काल मे कवियो को एक बाढ सी आ गई। यह बात तो नही कही जा सकती कि इस काल मे की गई सपूर्ण कविता निकृष्ट कोटि की थी, क्योकि जिस काल मे बिहारी जैसे रसिक, भूषण और सूदन जैसे वीर काव्यकार, देव जैसे सम्पूर्ण कवि, सोमनाथ जैसे आचार्य, रसानन्द जैसे काव्य-मर्मज्ञ हो उसे हम निम्नकोटि का नही मान सकते। फिर भी इस काल के कवियो को एक बहुत बडी सख्या ऐसे लोगो की थी जिनकी कविता काव्य के वास्तविक गुणो से दूर पडती है।

हिन्दी मे रीति काव्य का आरम्भ सस्कृत के रीति ग्रथो की पद्धति पर हुआ। प्राचीन काल से ही सस्कृत के काव्याचार्यों ने इस ओर अपना ध्यान दिया। एक बात हम अवश्य देखते है कि सस्कृत के आचार्य काव्य के विभिन्न अगो के विश्लेषण की ओर अधिक ध्यान देते थे, कविता के क्षेत्र मे इतना दखल नही रखते थे। उदाहरण के लिए मम्मट को ही लीजिये। उन्होने सूत्र, वृत्ति, कारिका आदि के द्वारा काव्य के विभिन्न अगो के तथ्य का अति सुन्दर प्रतिपादन तो किया किन्तु उदाहरण के रूप मे जो अवतरण दिए वे अन्य कवियो के ही थे। दुर्भाग्य से हिन्दी मे काव्यत्व और आचार्यत्व मिश्रित-सा हो गया और ऐसा होने से साहित्य के दोनो अगो को हानि पहुँची। सस्कृत साहित्य-शास्त्रियो के अनुसार काव्य के अनेक सम्प्रदाय है, जिनमे पाच प्रमुख हैं—

१. **रस-सप्रदाय**– वैसे तो इस मत के प्रवर्तक भरतमुनि हैं जिनके नाट्य-शास्त्र मे 'रस' का सम्यक् विवेचन किया गया है। पर जन-श्रुति के आधार पर रस का प्रथम आचार्य नन्दिकेश्वर माना जाता है। रस-निष्पत्ति के सबध मे भरत का प्रसिद्ध सूत्र था 'विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रस-

निष्पत्ति ।' इसमे रस के सभी अग आ जाते है। इस 'रसनिष्पत्ति' पर अनेक विद्वानो ने विचार किया और चार वाद अत्यत प्रसिद्ध हुए—

(अ) भट्ट लोल्लट का उत्पत्तिवाद,
(आ) शकुक का अनुमितिवाद,
(इ) भट्ट नायक का भुक्तिवाद, तथा
(ई) अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद।

इनमे अभिनवगुप्त का सिद्धान्त बहुत मान्य हुआ और काव्य-प्रकाश के रचयिता मम्मट, साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ तथा पडितराज जगन्नाथ ने रसगगाधर मे इसी मत को माना है। एक प्रकार से अभिनवगुप्त का यह सिद्धान्त भारतीय साहित्य-शास्त्र मे सर्वमान्य हो गया है।

२. **अलकार-सम्प्रदाय**— इस सम्प्रदाय का सर्वप्रमुख आचार्य रुद्रट था। अलकारो का उल्लेख तो सबसे पहले भरतमुनि[1] ने ही कर दिया था परन्तु इसका सर्वप्रथम वैज्ञानिक विश्लेपण भामह ने अपने काव्यालकार मे किया। ये लोग अलकार को ही काव्य की आत्मा मानते है। अलकारो की सख्या भरत के बताये चार अलकारो से बराबर बढती रही, और कालातर मे सैकडो पर जा पहुँची। हिन्दी के रीतिकाल मे अलंकार-योजना का बहुत बड़ा हाथ रहा और बहुत-सी कविताएँ तो केवल अलकार की छटा दिखाने भर को लिखी गई। श्लेप, अनुप्रास आदि तो इतने प्रिय हुए कि कुछ लोग इनमे ही काव्य की इति-श्री समझने लगे। मत्स्य मे भी यह प्रवृत्ति काफी दिखाई पड़ती है, किन्तु इसके साथ ही कुछ विद्वानो द्वारा अलकार-निरूपण का प्रशमनीय कार्य भी किया गया।

३. **रीति-सम्प्रदाय**— इस सम्प्रदाय को स्थापित करने वाले आचार्य वामन थे। इन्होने 'रीति' को काव्य की आत्मा माना और कहा 'रीतिरात्मा काव्यस्य'। रीति क्या है ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए इन्ही आचार्य महोदय ने अन्यत्र कहा है 'विशिष्टा पद-रचना रीति'। एक प्रकार से रीति वालो ने काव्य के वाह्य पक्ष पर अधिक बल दिया। और हृदय पक्ष की अवहेलना की गई, आत्माभिव्यक्ति के लिए बहुत कम स्थान रह गया। रचना-चमत्कार ही काव्य का सर्वस्व बना दिया गया। काव्य मे यह रचना-चमत्कार गुणो पर आश्रित रहता है और दोषो से उसका स्तर गिरता है,

[1] भरतमुनि ने चार अलकारो का उल्लेख किया है—उपमा, रूपक, यमक और दीपक।

अतएव रचना मे गुणो का प्रयोग और दोषो का परिहार होना चाहिए। गुण और दोषो का विवेचन हिन्दी काव्य-शास्त्रियो ने भी किया। कुछ ग्रथ तो केवल इसी प्रसग को लेकर लिखे गए। हमारी खोज मे इस प्रकार के हस्तलिखित ग्रन्थ भी प्राप्त हुए।[1] इस प्रकार के ग्रन्थो मे अन्य प्रकरणो के साथ गुण और दोषो पर विशेष रूप से लिखा गया है।

४. **वक्रोक्ति-सम्प्रदाय**–इस प्रसग मे कुन्तक का नाम उल्लेखनीय है। उनके ग्रन्थ 'वक्रोक्ति जीवित' मे वक्रोक्ति को काव्य का प्राण माना गया है। उन्होने वक्रोक्ति को 'कथन की विचित्रता'[2] कहा है। यह वक्रता वर्ण, पद, वाक्य, प्रबध आदि मे हो सकती है, अतएव केवल वक्रोक्ति अलकार ही 'वक्रोक्ति' का प्रतिपादक नही। क्रोचे[3] का अभिव्यजनावाद भी इससे मिलता-जुलता है। वास्तव मे वक्रोक्ति अभिव्यजना को एक प्रणाली है। इसे काव्य की आत्मा मानने मे सकोच होता है। कुछ विद्वानो के मतानुसार तो इसमे केवल वाक्-वैचित्र्य ही है। इससे मन को एक हल्की-सी प्रसन्नता मिलती है, हृदय की गम्भीर वृत्तियो पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता। वक्रोक्ति के बहुत-से उदाहरण मत्स्य-प्रदेश मे उपलब्ध 'भ्रमर गीत' और 'दानलीला' आदि मे पाये जाते हैं।

५ **ध्वनि-सम्प्रदाय**—इस सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्द्धन द्वारा हुई। उनका कहना था—'काव्यस्यात्मा ध्वनि'[4]। काव्य की आत्मा ध्वनि है तथा काव्य का वास्तविक सौंदर्य व्यग्यार्थ का होना है। इस सम्प्रदाय के आचार्यो ने, जिनमे काव्यप्रकाश के लेखक मम्मट का नाम भी शामिल किया जा सकता है, काव्य का वर्गीकरण ध्वनि के आधार पर ही किया। मम्मट ने बताया कि काव्य तीन प्रकार का होता है—

१ ध्वनि-काव्य, २ गुणीभूत व्यग्य, तथा ३. चित्र।

इन आचार्यों ने ध्वनि मे रस का भी समावेश किया और 'रस-ध्वनि' को सर्वश्रेष्ठ माना। कुछ विद्वान इसी आधार पर ध्वनि-सिद्धात को रस के अतर्गत

---

[1] रसानन्द–'वृजेन्द्र विलास'।

[2] 'वैदग्ध्यभगी भणिति'।

[3] 'एसथैटिक्स–क्रोचे'।

[4] ध्वन्यालोक १–१।

मानते है। अभिनवगुप्त ने इस सिद्धात को बहुत लोकप्रिय बना दिया, साथ ही रस तथा ध्वनि के सबध का महत्त्व भी काव्य-शास्त्र मे स्थापित कर दिया।

यदि इन सभी सम्प्रदायो पर एक विस्तृत दृष्टिपात किया जाय तो ये पाचो सम्प्रदाय दो श्रेणियों मे आ जायेगे—

१ रस और ध्वनि—जो कविता की आत्मा पर अधिक बल देते हैं। इनमे काव्य का अतरग प्रमुख है।

२ शेप तीनो—इनमें काव्य के बहिरंग को प्रधानता दी गई है।

रीतिकाल मे कविता के बाह्य अग पर अधिक ध्यान दिया गया। हिन्दी मे 'रीति' शब्द मान्य हुआ, जैसे सस्कृत मे अलकार। हिन्दी मे 'रीति' का प्रयोग उन ग्रन्थो के साथ हुआ जो 'लक्षण ग्रन्थ' होते थे। जिन ग्रन्थो मे रस, अलकार, गुण, दोप, नायक-नायिका भेद आदि का वर्णन होता था वे रीति-ग्रन्थ कहे जाने लगे। सस्कृत काव्य-शास्त्रियो ने रीति का जो अर्थ ग्रहण किया जिसका अभिप्राय 'विशिष्ट पद-रचना' होता था, वह हिन्दी मे ग्रहण नही हुआ। हम हिन्दी में इस शब्द को इसके विस्तृत अर्थ में स्वीकार करते हैं। इसमे सदेह नही कि रीति शब्द को ग्रहण करने से हमारा ध्यान काव्य के बहिरग की ओर अधिक जाता है, उसकी आत्मा अथवा अतरग की ओर इतना नही, और रीति काव्य के अतर्गत जहा रस, ध्वनि आदि का वर्णन हुआ है वहा व 'रचना' की दृष्टि से स्वीकार किये गये है। जिस ग्रन्थ मे रचना संबधी नियमो का विवेचन हो उन्हे रीतिकाव्य की सज्ञा दी गई। सस्कृत में रीतिकार 'आचार्यत्व' की पदवी से विभूपित किये जा सकते है, कवित्व का उनमे प्राय अभाव मिलता है। वास्तविक सिद्धान्तकारो को देखिए, उनमे काव्य नही मिलेगा, काव्य-निरूपण ही मिलेगा। हिन्दी मे इन दोनो का सम्मिश्रण हो गया। अत. हिन्दी मे रीतिकाल के अतर्गत दो प्रकार के कवि मिलते हैं— १ आचार्यत्वप्रधान २ शृ गार-प्रधान। इस अध्याय मे उन्ही कवियो को लिया गया है जिनमें आचार्यत्व का प्राधान्य है।

मत्स्य के रीतिकारो ने हिन्दी मे प्रचलित शैली का ही अनुगमन किया। काव्य-शास्त्र पर सर्वप्रथम हिन्दी लेखक कृपाराम[1] माने जाते है।[2] इनके पश्चात् गोपा, करनेस, सुन्दर आदि बहुत-से लोगो ने इस विपय पर लिखा,

---

[1] हित तरगिणी—सवत् १५६८ वि०।

[2] डॉक्टर भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास।

परन्तु रीति-ग्रन्थो की वास्तविक परंपरा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली जिसने काव्यविवेक, काव्यप्रकाश, कविकुल कल्पतरु आदि ग्रन्थ लिखे। इनके उपरान्त लक्षण ग्रन्थो की भरमार होने लगी। कवियो मे यह एक नियम-सा बन गया कि पहले विभिन्न रस, अलकार आदि का लक्षण लिखना और फिर उनके उदाहरण मे एक छद लिख देना। कभी-कभी तो सदेह होने लगता है कि किसी कवि विशेष को कवि कहे या आचार्य। हिन्दी के काव्य-क्षेत्र मे यह भेद इस प्रकार से लुप्त-सा हो गया। पडित शुक्ल ने अपने इतिहास मे लिखा है कि इन कवियो मे सूक्ष्म विवेचन की कमी थी, सम्यक् मीमासा नही हो पाती थी, अतएव उन्हे आचार्यत्व की गौरवयुक्त पदवी नही दी जा सकती।[1] तोष, जसवतसिंह आदि कुछ उत्तम आचार्य अवश्य मिलते है, परन्तु एक बहुत बडी सख्या उन कवियो की है जिनकी रचनाओ को भरती का काव्य कहा जा सकता है। मत्स्य प्रदेश के कवियो का अनुसधान करने पर हमे कुछ कवि ऐसे मिले जिनके ग्रन्थो से विदित होता है कि वे कवि आचार्य कहे जाने के सर्वथा उपयुक्त है। कुछ ने तो सिद्धान्त प्रतिपादन मे बहुत चातुर्य दिखाया है और व्याख्या को अधिक स्पष्ट करने के हेतु गद्य का भी प्रयोग किया है। हिन्दी मे मम्मट कृत, 'काव्यप्रकाश' की ओर कवियो का ध्यान अधिक गया। इसके कई कारण है—

१ कवि समाज मे काव्य-प्रकाश का अधिक प्रचार था।

२ इस ग्रन्थ मे काव्य के सभी अगो की व्याख्या है।

३ इसमे काव्योपयोगी सभी प्रकरण—रस, ध्वनि, अलकार, रीति आदि विद्यमान है।

४ समय-समय पर विद्वानो द्वारा इस ग्रथ पर अनेको टीकाएँ की गईं।

५ काव्य-प्रकाश मे ध्वनि और रस का सुन्दर समन्वय किया गया। दूसरा अधिक प्रचलित ग्रन्थ विश्वनाथ का साहित्यदर्पण था। इस ग्रन्थ का भी बहुत प्रचार था। काव्य के इन ग्रन्थो का बहुत उपयोग हुआ। हिन्दी के कवियो ने अनेक छायानुवाद प्रस्तुत किये। इस प्रसग मे मत्स्य प्रदेश के राम कवि, सोमनाथ, रसानन्द, कलानिधि, मोतीराम और जुगल कवि के नाम सम्मान के साथ लिये जा सकते है। सोमनाथ का 'रसपीयूपनिधि', रसानन्द का 'व्रजेद्रविलास' और कलानिधि का 'अलकार कलानिधि' तो सर्वांगपूर्ण ग्रथ है। रीतिकाल के अन्य कवियो से मिलान करने पर इन कवियो मे आचार्यत्व की दृष्टि से कोई

[1] शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास रीतिकाव्य का सामान्य परिचय।

कमी नही पाई जाती । सोमनाथ के 'रसपीयूषनिधि' को देख कर तो आश्चर्य होता है कि इस ग्रन्थ का अधिक प्रचार क्योकर नही हुआ जब कि यह ग्रन्थ काव्य-सम्बन्धी सम्पूर्ण विषयो से समलकृत है । यदि सोमनाथ का समुचित अध्ययन किया जाय तो उसकी प्रतिभा किसी भी साहित्य-पारखी को आश्चर्य से मे डाल सकती है । मत्स्य प्रदेश के रीतिकालीन कवियो के ग्रन्थो मे कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है । जैसे—

१ कवि और आचार्य—हिन्दी मे कवि और आचार्य एक हो गए हैं। मत्स्य मे भी बहुत कुछ सीमा तक यही प्रवृत्ति दिखाई देती है किन्तु रीति-ग्रन्थो के अतिरिक्त भी उनके कुछ अन्य ग्रथ है जिनसे उनकी कवित्व शक्ति का अच्छा आभास मिलता है । कुछ कवियो मे तो हमे स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि-

(अ) रीति का प्रतिपादन करते समय वे आचार्य है, तथा

(आ) अपनी अन्य रचनाओ मे वे कवि है ।

२. हिन्दी मे सस्कृत के विभिन्न वादो अथवा सम्प्रदायो का प्रचलन नही हुआ—केवल अलकार, रीति आदि की ही प्रधानता रही । इसका कारण यह हो सकता है कि हिन्दी मे काव्य के विभिन्न अगो का निरूपण करने की प्रणाली बहुत कुण्ठित रही । हम स्पष्ट रूप से देखते है कि हिन्दी वालो ने कुछ अलकारो की सख्या तो अवश्य वढाई और शृगार के अंतर्गत नायक-नायिका भेद का निरूपण भी विस्तार के साथ किया किन्तु काव्य के अन्य अगो पर कुछ भी मौलिक कार्य नही हुआ । इस सम्वन्ध मे विषय प्रतिपादन की उत्कृष्टता मत्स्य की देन कही जा सकती है ।

३ रीतिकालीन कवियो को कवित्त, सवैये आदि छद अधिक प्रिय थे । मत्स्य प्रदेश मे भी यही मनोवृत्ति रही । कही-कही दोहे और छप्पय की ओर भी रुचि देखी गई है । वैसे तो इस काल के कवियो ने पदो मे भी कविता की किन्तु उनमे काव्य-निरूपण नही हुआ, कविता मात्र ही हुई ।

४ मत्स्य प्रदेश की खोज मे कुछ ऐसी पुस्तके भी मिली जिनमे राग-रागनियो का निरूपण हुआ है । सामान्यत हिन्दी मे इस कोटि के निरूपण ग्रथ नही मिलते हैं किन्तु व्रज में सगीत का अधिक प्रचार था । वहाँ कवियो का ध्यान राग-रागिनियो की ओर भी गया ।

५ रीतिकाल के कवियो ने शृगार की ओर अधिक ध्यान दिया और इसी कारण शृगार सम्वन्धी विषयो का अधिक विवेचन हुआ । नायक

नायिका के भेदो की संख्या करोड़ो तक पहुँचा दी गई ।[1] नख-सिख अथवा सिख-नख में नायक-नायिकाओ का वर्णन भी कवियो के किसी शृगारिक झुकाव के कारण था । हम इन प्रसगो को भी रीति-काव्य के अतर्गत ले रहे हैं क्योकि इनका आधार किन्ही लक्षणो पर होता है और उनके वर्णन की प्रणाली एक तरह से निश्चित सी बन गई थी । नायक-नायिका भेदो का निरूपण सस्कृत ग्रथो मे भी हुआ । जिस पद्धति का आरम्भ धनंजय[2], विश्वनाथ[3] द्वारा हुआ, उसकी बहुत-कुछ रूप-रेखा हमे रुद्रभट्ट[4] और भोज[5] के ग्रन्थो मे मिलती है । हिन्दी मे भी कृपाराम, मतिराम, देव, पद्माकर आदि ने इस ओर ध्यान दिया । इस प्रकार के कई ग्रन्थ हमे अपने अनुसधान म प्राप्त हुए और वे उसी कोटि के है जैसे हिन्दी के अन्य ग्रथ । इन ग्रन्थो मे अन्वेषण की क्षमता और वर्णन की विशदता बहुत सुदर रूप मे उपलब्ध होती है ।

६. मत्स्य प्रदेश के रीति-ग्रथो में हमे राधाकृष्ण का इतना अवर शृगारी रूप नही मिलता जितना हिन्दी के अन्य ग्रथो मे । यह उस प्रदेश का काव्य है जहा राधा और कृष्ण की ओर पूज्य भाव अधिक है, अतएव इस प्रकार का प्रसग समाज को और विशेषतः आश्रयदाताओ को रुचिकर नही होता । मत्स्य के कवियो ने इस मनोवृत्ति का पूरा ध्यान रखा ।

रीतिकालीन कवि प्राय· राज्याश्रित थे। चितामणि नागपुर मे मकरंदशाह के यहाँ रहे, बिहारी मिर्जा राजा जयसिंह के यहाँ थे, और मडन राजा मगदसिंह के दरबार मे रहते थे। इसी प्रकार मतिराम बूदी के महाराजा का आश्रय पाते थे और भूषण शिवाजी तथा छत्रसाल के प्रशसक थे । नेवाज कवि पन्ना नरेश के आश्रित थे और देव के तो अनेक आश्रयदाता थे ।[6] भिखारीदास प्रतापगढ के सोमवशी राजाओ के पास रहते थे । इस प्रकार अनेक कवियो ने अपने-अपने आश्रयदाता ढूढ रखे थे । मत्स्य प्रदेश के अनेक कवि भी राज्याश्रित थे, यथा—

१. सोमनाथ — राजकुमार प्रतापसिंह (वैर निवासी),

---

[1] जसवन्तसिंह के 'भाषा-भूषण' पर महाराज विनयसिंह की टीका, नायका भेद–१३२७१२४० ।

[2] दशरूपक ।

[3] साहित्यदर्पण ।

[4] शृगारतिलक ।

[5] शृगार-प्रकाश ।

[6] कहा जाता है ये महाशय आश्रयदाता की खोज में भरतपुर भी आए थे ।

२ कलानिधि — राजकुमार प्रतापसिंह (वैर निवासी),
३ शिवराम — महाराज सूरजमल (डीग निवासी),
४ जुगल कवि — महाराज वल्देवसिंह,
५ कृष्ण कवि — रा० गोविंदसिंह,
६ हरिनाथ — महाराज विनयसिंह,
७. राम कवि — महाराज बलवतसिंह,
८ मोतीराम — ,, ,,
९ वलभद्र — महाराज महीसिंह,
१० भोगीलाल — महाराज वख्तावरसिंह, और
११ रमानन्द — महाराज बलवतसिंह।

इन राज्याश्रित कवियो का कार्य अपने राज-कवि होने को सार्थकता प्रदान करना था। इन लोगो ने इस वात का निरन्तर प्रयास किया कि अपने समय और अवसर का पूरा-पूरा उपयोग करे। इनके द्वारा लिखे गए कुछ ग्रन्थ तो वास्तव मे उच्च कोटि के हैं। ग्रथो को देखने से ऐसा पता लगता है कि ये ग्रय—

१ या तो राजाओ के मनोविनोदार्थ लिखे गए अथवा राजपुत्रो के शिक्षण हेतु क्योकि उस समय यह प्रणाली थी कि राजपुत्रो की शिक्षा के हेतु नवीन ग्रथो का निर्माण होता था। 'अकलनामा' नाम के ग्रथ कुछ इसी विचार से लिखे जाते थे।

२. एक कारण काव्य-निरूपण भी हो सकता है। कुछ लोग ऐसे थे जिन्हे राजाओ को प्रसन्न करने की तनिक भी चिंता न थी। प्रत्युत जो चाहते थे कि उनके द्वारा काव्यागो का विधिवत् निरूपण हो। इस प्रसग मे हम गोविंद कवि[1] का नाम ले सकते है। गोविन्द कवि किसी राजा के आश्रित नही थे।

---

[1] इस कवि का नाम 'रसिक गोविन्द' और इनकी पुस्तक का नाम 'रसिक गोविन्दानदघन' लिखा है। यह वात भ्रमात्मक है। मेरी खोज मे इस कवि द्वारा लिखित 'गोविन्दानन्द-घन' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं जिनमे पुस्तक का नाम स्पष्ट रूप से 'गुविंदा-नन्दघन' लिखा हुआ है, 'रसिक गुविंदानन्दघन' नही। पडित रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, डाक्टर नगेन्द्र आदि ने भी 'रसिक' ही लिखा है। मेरे कथन के प्रमाण मे दो-तीन पक्तियाँ देखिए—

रच्यौ गुविंदानन्द घन वृन्दावन रसवत।
×
यहै गुविंदानन्द घन नाम धरयौ इहि हेत॥
×
रच्यौ गुविन्दानन्दघन रसिक गुविंद विचारि।

(टिप्पणी का शेष अश आगे के पृष्ठो मे है)

(पृष्ठ ३८ की टिप्पणी का शेष अश)

इस 'रसिक गुविंद' से भ्रम उत्पन्न होता है। कवि को रसिक कहा गया है। इसका अभिप्राय यह नही कि हम उनके नाम मे भी उनके इस गुण या धारणा को शामिल कर दें। उन्होने अपना नाम स्पष्ट रूप से वताया है।

रसिक, भक्त, लेपक गुविंद कवि कोक काव्य विलसैया।

×

सुकवि गुविंदादिकनि कृत यह आनन्द समूह।
याते नाम आनन्दघन धरचौ रहत प्रत्यूह॥

×

मित्र 'गुविंद' को चित चुरावै

×

वारी वैस वारी उजियारी श्री 'गुविंद' कहैं।

वास्तव मे पुस्तक का नाम तो आनदघन और कवि का नाम गोविन्द है। किन्तु दोनो को मिला कर पुस्तक का नाम 'गोविन्दानदघन' हुआ। इन सवके उपरान्त हस्तलिखित पुस्तको मे पुस्तक का नाम स्पष्ट रूप से 'श्री गोविन्दानदघन' लिखा गया है, फिर भी न जाने किस कारण से अनेक विद्वानो को इस प्रकार का भ्रम हुआ। निम्बार्क सम्प्रदाय के 'सर्वेश्वर'—सम्पादक श्री व्रजवल्लभ शरणजी से वृन्दावन मे वात करने पर, तथा सलेमाबाद के श्री जी महाराज से तत्सम्वन्धी चर्चा करने पर पता लगा कि रसिक शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया कि इस नाम के उस समय श्री जी महाराज भी थे, अत दोनो नामो मे कुछ भेद करना आवश्यक था। वैसे इनका नाम 'गोविन्द नाटानी' था। मेरे अनुमान से तो इस भ्रान्ति का कारण एक दूसरे से हुवहू अवतरण लेने की परम्परा है। एक और भी वात देखिए। शुक्लजी ने—

'सालिग्राम सुत जाति नटानी वालमुकुद को भैया' के आधार पर इनकी जाति, जैसा कवि ने सकेत किया, वही लिख दी है। 'नाटानी' जाति नही होती, प्रत्युत खण्डेलवाल वैश्यो मे 'नाटानी' गोत्र होता है, नाटानी गोत्र के खण्डेलवाल जयपुर मे वहुत प्रतिष्ठित थे और वहाँ का एक रास्ता अव तक 'नाटानियो का रास्ता' कहलाता है। नाटानियो की प्रसिद्ध हवेली भी उसी रास्ते मे है। उस गली मे अनेक नाटानियो के घर हैं। वालमुकुद नाटानी महाराज जयपुर के दीवान थे और उसी आधार पर वहुत से नाटानी अव भी 'दीवानजी' कहलाते हैं। इनमे श्री सीतारामजी नाटानी से मेरी वहुत सी वातें हुईं। इन वातो के आधार पर ऐसा लगता है कि जिन वालमुकुद का कवि ने अपने ग्रन्थ मे वर्णन किया है और जो कवि के भाई लिखे गये हैं वे जयपुर के प्रसिद्ध दीवान वालमुकुद ही हैं—

.. . वालमुकन्द को भैया।

दोनो का समय मिलाने पर वात वहुत-कुछ मेल खाती है। एक वात और भी सोचने की है। अपना परिचय देते समय कवि या लेखक अपने पिता के नाम का उल्लेख करते हैं। भाई के नाम का उल्लेख विशेप परिस्थिति मे ही किया जाता है। कवि द्वारा अपना परिचय वालमुकुद के भाई के रूप मे देना इस वात को प्रमाणित करता है कि ये वालमुकुद अवश्य ही कोई प्रसिद्ध व्यक्ति थे।

कवि के खण्डेलवाल होने मे किसी प्रकार का सदेह नही। सव से पहला प्रमाण तो

गोविंद कवि वृन्दावन मे गुरु-चरणो मे बैठ कर राधाकृष्ण के पदो की वदना करते हुए काव्य के विभिन्न अगो का निरूपण करते थे। इनके ग्रथो का मत्स्य प्रदेश मे बहुत प्रचार था। हमारी खोज मे राजभवन पुस्तकालयो में 'गोविंदानदघन' की कई प्रतियाँ प्राप्त हुईं। ब्रिटेन के पुस्तकालयो मे भी एक प्रति देखी थी। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के पुस्तकालय मे एक प्रति है। इनके गुरुद्वारे वृ दावन मे तो इनके ग्रथो की कई-एक प्रतियाँ सग्रह रूप में विद्यमान है। इनके अन्य ग्रथो के नाम है—

(१) युगल रसमाधुरी, (२) रामायण सूचनिका, (३) कलियुगरासौ, (४) लछिमनचद्रिका, (५) समयप्रवध, (६) अप्टदेश, (७) पिंगल ग्रंथ, (८) रसिक गोविंद आदि। 'गोविंदानदघन' मे काव्य के विविध अङ्गो की व्याख्या वडे स्पष्ट रूप मे की गई है।

उदाहरण के रूप मे स्वरचित छद ही नही, अन्य कवियो के छद भी दिए गए है। मीमासा को अधिक स्पष्ट करने के लिए गद्य का भी उपयोग किया है और कही-कही तो प्रश्नोत्तर के रूप मे विवेचन बहुत ही साफ हो जाता है। विपय-प्रतिपादन मे अनेक प्रामाणिक ग्रन्थो का उल्लेख किया है। 'रस-निरू-

---

(पृ० ३९ की टिप्पणी का शेप अश)

इनका नाटानी गोत्र है जो जयपुर मे खण्डेलवालो के अतिरिक्त और कही नही मिलता। और निश्चय रूप से कवि का जन्म जयपुर मे हुआ था।

जयपुर जनम जुगल पद सेवी, नित्य विहार गवैया।
श्री हरिव्यास प्रसाद पाय भौ वृन्दा विपिन वसैया॥

इस सबध मे पुस्तक का रचना काल भी कुछ सकेत देता है—

वसु सर वसु ससि अब्द १८५८
रवि दिन पचमी वसत।

आज भी वसत पचमी को खण्डेलवाल वैश्य बहुत महत्त्वपूर्ण मानते हैं। बरेली, आगरा, भरतपुर, अलवर, जयपुर, खण्डेला, दौसा आदि स्थानो मे, जहा खण्डेलवालो की सख्या अधिक है, यह दिन उत्सव के रूप मे मनाया जाता है। जयपुर मे तो इस दिन गगामहारानी के मन्दिर मे विशेप उत्सव होता है। वहा का सारा कार्य वसत से ही प्रारम्भ होता है। यहा के खण्डेलवाल वैश्यो की प्रसिद्ध सस्था हितकारिणी' का वार्षिक अधिवेशन, नव पदाधिकारियो का निर्वाचन आदि कार्य इसी दिन होते है। अतएव नाटानी गोत्र मे उत्पन्न खण्डेलवाल वैश्य गोविंद कवि ने इसी शुभ दिन मे अपने भतीजे श्री नारायण के लिए यह सुन्दर पुस्तक लिख कर प्रदान की।

बेटा बाल मुकद कौ श्री नारायण नाम।
रच्यो तासु हित ग्रथ यह... ..... ॥

पण' प्रकरण देखिए—

अथ रस-निरूपण—अन्य ज्ञान रहित जो आनद सो रस।

प्रश्न– अन्य ज्ञानरहित आनंद तो निद्रा हू है।

उत्तर– निद्रा जड है, यह चैतन्य है।

भरत आचारज सूत्रकार कौ मत—विभाव अनुभाव सचारी भाव के सजोग तै प्रगट होय सो रस। मिलाइए 'विभावानुभाव व्यभिचारि सयोगाद्रस निष्पति,

अथ काव्यप्रकास कौ मत—कारण कारज सहायक हैं जे लोक मे इन ही कौं नाट्य मे काव्य मे विभाव अनुभाव संचारी भाव सज्ञा है। इनके सयोग तै प्रगट होइ जो स्थायी भाव सो रस।

अथ साहित्य-दर्पन कौ मत—

सोरठा– सत्व विसुद्ध अभंग स्व प्रकास आनंद चित।
अन्य ज्ञान नहि सग ब्रह्म स्वाद सहोदरसु॥
मिलाइए–सत्वोद्रेकादखण्डस्व प्रकाशानन्द चिन्मय।
वेद्यान्तर स्पर्शशून्यो ब्रह्म स्वाद सहोदर॥

साहित्यदर्पण–तृतीय परिच्छेद, २

अथ अभिनवगुप्त पादाचर्ज कौ तत्व लक्षण—

रसिकनि के चित्त में प्रमुदादि कारण रूप करि कै॥ वासना रूप करिकै स्थिति॥ नाट्य के काव्य के विषै बिभाव अनुभाव संचारी भाव साधारण ता करिकै प्रसिद्ध। अलोकिक॥ असे निकरि कै प्रगट कीनौं हुवौ। मेरे शत्रु के उदासीन के मेरे नही सत्रु के नही उदासीन के नही॥ या ही तै साधारण। जहा स्वीकार परिहार नही सो साधारण। साधारण उपाय बलि करि कै ततछिन उतपत्ति भयौ। आनन्द स्वरूप। विषयातर रहित। स्वप्रकास अपमित जो भाव। स्व स्वरूप को सी नाही। न्यारौ नहो तौ हू जीव नै विषय कीनौ हुवौ। विभावादिक की स्थिति जा कौ जीवित आनद वृत्ति जाके प्राण। प्रयान कर सा न्याय करि कै अनुभव कीनै हुवौ अगारी फुरत सौ। हृदय मे घरत सौ। आंगन कौ आलिंगति सौ। और ज्ञान कौ छिपावत सौ। परब्रह्म अस्वाद कौ तजावत सौ। अलौकिक चमत्कार करै जो रत्यादि स्थाई भाव सो रस॥

सौ नव विधि—

प्रश्न– सांति कछु कै सै।

उत्तर–साति काव्य मे कहियत नाट्य मे नाही याते।

कवि वल्देव खडेलवाल ने भी अपना ग्रथ "विचित्र रामायण" वसत पचमी को ही समाप्त किया था—अय नम नव ससि समय मे माघ पचमी हेत।

कवि ने ऊपर लिखो सभी पुस्तको का मनन और अनुशीलन किया था, इसमे कुछ भी सदेह नही। भरत मम्मट, विश्वनाथ, अभिनवगुप्त आदि चोटी के आचार्यो के विचार देते हुए रस का निरूपण किया गया है। ये पुस्तके साहित्य-क्षेत्र मे आज भी प्रामाणिक मानी जाती है। कही-कही कठिन प्रसगो को प्रश्नोत्तर के रूप में भी समझाया गया है। काव्य शास्त्र का ज्ञान कराने के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है।

ये महानुभाव सुनी हुई बातो से ही संतोष नही करते थे। स्थान-स्थान पर इनकी बुद्धि का पूर्ण उपयोग देखा जाता है, और कही-कही मत-प्रतिपादन मे विचित्र उक्तिया भी दी हैं। शृ गार के रसराजत्व का प्रतिपादन गोविंदजी इन शब्दो मे करते हैं—

शृ गार लक्षणं—

'शृ ग' कहिये 'मुख्य' ता 'आर' कहिये 'प्राप्ति' मुख्यता प्राप्ति जाहि सब रसादिकनि मे होइ सो शृ गार।

सो द्विविध.. .... संयोग, वियोग .. इसी प्रकार से

अथ सजोग लक्षण—

विलासी जाहि अवलम्ब करिके परसपर सेवन करै सो सयोग। नाइका नायक परसपर आलंबन। चन्द्र चदन कुहू सब्दादि उद्दीपन। भ्रू विक्षेप कटाक्षादि अनुभाव। आलस चिंता लज्जा निद्रा उत्कठा हर्षादिक सचारी भाव। रति स्थायी भाव। स्याम वर्ण। श्रीकृष्ण देवता।

सवैया—

सखीन के आछे अलापन ते उह कुज मैं क्यो हू गई सुपदैन।
विलोक पिया रसिया कौ नई दुलही सुभई भय चकृत नैन।।
लख्यौ पुनि त्यौं अपने तनकौ अति गाढै गुविंद रह्यौ रस लैन।
विलज्जित ह्वै कै तवै रस कूजित कूजन को लगी कोमल वैन।।

इहा नायका विषयालवन—कुज उद्दीपन —रति कूजित अनुभाव – लज्जा त्रास सचारी भाव। रति–स्थायी भाव।

इसके अतिरिक्त कवि ने लाल, कासीराम, सिरोमन, सोमनाथ, किशोर, सेनापति, घनस्याम, कवित्त 'काहू को' आदि के उदाहरण देकर अपने भाव का स्पष्टीकरण किया है। यह ग्रथ परम विलक्षण है, क्योकि इतना सुंदर और विद्वतापूर्ण समाधान तथा तुलनात्मक विश्लेपण जिसमे सस्कृत कवियो का आचार्यत्व तथा हिन्दी कवियो का कवित्व मिश्रित है, अन्यत्र मिलना संभव नही।

इन कवि महोदय की जो हस्तलिखित पुस्तके मुझे मिली उनमे गोविंदानद-घन की प्रतियो मे ३०० से ३१० तक पत्र थे। इनके द्वारा दिए गए उदाहरणो से पता लगता है कि उस समय तक मत्स्य के उत्कृष्ट कवि सोमनाथ की काफी प्रसिद्धि हो चुकी थी। सोमनाथ के अनेक उदाहरण दिया जाना इसका ज्वलत प्रमाण है। सभव है, इन महानुभाव का कवि सोमनाथ के पास आना जाना रहा हो और तभी इनके ग्रथो का मत्स्य मे इतना प्रचार बढा हो।

इस ग्रथ-रत्न मे चार अनुबंध है—

१.	रस भाव विभाव अनुभाव सात्विक	प्रथम अनुबध	२८५ छद
२.	नायका नायक निरूपण	द्वितीय अनुबंध	२४८ छद
३	दूषण उल्लास निरूपण	तृतीय बध	३५ छद
४.	गुण अलकार निरूपण	चतुर्थ बध	८७८ छद

उपर्युक्त वर्णन से इनके आचार्यत्व मे किसी प्रकार का सदेह नही रह जाता। इस पुस्तक का विस्तार, इनका काव्य शास्त्र परिचय, काव्य के विभिन्न अगो की विवेचनात्मक प्रणाली, मौलिकता प्रदर्शन, इनके आचार्यत्व की घोषणा करते है। साथ ही ये एक सुदर कवि भी है।

दो उदाहरण—

सग अली नवली अलि की कर कज की मत्र कली लै फिरावै।
अग सुवासिन कोमल हासनि नैन विलासनि सैन नचावै॥
भूषन भेद की कौन कहै धुनि नूपुर ही की कही नहिं आवै।
नृत्यति सी गति वानी विचित्रित मित्र गुविंद कौ चित्त चुरावै॥

घुघराली अलक सवारी अनियारी भौहै,
कजरारी आखें कजरारी मतवारी मैं।
धारी सारी जरतारी सरस किनारी वारी,
मालती गुही है वैनी कारी सटकारी मै॥

वारी वैस रूप उजियारी श्री गुविंद कहैं,
वारी सुरनारी नरनारी नागनारी मै।
मिलन विहारी सौ दुलारी सुकुमारी प्यारी,
वैठी चित्रसारी की तिवारी सुषकारी मै॥

मत्स्य प्रदेश से सबधित अनेक कवियो ने सुदर कृतियो की रचना की। इनकी पुस्तको को देखने से पता लगता है कि इनमे से बहुत से आचार्य पदवी के अधिकारी है।

सर्व प्रथम शिवराम को ही लीजिए।[1] इनकी जो एक ही पुस्तक उपलब्ध हुई है उसी के आधार पर इनको कविश्रेष्ठ कहने मे सकोच नही हो सकता। उस युग मे इनको उस पुस्तक पर ३६,००० रु० पुरस्कार रूप मे आदरपूर्वक दिया गया था। पुस्तक के अत मे लिखा है—

जवहि ग्रथ पूरन भयौ, तवहि करी वकसीस।
परें रुपैआ मान सौ, दए सहस छहतीस॥

इस पुरस्कृत पुस्तक का नाम कवि ने 'नवधा भक्ति' लिखा है। रचयिता का नाम 'शिव सुवस शिवराम कविराज' लिखा गया है। पुस्तक का पूरा नाम 'नवधा भक्ति रागरस सार' है। पुस्तक समाप्त होने की तिथि कवि ने निम्न प्रकार लिखी है।

दपति रस मुनि ससिहि धर, फागुन शुदि रविवार।
तिथि पूरन पूरन भयौ, भक्ति राग रस सार॥

सूरजमल का राज्यकाल स० १८१२ से १८२० वि० है, अतएव इस ग्रथ की रचना उनके युवराज काल मे ही हुई। इस पुस्तक मे ५ खड हैं —

१ प्रथम खड– कवि तथा राजा के कुल का वर्णन आदि।
२ द्वितीय खड– सूरजमल कौ नगर वंस सभा वर्णन।
३ तृतीय खड– पुस्तक के दो पत्र नही हैं, विषय सदिग्ध है।
४. चतुर्थ खड– प्रेम लक्षना।
५. पचम खड– गुन अस्त्र-शस्त्र वर्णन।[2]

इस हस्तलिखित पुस्तक मे 'श' और 'ण' शुद्ध रूप मे लिखे गए हैं—'स' और 'न' के रूप मे नही। स्थान-स्थान पर सस्कृतगर्भित भाषा मिलती है जो कवि की ज्ञानगरिमा और भाषाशुद्धि का उदाहरण है। प्रथम छप्पय ही देखिये—

गवरिनद जुतचद सकल आनद कदवर।
एकदत सोभत भाल चंदन विशालधर॥
विघ्न हरन दुखकटन घरन गज वदन प्रचडन।
जगवदन वुधिसदन हर्ष शिवकुल जश मडन॥
शिवराम कवित फरसा सुकवि, कर त्रिशूल गणपति धरहि।
श्री सुजान ग्रह दिन रयन, पलु पलु पलु रक्षा करहि॥

---

[1] कविराज शिवराम महाराज सूरजमल के पास उनके युवराज काल से ही रहते थे। उनके ग्रथ 'नवधा भक्ति रागरस सार' मे 'श्री मन्महाराज कुमार श्री सूरजमल' लिखा है।

[2] इस में अनेक राग-रागिनियो के रूप का वर्णन है—जैसे 'राग विलावल कौ रूप'।

सस्कृतगर्भित भाषा की छटा देखे—

त्वमेव नित्य मगला सुसिद्धि निद्धि दायिनी।
त्वमेव दीप ज्योति षड मडलेश रायिनी॥
त्वमेव चड मुड से अषण्ड ब्रह्म षडिनी।
त्वमेव वाक वादिनी सुबुद्धि नित्य दायिनी॥

सूरजमल का यश सुन कर ये कविवर उनके पास आये—

श्री जदुवस सुजान बली रतनाकर से गुन चौदह पाये।
कीरति हू सुनि कै शिवराम सु सूरजमल्ल को देखने आये॥

अपने सबध मे लिखते है—

सकुहाबाद परिगनै खरी दषिन दिसा वषानौं।
पच कोस तहि तै पारोली जमुना तट ग्रह मानौं॥
तहा वसत शिवराम कवीश्वर धर्म कर्म गुन जेता।
आदि अनादि होत हैं आये सतजुग द्वापर त्रेता॥
नगर कुम्हेंर जानि मथुरा ढिग, सूरजमल महाराजा।
नवधा भक्ति राग रस वरन्यो, सुनो तुम्हारे काजा॥
धर्म कर्म मो सदा रहो तुम, प्रेम प्रीति हरि साजा।
कवि शिवराम कहत गुन वरनै, उदधि पार जस वाजा॥

पुस्तक मे कवि ने अपने वश का वर्णन भी किया है। सभवत अलाउद्दीन के दरवार मे इनके वंशजो का मान था। और उनमे से कोई वादशाह का वजीर भी था।

साहिनसाहि अलावदी, दिल्लीपति रनवीर।
वोलि कहीजै सर्म सो, तुम वजीर गभीर॥
भुज प्रचड नव खड तहि, वढयौ वजीर प्रताप।
करी कृपा तव साहिजू, दई हाथ की छाप॥

यह पुस्तक कुम्हेर मे लिखी गई, इसका भी प्रमाण है। उन दिनो सूरजमलजी भी कुम्हेर मे ही रहते थे।[1]

सूरजमल्ल सुजान कौ, पुर कुम्हेर शुभथान।
कछु मिश्रित वर्णन करयौ, राजभोग अवजान॥—क–यौ[2]

इस ग्रथ का आरभ समय सवत् १७३५ वि० है।

सवत् सत्रह सै बरस, अरु पैंतीस बषान।
माघ मास सित अष्टमी, वार बरनि गुर पानि॥

---

[1] मथुरा से २२ मील की दूरी पर।
[2] 'र' का मिलाना देखें "यौ"।

तवै ग्रथ कौ जन्म भव, करे कवित्त सु तीनि।
दये ग्रथ कै आदि ही, जानहु परम प्रवीन ।।

इन कविराज का वर्णन प्रमुख रूप से रागो का है। छहो रागो के नाम वताते हुए इनका कहना है—

प्रथम राग [१] भैरव कहो, [२] मालकोश [३] हिंडोल।
[४] दीपक पुनि [५] श्री राग शुभ, [६] मेघराग शुभ वोल ।।

इन एक-एक राग के ८ पुत्र और ५ स्त्रिया हैं और उनका गायन समय के अनुसार होता है —

एक एक कै आठ सुन, पाच भारजा मान।
अपने अपने रितु समय, गावत चतुर सुजान ।।

भैरव राग की पाच स्त्रियो के नाम सुनिए—

[१] वगाली अरु [२] भैरवी, [३] वेला [४] वली प्रमान।
[५] पुन्य स्नेहा भारजा, भैरव राग सुजान ।।

अव आठो पुत्र भी देखिये—

[१] वगाली शुभ राग सु [२] पचम जानियै।
[३] मधुर राग [४] देशाप [५] सुहर्ष वखानियै ।।
[६] ललित राग शुभ जान [७] विलावल मानि जिय।
पै हा [८] माधव राग सकल सुत जोनिलय ।।

राग विलावल का स्वरूप भी देख लीजिये—

तन मे किमोगी भोगी गोरी गोरी राजै वर,
चन्द्रकान्त चन्द्रिका उजारी जाकी घर मे।
पीय सो सकेत पाय दयावत पूरी भरी,
भूपन अनन्त मनि भूपन से घर मे ।।
नीलज कमल कान्ति भाति भाति देह दिपै,
वार वार मुसकात शशि रात भर मे।
ऐंड मो ऐडात कछु अचल उडात उर,
नागरी 'विलावल' सरोज लिये कर मे ।।

गौने चलि आई नई दुलही सुहाग भरी,
भावभरी वेलि सुवरन की सुभोरी सी।
कहै शिवराम रति मदिर लो लाई मखी,
वातन लगाय गुन गनन की गौरी मी ।।
देव भजति प्यारे गहि लीनी दौरि चचला सी,
ता समै तिहारे भई प्यारी गति औरी मी।

कपत त्रसत कुम्हलानी अकुलानी परी,
केहरि की कौरी मे कुरग की करोरी सी ॥

इसी प्रकार सभो रागो के स्वरूप का चित्रण किया गया है। पुस्तक के नाम से ही पुस्तक का विषय ज्ञात होता है।

१ नवधा भक्ति

२ राग

३ रस—इन सव का सार अत 'नवधा भक्ति राग रस सार'

नव प्रकार को भक्ति के वारे मे भी कवि की उक्ति देखें—

१ स्रवन सुनत पुलकित हृदय नयन द्रवत जलधार।
२ कीरतन वानी कि हित गद गद मुदा विदार ॥
३ सुमरन तेरे मत्र तन प्रफुलित सव अँग अंग।
४ परस वन अभिराम छवि चढै सुपानि रग ॥
५ अरचन तैं आनद रति वदन विहृचल दीन। ६
७ दरसतन उतसव सुरस प्रगट सखा सुख लीन ॥ ८
९ आत्म निवेदन रिद्धि सिद्धि मन वंछित सोई साथ।
नवधा विधि शिवराम कवि चढै प्रेम हरिहाथ ॥[1]
नवधा भक्ति सुभाव यह सकल सिद्धि को सारु।
वरन सिंधु ससार तैं लहै सुपावै पारु ॥
नवधा भक्ति हिये वरहु सूरज मल निहसक।
प्रीति राधि शिवराम सौं जैसे नव कौ अक ॥[2]

कवि ने कई स्थानो पर संस्कृत के श्लोको का प्रयोग भी किया है। उदाहरण के लिए १४ प्रकार के कायस्थ देखिए—

१ नैगमा २ माथुरा ३ गौरा ४ माडीर ५ वल्लभीस्तथा।
६ श्रीवास्तव्य ७ नागरश्चैव ८ सूर्योच ९ सक्सेनय ॥
१० सभरी ११ संभरश्चैव १२ कुलश्रेष्ठ १३ चुनाहक।
१४ अहिष्टानक कायस्था एते चतुर्दश स्मृता ॥

---

[1] यहा भक्ति के ९ प्रकार वताये गये हैं— १ श्रवण २ कीर्तन ३ स्मरण ४ स्पर्श ५ अर्चन ६ वदन ७ दासत्व ८ उत्सव ९ आत्म-निवेदन।

[2] कवि का गणित–ज्ञान देखने योग्य है। नौका अंक सर्वदा ९ ही रहता है, जैसे ६३, ६+३, ९ ५७६ ५+७+६=१८, १+८=९। ९ का कितना ही गुणा करें अगो का योग सर्वदा ९ ही रहेगा। कवि का कहना है कि सूरजमल कितने ही बढें किन्तु शिवराम से एक सी प्रीति रखें। पुरस्कार मे भी उन्हे ३६,००० रुपया मिला था। इसमे भी ३+६=९ की प्रीति का पालन किया गया।

उस समय तक भरतपुर राज्य में कई नगरो का निर्माण हो चुका था—

गोवर्द्धन श्रीमानसी गगा सोभित आई।
जिनि पै श्री व्रजराज जू कीनि कृपा बनाई ॥

× × ×

पुनि पूर्व देस मथुरा वषानि।
पुरमर्थ[1] दक्ष दक्षिण सुजानि ॥
सिनसिनी[2] वृद्ध वाडव वषानि।
दक्षिण सु वैर[3] सोभित सुवेस।
पुनि दीघ[4] महा उत्तर सुदेस ॥

इस पुस्तक मे राग-रागनियो का जैसा सुन्दर विवेचन है वैसा बहुत कम देखने मे आता है। इस ग्रन्थ को हम अच्छी तरह लक्षण ग्रन्थ की कोटि मे ले सकते हैं, क्योकि इसमे भक्ति, राग और रस तीनो की विशद व्याख्या की गई है। तीनो को देखते हुए राग की व्याख्या बहुत उत्तम दिखाई देती है। कवि की कविता के अशो को देखने पर मालूम होता है कि वे सस्कृत के भी पडित हैं और उन्हे गणित का भी ज्ञान था। शिवराम की बहुज्ञता मे किसी प्रकार का सदेह नही किया जा सकता। वे भक्ति, राग, काव्य, गणित, शास्त्र, दर्शन आदि सभी विद्याओ मे पारगत थे। उनकी कविता का एक नमूना और देखिये जहा 'निधि' शब्द के द्वारा एक विचित्र चित्र उपस्थित किया गया है—

१ सुभनिधि सभुनिधि सभानिधि सोभानिधि
सील कौं सलिलनिधि सब सुखनिधि हौ।
देवनि कौ दाननिधि दीनन कौ दयानिधि-आनन्द
कौ निधि अरु नेह नवौनिधि हौ ॥
गुननिधि ज्ञाननिधि मान सम्माननिधि
जदवस श्री सुजान सील कुलनिधि हौ।
कलानिधि केलिनिधि करन कल्याननिधि
कवि शिवराम काज राज कृपानिधि हौ ॥ १

२ रूपनिधि रसनिधि रसनि रसिकनिधि
रौर के हरननिधि निधने के निधि हौ।
वेद निधि विद्या निधि परम प्रवीननिधि
विश्वनिधि बुद्धिनिधि ऋद्धि सिद्धिनिधि हो ॥

---

[1] भरतपुर, भर्थपुर।
[2] सिनसिनी—भरतपुर के जाट राजाओ का उद्गम-स्थान।
[3] भरतपुर से ३०-३५ मील—बयाना से मोटर द्वारा मार्ग।
[4] भरतपुर का प्रसिद्ध कस्बा डीग, जो निश्चयपूर्वक दीर्घ का अपभ्र श है।

प्रेमनिधि प्राननिधि पूरन कृपालनिधि
प्रगट पियूषनिधि निधिन की निधि हो।
तेजनिधि जैतनिधि भाग श्री सुजाननिधि[1]
कवि शिवराम महाराज जसनिधि हो ॥ २

इस पुस्तक के पढने से मैने निम्न निष्कर्ष निकाले[2]—

१. शिवराम की कविता उच्च कोटि की है। भाषा की स्वच्छता, अलकारो का प्रयोग और शब्दो का चयन, सब पर पूर्ण अधिकार दिखाई देता है।

२ इनकी कविता से भरतपुर राज्य की बहुत सी बाते मालूम होती हैं। साथ ही इनके तथा इनके आश्रयदाता के वश-सबधी बहुत सी बातों का ज्ञान होता है।

३. कवि की बहुज्ञता मे किसी प्रकार का सदेह नही रह जाता। वे हिन्दी तथा संस्कृत दोनो भाषाओ के पूर्ण पडित थे। भक्ति, राग और रस तीनो का सार एक ही स्थान पर उपस्थित करना इसका प्रबल प्रमाण है।

४ राग-रागिनियो का बहुत ही वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। उनके नामो की गिनती ही नही की गई वरन् उसका पूर्ण स्वरूप, कुटुम्ब-परिवार सहित उपस्थित किया गया है। काव्य और गायन दोनो तरह से यह एक उत्तम प्रयास है।

---

[1] सूरजमल का दूसरा नाम 'सुजानसिंह' भी था। इन्हें सूजा, सुजान, सूरज, सूरजमल, सूरजमल्ल आदि अनेक नामो से सबोधित किया जाता था।

[2] कवि शिवराम को लक्षणकार और आचार्य मानने मे किसी प्रकार की कठिनाई नही दिखाई देती। साथ ही ये एक उत्तम कोटि के कवि भी थे। चादनी का चित्रण देखें—

नभ सुरसरि की लहरि लहरति किधौं,
छीरनिधि छीटा छिहरति छवि छाई है।
रामरूप रजित के रावटी सुधारि किधौं,
फटिक महल भूमि आरसी बनाई है।
पूरि के कपूर पूरि चदन की चूरि व्योम,
पारद तुषार की बुषारी बिषराई है।
कीनो तास आसन निसा विलास चादनी कि,
चद अरु चादनी की चादरि बिछाई है॥

इस छद मे उनके मित्र 'रामरूप' का नाम आता है।

जब कवि शिवराम सूरजमल के पास रहते थे, लगभग उसी समय उनके भाई प्रतापसिंहजी[1] के पास दो अत्यत उच्च कोटि के कवि और आचार्य रहते थे। इनके नाम है सोमनाथ और कलानिधि।

सोमनाथ का नाम हिन्दी काव्य-साहित्य मे अत्यत प्रसिद्ध है। जब रीतिकाल के आचार्यो का वर्णन आता है तब माथुर कवि सोमनाथ का वर्णन अवश्य मिलता है। हिन्दी के प्रारम्भिक इतिहासो मे भी सोमनाथ का नाम दिया गया है। सोमनाथ का 'रस-पीयूषनिधि' नाम का एक सर्वागपूर्ण ग्रन्थ है। जिस प्रकार गोविन्द कवि का 'गोविन्दानदघन', देव का 'काव्यरसायन', दास का 'काव्य-निर्णय', प्रताप साहि का 'काव्यविलास', सूरति मिश्र का 'काव्यसिद्धान्त' आदि ग्रन्थ हैं उसी प्रकार सोमनाथ के 'रसपीयूषनिधि' मे काव्य के सम्पूर्ण अगो का वर्णन किया गया है। इनके इस परम प्रसिद्ध ग्रन्थ मे २२ तरगे हैं और पुस्तक के अत मे लिखा है—

'इति श्री मन्महाराज कुवार श्री परतापसिंह हेत कवि सोमनाथ[2] विरचते रसपियूपनिधौ अर्थालकार ससृष्ट सकर अलंकार वरनन नाम द्वाविंसतितम-स्तरगा २२।' ये बाईस तरगे इस प्रकार है—

१ राजकुल वरनन,

---

[1] बदनसिंहजी के कई पुत्र थे। इनमे दो बहुत ही प्रतापी थे—

१ सूरजमल—जो कुम्हेर मे रहा करते थे।
२ प्रतापसिंह—जिनका निवास-स्थान वैर था।

ऐसा मालूम होता है कि इन स्थानो का पूरा अधिकार इन राजकुमारो को मिला हुआ था। वैर मे प्रतापसिंहजी के वशज अभी तक हैं और वैर वाले राजाजी कहलाते हैं। इनमे से कई से मेरा परिचय है किन्तु परिचय होने पर भी कोई साहित्य उपलब्ध नही हो सका। कहा जाता है कि इन लोगो के पास काफी मूल्यवान सामग्री है।

[2] इनके बहुत से ग्रन्थो का नाम हमने सुना था। खोज मे निम्न ग्रन्थ मिले—

१ ध्रुवविनोद
२ महादेव कौ व्याहुलो
३ सुजानविलास
४ रसपीयूषनिधि
५. प्रेमपचीसी
६ सग्रामदर्पण
७ वृजेंद्रविनोद
८ रासपचाध्यायी
९. शशिनाथविनोद
१० रामायण के अनुवाद

इनके ग्रन्थो से यह भी पता लगता है कि ये कुछ दिनो नवाब आजम खा के आश्रय मे भी रहे थे, और वहा रह कर इन्होने 'नवावोल्लास' नाम का एक ग्रन्थ और लिखा है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकार इन्हे देव, दास, श्रीपति आदि की कोटि मे रखते है।

२ कविकुल वरनन,
३ गुरु लघु गनागन मात्रा वरन प्रस्तार नष्ट उदष्ट मेरु मर्कटी पताका वरनन,
४ मात्रवलि वरनन,
५ वर्ण वृत्य,
६ सव्दार्थ,
७ ध्वनि भेद रस लछन रग स्वामी,
८ स्वकीया भेद,
९ परकीया सामान्या,
१० मानमोचन वरनन,
११ कृष्णाभिसारिका,
१२ उत्तमादि नाइका,
१३ नाइका दर्सन दृष्टानुराग चेष्टा,
१४ हाव वरनन,
१५ दसा वरनन,
१६ रस ध्वनि,
१७ असलक्ष्यक्रम व्यगि ध्वनि,
१८ ध्वनि,
१९ मध्यम काव्य गुनीभूत व्यगि,
२० काव्य दोष वरनन,
२१ काव्य गुण अलकार वरनन,
२२ अर्थालकार ससृष्ट सकर अलकार वरनन,

उस समय की प्रचलित पद्धति के अनुसार इन बाईस तरगो मे काव्य के सम्पूर्ण अगो का विवेचन किया गया है। तरग आठ से पन्द्रह तक नायिका भेद से सवधित है। पिछली ६ तरगे विशेष रूप से दृष्टव्य है क्योकि इनमे काव्य-प्रकाश आदि ग्रन्थो की छाया दिखाई देती है। हमारी खोज मे इस ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध हुईं जिनसे पता लगता है कि यह ग्रन्थ काफी प्रचलित था।

ग्रन्थ का आरम्भ इस प्रकार किया गया है—

"श्री गणेशाय नम । अथ रसपियूषनिधि लिष्यते।

छप्पय—

सिंधुर वदन अनद चद सिंदूर भाल धर।
एक दत दुतिवत वुद्धि निधि अष्ट सिद्धिवर॥

मद जल श्रवत कपोल गूंजरति चचरीक गन ।
चचल श्रवन अनूप थोद[1] थरकत मोहति मनि ॥
सुर नर मुनि वरनत जोरि करि गुन अनत इमि ध्यायचित्त ।
ससिनाथ[2] नद आनद करि जय जय श्री गणनाथ नित ॥

कवि ने भरतपुर के राजकुल का वर्णन इतिहास की दृष्टि से यथावत् किया है । इनके अनुसार भी वदनसिंहजी के दो पुत्र वहुत गौरवशाली थे । सूरजमल राज-कार्य मे अधिक भाग लेते थे—

राजकाज करता वडे सूरजमल्ल उदार ।

प्रतापसिंहजी सूरजमल के छोटे भाई थे और कवियो के लिए कल्पवृक्ष के समान थे । इनके दरबार मे अनेक कवि रहते थे । सोमनाथ भी इन्ही के दरबार मे थे । अपने आश्रयदाता का वर्णन करते हुए इनका कहना है—

वाहुवली तिनके अनुज, श्री परताप सुजान ।
धरम धुरधर जगत मे, मोज भोज परमान ॥
समझ कुमर परताप को, निपुन राज के काज ।
दियौ वैरि[3] गढि हरष के, वदनसिंह महाराज ॥

अपने आश्रयदाता की प्रशंसा करने मे सोमनाथ ने उस समय की प्रचलित प्रणाली का अनुगमन किया है जिसके अनुसार आश्रयदाता मे सम्पूर्ण गुणो की कल्पना की जाती थी और राजधानी को इन्द्रपुरी के समान समझा जाता था । प्रतापसिंहजी के दरवार मे वहुत से गुणी लोग रहते थे और वैर के राजा की[4] उदारता का उपभोग करते थे ।[5] प्रतापसिंह वीर भी थे ।[6] उस समय के लिए

---

[1] स्थानीय प्रयोग, अर्थ है — 'मोटा पेट' ।

[2] कवि के अनेक नाम मिलते हैं—सोमनाथ, सोम, ससि, ससिनाथ, नाथ, शशिनाथ ।

[3] वैर ।

[4] वैर का वर्णन—

सुदर सफल चहु ओर दरसत वाग अरविंद मडित सरवर हमेसके ।
वसै चार्यो वरन जितैया जग जालम और राचे प्रेम रग साचे वचन सुवेसके ॥
जगमगै गढ महा महल विलद महाराजै श्री प्रताप मानौ उदय दिनेसके ।
आठहू पहर जहा मोद नित नेरै होत वैर पर वारौ कोटि सहर धनेस के ॥

[5] सिद्ध मसनद पै विराजै परतापसिंह भूपनि मयूपनि हवै झलकै हुलास है ।
पाछे चौरवारे आछे अवसनिवारे आगै सोहत सुगन्ध भीनै सुन्दर पवास हैं ॥
चहु ओर सर्मे निरेस कहि सोमनाथ हिये मे सुहृदपुप देव कौ तलास है ।
आस पास मडित अखड नीति वारे जहा पडित प्रकास वाकवानी कौ विलास है ॥

[6] प्रताप की तेग देखिए—

सकर के अग सी है गग की तरंग सी ,
विरच के विहगम सी चद तैं उदार सी ।

(टिप्पणी का शेष अश आगे के पृष्ठ में है)

यह आवश्यक था कि कोई भी राजा युद्ध के लिये सर्वदा प्रस्तुत रहता था।

छिरौरा वश मे उत्पन्न कवि सोमनाथ प्रतापसिह जैसे आश्रयदाता को पाकर कृतार्थ हो गए और अपनी वाणी का पूर्ण उपयोग किया। इनके ग्रन्थो से विदित होता है कि कवि ने अपनी बुद्धि का उपयोग अनेक क्षेत्रो मे किया और साहित्य के विविध अगो की पूर्ति सुन्दर रूप मे की। इस ग्रन्थ मे कवि ने अपने वश का वर्णन भी किया है और अपने लिए लिखा है—

सोमनाथ तिनकौ अनुज, सब तै निपट अजान।

यह देखने की बात है कि जहा रीतिकालीन कवि अपनी प्रशसा के पुल बांध देते थे और अपनी बुद्धि तथा काव्य-चातुर्य की प्रशसा करते अघाते नही थे, वहा सोमनाथ ने अपने को 'सब तै निपट अजान' कह कर उसी आदर्श का अनुकरण किया है जिसके अनुसार महात्मा तुलसीदास ने अपना परिचय 'कवित विवेक एक नहि मोरे' अथवा 'मूढ मति तुलसी' कह कर दिया है।

इस ग्रन्थ के प्रणयन हेतु प्रतापसिहजो ने स्वयं ही कवि को आज्ञा दी थी। कवि लिखता है—

सु यह कुमर परताप कौ, हुक्म पाइ मविलास।
रस पियूष निधि ग्रन्थ कौ, बरनत सहित हुलास॥

एक बार पुन तुलसी के अनुकरण पर सत और असन्तों के चरणों की वदना करते हुए कवि सोमनाथ कहते हैं—

सज्जन दुर्ज्जन की सदा, सहस गुनी परनाम।
दया कीजियौ दीन लपि, सोमनाथ को नाम॥

सबसे पहले कवि 'पिंगल' का प्रकरण लेते हैं क्योकि उनका कहना है—

छंद रीति समझै नही, विन पिंगल के ज्ञान।
पिंगल मत तातै प्रथम, रचियत सहित सयान॥

(पृ० ५२ की टिप्पणी का शेष अश)

सारदा छविश्र सी अनत्त मित्र मित्र सी,
सुरेस आतपत्र सी नछत्र की कतारसी।
बाहुवली बषत विलद परतापसिंघ,
किति तुव राजै इमि थिरा के सिंगारसी।
रूप के पहारी अमद छीर धारसी।
पियूष पारावार सी सतोगुन कै सारसी॥

अब पिगल के सविस्तार निरूपण की ओर अग्रसर होते है—

पिंगल की मत निरिष के नाथ[1] कहै पहिचान।

तदनन्तर वे 'मप्त मात्रा प्रस्तार स्वरूप प्रसग' को लेते है—

प्रथमहि गुरु तर लघु लिषै, आगै वरन सरूप।
जे अवसेष सु गुरु लिपै, यह प्रस्तार अनूप॥

इसके पश्चात् 'पच वरन प्रस्ताव स्वरूप' का वर्णन है, फिर सप्त मात्रा प्रस्तार के २१ योग बताये है। पचमात्रा के ३२ योग बताये है। पच मात्रा के ३२ योग बताये गये हैं। 'गण' की व्याख्या वर्ग-प्रणाली से की गई है जिससे सारी बाते एक साथ स्पष्ट हो जाती है। फिर तीन मेरु की बात बताई है। छन्दों का वर्णन उच्च श्रेणी का है किन्तु इममे कुछ उलझावट सी आ जाती है। छन्दो के प्रकरण मे कवि की प्रतिभा दिखाई पड़ती है और छन्दो सबधी वर्णन काफी अच्छा है। आवश्यकतानुसार छन्दो का स्पष्टीकरण करने मे अनेक प्रणालियो का प्रयोग किया है। मात्रा मर्कटी के स्वरूप को भी वर्गाकार रूप मे समझाया गया है।

इसी प्रकार काव्य के विभिन्न प्रसगो को विस्तृत व्याख्या के साथ बताया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने मम्मट के काव्यप्रकाश पर अधिक ध्यान दिया है और पुस्तक की पिछली तरगो मे ध्वनि-प्रकरण विस्तार के साथ समझाया गया है। रस, नायक-नायिका आदि प्रसगो को भी सुन्दरता के साथ बनाया गया है। व्याख्या को अधिक स्पष्ट बनाने के लिए गद्य का प्रयोग भी किया गया। वीभत्स का उदाहरण लीजिए—

इतही प्रचड रघुनदन उदड भुज,
उतै दसकठ वढि आयौ रुड डारि कै।
सोमनाथ कहै रन मड्यौ फर मडल मे,
नाच्यौ रुद्र शोणित सो अगनि पखारि कै॥
मेद गूद चरवी की कीच मची मेदनी मे,
वीच वीच डोले भूत भैरो मुड धारि कै।
चाइन सौ चडिका चवात चड मुडन कौ,
दत सौ अतनि चचोरे किलकारि कै॥[2]

गद्य मे व्याख्या—

'इहा चडिका और देषनि वारो आलवन विभाव, और आतनि को

[1] सोमनाथ।

[2] 'रस ध्वनि' १६वा तरग—रस पीयूपनिधि।

चचोरवौ उदीपन विभाव और देषन वारे के बचन अनुभाव और असूया सचारी भाव इनतै ग्लानि स्थायी भाव व्यगि तातै वीभत्स रस ।'

इस प्रकार रस के चारो अगो को बताते हुए आचार्य सोमनाथ ने उक्त छद मे वीभत्स की प्रतिष्ठा की है ।

नायिका वर्णन मे कवि प्रचलित प्रणाली से पीछे नही रहता । परकीया को देखिए—

सुष पावति ज्यो तुम त्यो हमहू,
कवहुक तो भूलि इतैवौ करौ ।
दुरि दूर ही दूर रहो अनतै,
छिनसे निस द्यौस वितैवौ करौ ॥
चित दैकै सुजान सुनौ ससिनाथ,
सनेह की रीति जितैवौ करो ।
अषियांन की ताप रितैवौ करौ,
सुरतो मुसक्याइ चितैवौ करो ॥[1]

और यह कृष्णाभिसारिका—

म्रगमदसार सब अगनि लगायौ आछै,
अतर बसायौ नील अबर उदार मे ।
छोर दीनी वेंनी कसी कचुकी तनेनी करि,
पेंनी करी डीठ अति अजन के ढार मे ॥
सोमनाथ कहैं यो सिंगारि सजि चदमुषी,
छिपकै सिधारी रजनी के अभिसार मे ।
कछु न सम्हारि टूटे मनिनिके हार,
करी मदन सुमारि मन नंद के कुवार मे ॥[2]

थोडा 'हाव' और देख लीजिए फिर इस प्रसग को बन्द करेंगे—

प्रात उठी अरविंदमुषी निसि कै करि केलि कलानि सो पागी ।
आरसी हेरति ही उर माझ अयान छटा सु निरतर जागी ॥
चारु कपोलनि मे झलकी दुति कान के मानिक तै रग रागी ।
जानि के पीक लकीर लगी सु गुलाब के नीर सौ धोवनि लागी ॥

कवि ने सभी प्रसगो को स्पष्ट बनाने के लिए स्वरचित और उपयुक्त उदाहरण दिए हैं । काव्य-गुण अलकार वाली तरग मे अनेक आकृतिया, वर्ग, खाने, चित्र आदि है । मत्री गति, अश्वगति, त्रिपदी, उर्हन तारा, धनुर्वंधचित्र, गतागत-

---

[1] 'परकीया सामान्या' नवम तरग—रस पीयूष निधि ।

[2] 'कृष्णाभिसारिका' एकादश तरग ।

चित्र, चरणगुप्त आदि को चित्रो द्वारा मनोहर प्रणाली मे हृदयगम कराया गया है।

मत्री गति चित्र स्वरूप देखिए—

क	ही	मु	न	वा	त	ग	ही	उ	न	ता	त
उ	ही	र	न	धा	त	न	ही	वि	न	मा	त
स	ही	म	न	पा	त	उ	ही	अ	न	दा	त
ज	ही	व	न	पा	त	उ	ही	सु	न	आ	त
न	ही	अ	न	खा	त	य	ही	गु	न	गा	त
म	ही	व	न	खा	त	द	ही	ति	न	खा	त
स	ही	ब	न	वा	त	ति	हीं	व	न	जा	त
य	ही	दि	न	रा	त	च	ही	प	न	पा	त

प्रत्येक पक्ति मे 'ही' 'न' 'त' की दो-दो बार आवृत्ति हुई है, साथ ही प्रत्येक पक्ति मे लघु गुरु का क्रम वरावर चला है।

अन्तिम वाईसवी तरग वहुत वडी है क्योकि इसमे अलंकार-प्रकरण है। शब्दालकार के अतिरिक्त अन्य सभी अलकारो का इसी तरग मे निरूपण हुआ है। इस तरग मे ३०३ छद हैं जिनमे से २९७ छद अर्थालकारो की परिभाषा, उदाहरण और व्याख्या मे लिखे गए हैं। इस प्रकरण का निर्वाह वहुत सावधानी के साथ किया गया है। जिस प्रकार काव्यप्रकाश के अन्तिम उल्लास मे अलकारो का निरूपण है उसी प्रकार इस ग्रन्थ मे भी अन्तिम तरग का उपयोग अलकारो को स्पष्ट करने के लिए किया गया है। काव्यप्रकाश में उल्लासो की सख्या १० है और सोमनाथजी के पीयूषनिधि में २२ तरगे है किन्तु इन बाईस तरगो को काव्यप्रकाश के १० उल्लासो में भली प्रकार बिठाया जा सकता है। प्रथम दो तरग परिचयात्मक है तथा ८ तरग से १५ तरग तक नायिका वर्णन है, अतएव इन तरगो को छोड़ कर बाकी तरगे इस प्रकार बिठाई जा सकती है—

१. काव्यप्रकाश का प्रथम उल्लास			रसपीयूषनिधि तरग	३
२.	,,	,, द्वितीय	,,	६, ७
३.	,,	,, तृतीय	,,	७
४.	,,	,, चतुर्थ	,,	१६, १८
५.	,,	,, पचम	,,	१७, १९
६.	,,	,, षष्ठम्	,,	१९

७. काव्य प्रकाश उल्लास		सप्तम्	रसपीयूष निधि तरंग	२०
८. ,,	,,	अष्टम्	,,	२१
९. ,,	,,	नवम्	,,	२१
१०. ,,	,,	दशम्	,,	२२

काव्य प्रकाश मे छद-निरूपण तथा नायिका भेद नही है किन्तु रसपीयूष-निधि मे यह प्रसग भी शामिल कर लिए गए। पहली कुछ तरगे और बीच की आठ तरगें इन प्रसगो के लिए काम मे लाई गई हैं। इस प्रकार यह ग्रन्थ सर्वांग-पूर्ण है और काव्य के सभी प्रसगो का सुन्दर विवेचन एक ही स्थान पर उप-लब्ध है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन कवि के ही शब्दो मे १७९४ वि० है—

सत्रह सौ चौरानवा, सवत् जेठ सुपास।
कृष्ण पक्ष दशमी भृगू भयो ग्रन्थ परकास ॥

यह पुस्तक काफी बडी है, और इसमे प्रयुक्त कविता का स्तर भी काफी ऊँचा है। कही-कही कुछ दोष भी दिखाई देते है जो अधिकतर लिपि से सबधित है। हो सकता है ये अशुद्धिया लिपिकार के कारण ही आ गई हो। यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य मे मत्स्य प्रदेश के इन महाकवि का स्थान कवित्व और आचार्यत्व की दृष्टि से बहुत ऊँचा है।

कलानिधि[1] नाम के एक उत्कृष्ट कवि भी प्रतापसिंहजी के दरबार मे थे। सोमनाथ और कलानिधि ने मिल कर सम्पूर्ण रामायण का हिन्दी अनुवाद किया था, ऐसा कहा जाता है। हमे हमारी खोज मे कुछ काण्ड मिले जिनके आधार पर अनुवाद वाली बात सत्य प्रतीत होती है। रीतिग्रन्थो के सम्बन्ध मे कला-निधि के दो ग्रन्थ प्राप्त हुए—

१ शृगार माधुरी
२. अलकार कलानिधि

---

[1] कवि कलानिधि के सबध मे अनेक बातें सुनने और पढने को मिली।
'मिश्रबन्धु विनोद' मे तीन कलानिधि दिये गए है—

१. कृष्ण कलानिधि न० ९१२ पर स० १८२०
२. कलानिधि न० ९६२ पर स० १८०७
३. लाल कलानिधि न० १०१७ पर सं० १८०७

किन्तु इनकी पुस्तको का अध्ययन करने पर मालूम होता है कि ये तीनो एक ही कलानिधि थे—

१. तीनो का समय १८०७से १८२० का माना गया है।

[पृष्ठ ५७ की टिप्पणी का शेष]

२. नामो के आधार पर– तीनो नामो मे कलानिधि शब्द सम्मिलित है। इस बात का निराकरण इस तथ्य से हो जाता है कि इनका नाम 'श्री कृष्ण भट्ट' था और 'कलानिधि' सभवत इनकी उपाधि थी। ये महाशय कही केवल अपना नाम लिखते थे जैसा न० १ पर, कही उपाधि अथवा उपनाम रखते थे जैसा न० २ पर, कही-कही अपने नाम का अन्तिम अश 'लाल' कलानिधि के साथ जोड कर लाल कलानिधि बन जाते थे जैसा नं० ३ पर। इन तीनो नामो को साधारण रूप से देखने पर भी इनमे कोई विभिन्नता प्रतीत नही होती।

३ ग्रन्थो मे पाई गई सामग्री के आधार पर—

शृगारमाधुरी मे लिखा है—

हुकम पाय नृप को सुकवि, सकल कलानिधि लाल।
यह शृगार रस माधुरी, कीन्हो ग्रन्थ रसाल॥

और उसी ग्रन्थ मे लिखा है—

सवत् सत्रह सौ बरस, उनहत्तर के साल।
सावन सुदि पून्यौ सुदिन, रच्यौ ग्रथ कवि लाल॥

रामगीतम् के अत मे लिखा है—

श्रीकृष्णेन कलानिधिना कविनैव।
कथितमुपासन विदलित दैव॥

युद्ध काण्ड मे—

व्रज चक्रवर्ति कुमार गुन गनगहर सागर जानई।
श्री रामचरण सरोज अलि परताप सिह विराजई।
तेहि हेत रामायण मनोहर कवि कलानिधि ने रच्यौ।
तह युद्ध काण्ड बयासि मे पुनि इद्रजित गर्जन मच्यौ॥

ऊपर दिए गए अवतरणो मे 'कलानिधि' नाम किसी न किसी रूप मे अवश्य आया है। खोज करने पर पता लगता है कि ये महाशय प्रतापसिहजी के दरबार मे बहुत समय तक रहे थे और उन्ही के सग्रह मे ये पुस्तकें भी थी।

४ रचना की एकता– कवि कलानिधि के नाम पर प्राप्त होने वाले ग्रन्थो का अध्ययन करने पर काव्य का एक-सा स्तर मिलता है। इनका रामायण का अनुवाद करना, रामगीतम् की रचना, तत्सम् शब्दो का प्रयोग इस बात के प्रमाण है कि ये संस्कृत के पडित थे और इन अनेक ग्रन्थो का रचयिता एक ही होना चाहिये।

५ वैर से सबधित लोगो का भी यही कहना है कि 'कलानिधि' नाम के कवि जो वैर वाले प्रतापसिहजी के दरबार मे थे, एक उच्च कोटि के कवि तथा पडित थे और उनकी अनेक रचनाओं से मत्स्य प्रदेश विभूषित हुआ। उनका कलानिधि ना[illegible] सर्वत्र प्रचलित पाया गया।

ये दोनो ग्रन्थ भरतपुर आते समय कवि के पास थे, और इनका प्रचार तथा सम्मान यथेष्ट मात्रा मे हुआ। भरतपुर राज्य के आश्रित होने के नाते ही हम कलानिधि के इन ग्रन्थो को मत्स्य के अतर्गत लेते हैं। इसमे सदेह नही कि भरतपुर के महाराज कुमार प्रतापसिंहजो ने कवि के काव्यत्व को विकसित कराने-का सुअवसर प्रदान किया। उस जमाने मे कविगण आश्रयदाता की खोज मे इधर-उधर जाया करते थे। महाकवि देव को तो कोई अच्छा आश्रयदाता ही नही मिल पाया। सभव है कि कलानिधि भी कई स्थानो पर गए होगे किन्तु यह बात निर्विवाद सी मालूम होती है कि इनका अधिक समय वैर मे ही व्यतीत हुआ, और वही रह कर इन्होने अपने जीवन का सब से बडा काम—बाल, युद्ध और उत्तर काण्डो का हिन्दी पद्यानुवाद किया। प्रस्तुत दोनो पुस्तकें--शृंगारमाधुरी और अलकारकलानिधि, भरतपुर मे नही लिखी गईं। पहलो पुस्तक बूदी के राजा बुद्धसिंहजी के लिए लिखी गई थी, और दूसरी महाराज भोगीलाल के लिए।[1]

---

[1] कलानिधि के और भी कई ग्रन्थ खोज मे मिले—

१ उपनिषद्सार–माण्डूक्य, केन आदि उपनिषदो का गद्य अनुवाद।
२ दुर्गा माहात्म्य–तेरह तरगो मे दुर्गासप्तशति का अनुवाद।
३ रामगीतम्–गीतगोविंद प्रणाली पर लिखा ग्रथ।

सस्कृत—

१. प्रशस्ति मुक्तावली।
२. सरस रसास्वाद।
३. वृत्तमुक्तावली।
४ पद्यमुक्तावली–प्रकाशित रा प्रा वि. प्र.।
५ ईश्वरविलास–प्रकाशित रा. प्रा वि प्र।

रामगीतम् का उद्धरण—

भव भय दु खनिवारण सुखकारण ए।
भवति करुणभवभाजि ! रघुवर राम रमे॥
जनकसुता परिरम्भण धृत सम्भ्रम ए।
निज—जन—सुरतरुरख ! रघुवर राम रमे॥

ये पुस्तकें तथा वाल्मीकि रामायण के तीन काण्डो का हिन्दी अनुवाद इस बात का प्रबल प्रमाण है कि कलानिधि सस्कृत के प्रकाण्ड पडित थे।

इनकी पुस्तको से मालूम होता है कि ये महाशय बूदी के महाराजा बुद्धसिंहजी के यहा थे। ये भोगीलाल के पास भी गये और अत मे भरतपुर राज्य मे पधारे जहा वैर के

शृगार-रस-माधुरी के अत मे लिखा है—

> 'इति श्री रावराजा वुद्धसिंघजी आज्ञा प्रवर्तक श्री कृष्णभट्ट विरचिताया शृगार रस माधुर्या पोड़स स्वादः ।'

इसी प्रकार दूसरी पुस्तक के अत मे लिखा है—

> 'इति श्रीमनमहाराज भोगीलाल वचनाज्ञा प्रवर्तक कवि कोविद श्री कृष्ण कवि लालनिधि विरचते अलंकार कलानिधौ रस-ध्वनि-निरूपणं नाम पचमी कला ।'[१]

शृगाररसमाधुरी राजा वुद्धसिंह की आज्ञा पाकर लिखी गई। कवि के साथ यह कृति भी भरतपुर आई और प्रचार पाकर यहा के साहित्य मे सम्मिलित हो गई। इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति मे १६३ पत्र हैं और बहुत सुदर लिपि मे लिखि हुई पूर्ण पुस्तक है। इसमे १६ स्वाद हैं—शृंगार की माधुरी १६ प्रकार के स्वादो मे चखाई गई है।

१	शृगार	छंद संख्या २३
२	विभाव लक्षण	२२
३	नायका भेद वर्णन	७६
४	दरसन लछन शृगार रस माधुर्य	३०
५	नायका चेष्टा वर्णन	४६
६	भाव लक्षण	६६
७	अष्ट नाइका वर्णन	५०
८	विप्रलभ शृगार	६३
९	मान लक्षण	२३
१०	मान मोचन	२१

[पृष्ठ ५९ का शेष]

शासक महाराजकुमार प्रतापसिंहजी ने इनको बहुत सम्मान के साथ रखा। इस बात का कवि ने भी स्थान-स्थान पर सकेत किया है, जैसे युद्धकाण्ड में—

> ब्रज चक्रवर्ति कुमार गुन गन गहर सागर जानई,
> श्री रामचन्द्र सरोज अलि परतापसिंह विराजई।

इसी नाते कलानिधि को मत्स्य प्रदेश के कवियो मे गिना गया है और इनकी पुस्तको को भी इसी दृष्टि से यहा के साहित्य मे स्थान दिया गया है।

[१] श्री कृष्ण कवि "लालनिधि" ये सारी बातें "कलानिधि" के साथ जुड कर इस कवि के व्यक्तित्व की महत्ता प्रमाणित कर रही हैं।

११	सखीजन	३०
१२	करूना	२१
१३	सखीजन कर्म कथा	१८
१४	हास्य रस	४४
१५	कवित्त वृत्ति	२०
१६	अनरस लक्षण	१८

यह पुस्तक श्रृगार रस से संवधित प्राय सभी विषयो से पूर्ण है।[1] पुस्तक के आरम्भ मे बूदी 'विंदवती' का वर्णन किया है—

सव भूपति वंस सिरै अवतस सदासिव अस नरिंदवती ।
महिमानत हिम्मति हिम्मतिकी हर किम्मति की हद हिंदवती ।
सुख सौं सरमी सरसी सरसी सरसीरुह सौरभ वृदवती ।
गुण सौ अगरी सगरी नगरी अधिराज बिराजत विंदवती ॥

इस पुस्तक के अत की पंक्तिया इस प्रकार है—

वाल वदि पतिसाहि कौं, हुकम पाइ बहु भाइ ।
कर्यौ ग्रथ रस माधुरी, सुकवि कलानिधि राइ ॥
सवत सत्रह सै वरष, उनहत्तरि के साल ।
सावन सुदि पून्यौं सुदिन, रच्यौ ग्रथ कवि लाल ॥
छत्र महल बूदी तषत, कोरि सूर ससि नूर ।
वृद्ध वली पतिसाहि कै, कीनौ ग्रन्थ हजूर ॥

पुस्तक के कुछ प्रसग देखिए—

नववधू—

अैसी अवनी के माहि देषी सुनी कहूं नाहि
काहू पूरे पुन्यन तै पाई भले सौंन मै ।
सौंने की सी छरी लाल हीरौं कैसी लरी
अग अग रग भरी अति आनद के हौंन मै ॥
गौंने आई भोरी गुन गोरी विज्जु डोरी
किसोरी बरजोरी वतराति रही भौंन मे ।
एहो नद नद मुष मद मुसिकानि भए
कोरी चद चादनी सी फैली भौंन भौंन मैं ॥

---

[1] यह हस्तलिखित प्रति बहुत सुन्दर है। आरम्भ से अत तक एक ही प्रकार की स्पष्ट और सुन्दर लिपि है। प्रत्येक पृष्ठ पर चारो ओर काले, लाल और पीले रग का तिरगा हाशिया है।

सिंगार रस लक्षण—

रति थाई सिंगार रस, भेद वपानहु दोइ ।
इन सभोग वपानियें, विप्रलभ इक होइ ॥

अन्य दो—

अपने ही मन मे रहे, लपै सपी जन ताहि ।
यो प्रछन्न प्रकास करि, भेद दौहि निर वाहि ॥

मुग्धा को सयन—

कोरि मतन कोरिक जतन लहि नवला पिय सेज ।
चचल चित चौंकत रहे, गहै न नेक मजेज ॥

अथवा—

करि मौंह सखी जह स्वाई गई
तिहि सेजहि आयौ पिया रस भीनो ।
चौकि परी चपला सी तिहैं
चऊ ओर लखै चित चैन न लीनों ॥
अति चाचरि कै चुरियान उहूं
कर यौं गह्यौ नीवी कौं लाल नवीनो ।
लै अति झूठ मनो रवि कौं
अरिवदनि आइ अलिंगन कीनौ ॥

मुग्धासुरत—

काची काची कलिन सौं, अलि न करो लग लाग ।
फूली फूली मालतिन, जौं लौं रहौ पराग ॥

मुग्धा को मान—

करै सपी की सीप सौ, मुग्धा मानहि हानि ।
अति अजान मानौं नही, मानति पुनि भयमान ॥

सुरतात वर्णन—

दीनौ जघ थंभनि कौं सरस दुकूल कुच
कुम्भनि कौं दीनौं हार आनद विधान है
कानन कौ कुडल अधर कौ तमोर दीनौ,
करन कौं ककन जुगल भासमान है ॥
सुरत समर अत रीझि रीझि चदमुखी
जग जीति जोधनि को कीनौं सनमान है ।
पाछें परि रह्यौ कुटिलाई भर्‌यौ कैशपास
ताकौं पुनि उचित यौं ही ववन विधान है ॥

एक उत्प्रेक्षा भी · प्रच्छन्न सभोग शृगार सबधित—

चचल चितौही चीर ग्रचल मैं राजे कुच
ऊपर ग्रपार हार छवि छहरात है ।
मानौ चारु भारती के धार है ग्रन्हात सभु
तिनही के सीस सुरसरी सरसाति है ॥

पिया की विहित भाव—

कपट की बानी जिय जानी पहिचानी जानी
जानति हमारौ मन मेलि भरमायौ है ।
× × ×
पीरी परि ग्राई झाई कपोलनि कहै देति
कहि ग्रज कैसे काम कीरति दुराइ है।

इस पुस्तक मे—

१. प्रचलित छद-कवित्त, सवैया, दोहा ग्रादि है ।

२ ग्रथ रचना मे उस समय की प्रचलित रीतिकालीन परिपाटी का ही ग्रनुगमन किया गया है ।

३. शृ गार रस के ग्रनेक नग्न ग्रौर उत्तेजक वर्णन है जो शृगार काल की उस कमी को लिए हुए है जिनके कारण काव्य का ह्रास हुग्रा ।

४ ग्रनेक स्थानो मे उस समय के प्रसिद्ध कवियो द्वारा ग्रहीत प्रणाली का प्रयोग किया गया ।

ग्रलकार कलानिधि— कवि की दूसरी पुस्तक है । दुर्भाग्य से यह पुस्तक ग्रपूर्ण प्राप्त हुई है ।[1] पुस्तक इस प्रकार ग्रारभ होती है—

'ग्रब रसन के भेद कहते हैं'—किन्तु ग्राश्चर्य इस बात का है कि जहा पाचवी कला के साथ पुस्तक मिली वहा पत्र सख्या १ मिली है जिसका ग्रभिप्राय यह है कि इसी नाम की किसी बृहद्तर पुस्तक से कुछ ग्रधिक ग्रावश्यक ग्रौर उपयोगी प्रकरणो की प्रतिलिपि की गई है । किन्तु पाचो कलाग्रो का एक साथ मिलना एक ग्रौर भी कठिनाई है ।

---

[1] जिस जिल्द मे ग्रलकार कलानिधि की हस्तलिखित पुस्तक मिली उसके पहले नाममजरी नाम की पुस्तक का कुछ ग्रंश है जो ग्रमरकोष के सदृश पर्यायवाची शब्दों का सग्रह है । उदाहरण ग्रन्यत्र उपलब्ध हैं । ग्रलकार कलानिधि की प्रथम चार 'कला' नही मिली । पुस्तक पाचवी कला से शुरू होती है ग्रौर नवी कला तक चलती है । दसवी कला प्रारम्भ होने के साथ ही पुस्तक का ग्रगला भाग छूट गया है ग्रौर इस कला के केवल नाम मात्र का सकेत मिलता है ।

जो कलाएँ मिली वे इस प्रकार है—

पचमी कला — रस ध्वनि निरूपणं ।

षष्टम कला — ध्वनि भेद निरूपण ।

सप्तम कला — गुणीभूत व्यग्य निरूपणं ।

अष्टम कला — शब्दार्थ चित्र काव्योद्देशोनाम ।

नवमी कला — गुण निरूपण ।

नवम कला को प्राचीन मत के अनुसार गुण निरूपण कहा है । इन प्रकरणो के अतर्गत प्राप्त सामग्री को पढ कर यह स्पष्ट विदित होता है—

१ यह अश, काव्यगुणो से पूर्ण, कविता की आत्मा से सबंधित है ।

२ रस और ध्वनि का प्रसंग साथ-साथ लिया गया है ।

३. सस्कृत के रीति ग्रन्थो की परपरा के अनुसार ध्वनि, गुणीभूत व्यग्य तथा चित्र काव्य आदि प्रसग लिए गए हैं । इसी प्रकार गुण का निरूपण भी ।

इस सबंध मे एक बहुत ही गौरवपूर्ण बात यह है कि प्रतापसिंह के इन दोनो कविराजो ने काव्य की आत्मा का विश्लेषण और विवेचन करने की ओर बहुत ध्यान दिया । नायक-नायिका भेद तथा शृ गारी कविता से ही अपने को सीमित नही रखा । यही कारण है कि इन कवियो का नाम बिना किसी सकोच के हम आचार्य कोटि मे रख सकते है । इस पुस्तक मे कवि ने अपने उपनाम 'लाल' का भी प्रयोग किया है—

> कवि लाल कहत गोविंद सुनहु, भोगिय लाल भुवाल भुव ।
> तुव सप्त दीप तत आजु मुनि, एकिति कित्त प्रताप हुव ।।

नवम कला के अत मे कवि अपना नाम 'श्री कृष्ण भट्टदेव' कहता है और पंचम कला के अत मे 'श्री कृष्ण कवि लाल निधि' कहता है । इसका अभिप्राय यह है कि कवि अपने नाम तथा उपनामो के प्रयोग से स्वयं ही बहुत कुछ भ्रम उत्पन्न करता है । इन बहुत से नाम और उपनामो को ध्यान से देखने के पश्चात ही इन सब नामो की एकता के सबध मे ध्यान गया ।

गुणीभूत व्यग्य का निरूपण देखिए—

> प्रगट अपर को अंग अरु, वाच्यहि पोपक होइ ।
> कष्टगम्य सदिग्ध अरु, व्यग्य वाक्य सम कोइ ।।
> काकु गम्य ''वाच्य अरु, आठ होंहि ए भेद ।
> उदाहरण अब वरनिये, सुनत जात मन खेद ।।

कविता की दृष्टि से 'लज्जा लक्षन' भी—

> गौने की जामिनि सौने की बेलि सी, सौंहनी भांति सुहाग सी सानी।
> सौंहनी सौं करु षीनी विसास दे, 'भोगियलाल' पिया ढिग आनी॥
> वाह गहै बडी लाज मैं अग, सकौरि के भौंह मरोरति तानी।
> नैंन चुराइ दुराइ कें आनन, इद्रवधू ज्यौ बधू सकुचानी॥

शृगारमाधुरी तथा अलंकारकलानिधि दोनो रीतिग्रथ है। इन पुस्तको का जो भाग मिल सका उससे इन पुस्तको मे रीति-विषय-प्रतिपादन की उत्कृष्ट प्रणाली का आभास मिलता है। इसमे सदेह नही कि दूसरी पुस्तक के अप्राप्त प्रकरणो मे अलकार का भी सुन्दर वर्णन होगा, क्योकि बिना इस प्रसग के इस पुस्तक के नाम की सार्थकता प्रतिपादित नही होती। जो अश प्राप्त हुआ है उसके आधार पर ही हम कह सकते है कि कवि ने काव्य के उपयोगी सभी अंगो का विश्लेपण किया है।

अलवर के राजाओ मे 'वख्तावरसिंह'[1] न केवल उदार आश्रयदाता थे वरन् स्वय कवि थे और कवियो का वहुत सम्मान करते थे। इनके दरबार के एक कवि भोगीलाल ने 'बषतविलास' नाम का एक लक्षण-ग्रथ सवत् १८५६ मे लिख कर समाप्त किया। इस पुस्तक मे नौ विलास है—

१. प्रथम विलास	राजवस कविवस वर्णन[2] मगलारभ आदि	छद स०	४०
२. द्वितीय विलास	स्थायी भाव	,,	३५
३. तृतीय विलास	विभाव	,,	३४
४. चतुर्थ विलास	अनुभाव	,,	२३
५ पचम विलास	सात्विक	,,	२२
६. षष्ठ विलास	सचारी भाव	,,	६८
७. सप्तम विलास	नवरस सुरूप चतुर्वत्ति	,,	१४२
८. अष्टम विलास	नायक वर्णन	,,	३४
९ नवम विलास	नायिका वर्णन	,,	१०५

---

[1] महाराव सवाई बख्तावरसिंहजी सवत् १८४७ से १८७१ वि० तक अलवर के राजा रहे। ये वडे बुद्धिमान और राजनीतिज्ञ थे। दिल्ली के बादशाह शाहआलम तथा जैपुर के नरेश इन्हें वहुत मानते थे। ये वडे गुण-ग्राहक थे और दूर-दूर के विद्वान इनके दरबार मे आते थे।

[2] मगलाचरण से अनेक बातो का पता लगता है, जैसे –

१ आश्रयदाता का नाम—

सुर नर बानी पंथ पढि बरनो ग्रन्थ विसाल। पढि प्रसन्न ह्वैहै नृपति बषतावर भूपाल॥

उपर्युक्त विश्लेषण से प्रगट होता है कि—

१ यह पुस्तक रस संबंधी है और रसराज शृंगार की दृष्टि से नायक-नायिका भेद भी जोड दिया गया है।

२ पुस्तक की रूपरेखा बहुत वैज्ञानिक और संयत है—

अ. पहले मंगलाचरण, फिर

आ. रस के चारो अंगों—स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव, संचारीभाव का निरूपण।

इ पुनः नवो रस का स्वरूप, और फिर

ई. नायक-नायिका वर्णन।

३ प्रत्येक विलास मे पाई गई छंदसंख्या परम उपयुक्त है। जिस प्रकरण को जितना स्थान मिलना चाहिये उतना ही दिया गया है। सात्विक और अनुभाव का इतना विस्तार नही होता अतः इनको २२ और २३ छंदो मे ही समझा दिया गया। नायिका-वर्णन का विस्तार अधिक होता है इसलिये इस प्रसंग को बताने के लिये १५० छंदो का प्रयोग किया गया है। इससे कम 'नवरस सुरूप और चतुर्वृ ति' नामक विलास को १४२ छंद दिए गए है।

---

२ ग्रन्थ निर्माण काल—

संवत रस ६ सर ५ नाग ८ समि १, कार्तिक शुदि भृगु वार।
सुतिथि पंचमी ५ द्योस सुभ पूरन ग्रन्थ विचार॥

संवत् १८५६ मे इस ग्रंथ का निर्माण हुआ। शब्दो के साथ-साथ ऊपर लिखे गए अंक भी पुस्तक मे इसी प्रकार दिए हुए हैं।

३ राजवंश वर्णन—

राजा के वंश का वर्णन 'सूर्य' से आरम्भ किया है—'प्रथम भये सूरज तनय मनुजाधिप मनु नाम' ..और इसी प्रकार 'नरूका वीर' तक वर्णन चलता है। अलवर के राजाओ का वर्णन करते हुए बख्तावरसिंहजी का वर्णन इस प्रकार किया है—

भये प्रगट तिनतें नृपति, बषतावर रमनीय।
जैसे छीर समुद्र तें, इंदुकला कमनीय॥

४ राजगढ वर्णन—

बगर बगर संपति मगर, लसत मनोहर हर्म्य।
जगर मगर ज्योतिनु अगर, नगर राजगढ रम्य॥

संभवत इस ग्रन्थ का निर्माण राजगढ मे ही हुआ।

४. प्रत्येक दृष्टि से यह पुस्तक बहुत संयत और स्पष्ट है। देव के वशज होने के नाते इनके परिवार की काव्य-परम्परा उत्कृष्ट कोटि की थी और इसी प्रकार का काव्य 'वषत विलास' मे मिलता है। रस का प्रकरण भी वहुत सुन्दर बन पडा है। नायिका के विभिन्न रूप भी देखने योग्य हैं।

उदाहृण के लिए प्रौढा नायका देखिए—

सोहै सुरग उरोज उतगनि, अगनि अगनि भूपन सौं लसि।
आए लला पगे कामकलानि, हुई छतिया के छलानि कहू कसि॥
भोग कह्यो न परै जो लह्यो तिय, जोवन भार सौं आलस सौं गसि।
रोकत हाथ वनौं नही नाथ को, फेरि दृगंचल हेरि रही हसि॥

और भी-

वाह गहै करै नाह सौं नाहि चलै नही चाह भरी चलि जावै।
कंचुकी तें पकरे कुचके उचकी परै पै उर त्यो उचकावै॥
हाहा करै मुप चूमत वाल झुकै झिझकै चित मे ललचावै।
छैल तें ऐन छिनौ छुटि जावै न वैननि ही नटि नैन नचावै॥

---

५ कवि का नाम—

कवि पडित द्विज वरनि को, नृप दीने वहु दान।
तिन मे भोगीलाल को, सरस कियौ सनमान॥
निरपि भूप को धर्मरत, मकल रसनि मे ज्ञान।
वखत विलास रच्यौ सरस, भोगीलाल सुजान।

६ कवि के पूर्वज—

काम्यप गोत्र द्विवेदि कुल, कान्यकुब्ज कमनीय।
देवदत्त कवि जगत मे, भये देव रमणीय॥

ये देव कौनसे है ? कवि ने इनके सवध मे लिखा है—

जिनसौ वोली भगवती, ह्वै प्रसन्न प्रत्यक्ष।
ह्वै हो कविवर पूज्य तुम, अवनि अधीस समक्ष॥

इससे विदित होता है कि ये देव कविशिरोमणि महाकवि 'देव' ही थे। किन्तु एक वात विचारणीय है। देव को विद्वान लोग प्राय. सनाढ्य ब्राह्मण मानते हैं, शुक्ल और दास दोनो ने इसी का समर्थन किया है। डॉक्टर नगेन्द्र देव को कान्यकुब्ज मानते हैं और हम इन्हीके पक्ष का समर्थन करते है क्योकि—

अ. भोगीलाल ने इन 'देव' कवि को अत्यन्त उच्च कोटि का कवि लिखा है जो महाकवि देव के सवंध में लिखा जाना उचित ही है।

आ. देव का जन्म समय १७३० वि० के लगभग माना जाता है। भोगीलाल ने यह पुस्तक सवत् १८५६ मे लिखी। इस तरह देव और भोगीलाल के वीच मे लगभग १००-१२५ साल का समय आता है। इस समय का स्पष्टीकरण कवि भोगीलाल ने

वीभत्स मे भयानक का दर्शन कीजिए—

अस्त्र-बली वपतेस वहादुर, सस्त्रन सौं रन सत्रु सहारे।
लोथिन प्रेत लये रत रेत मे, लोहू के षेत मे जात पनारे॥
आई विसाल वरगना वाल ये, चामचमात विताल निहारे।
देषि भजी विकरारे मरे, चहूं डारैं गयद भयंकर भारे।

रस के विभिन्न अगो का वर्णन करते हुए, कवि भोगीलाल ने नायिका भेद वर्णन विस्तृत रूप मे किया है। कविता की दृष्टि से भी इस कवि का स्तर वहुत ऊंचा है। शृगारिक रचनाओ मे ये कुछ अधिक शृंगारिक हो गए हैं। व्याख्या की उत्तमता के विचार से तो नही किन्तु कवि ने जिस वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण किया है उसके विचार से हम इन्हें आचार्यत्व की श्रेणी मे ले सकते हैं।

सिखनख—की ओर भी कवियो का ध्यान गया। हिन्दी मे 'सिखनख' या 'नखसिख' वहुत मिलते हैं। हमें भी अपनी खोज में इस प्रकार के दो विशिष्ट हस्तलिखित ग्रथ प्राप्त हुए—१. टीका के रूप मे तथा, २. स्वतत्र ग्रथ के रूप में। प्रसिद्ध कवि वलभद्र के सिखनख पर मनीराम ने सुन्दर टीका लिखी, और रसानंद ने एक सुन्दर स्वतत्र ग्रथ लिखा। वलभद्र का सिखनख हिन्दी मे वहुत प्रसिद्ध माना जाता है और साथ ही कठिन भी। इस कठिनाई का ध्यान रखते हुए मनीराम ने वहुत सचेत होकर इस ग्रथ-रत्न की 'सर्वप्रथम टीका' हिन्दी साहित्य को प्रदान की। अपनी टीका के संवध मे उनका विचार था—

'सिखनख जो वलभद्र को, कठिन पदन की रीति।
सुगम होहि इहि साप ते, अथन की सुप्रतीति॥'

अतएव मनीराम द्विज ने इस कठिन ग्रंथ को सुगम करने के लिए इसकी टीका लिखी।[1] इस ग्रथ को वहुत प्रौढ और परिमार्जित माना जाता है अतः

वीच की पीढियो द्वारा इस प्रकार किया है—

१ देव २ नवरग ३ पुरुषोत्तम ४ सोभाराम ५ भोगीलाल

देव और भोगीलाल के वीच मे तीन पीढिया और है, अतएव १००–१२५ साल का समय ठीक ही है।

३ देव का जन्म जिस प्रान्त में हुआ माना जाता है उसमे कान्यकुब्ज ही अधिक रहते हैं, सनाढय नही। अत. देव काश्यप गोत्रीय द्विवेदी कान्यकुब्ज थे।

[1] वलभद्र मिश्र का जन्मकाल सवत् १६०० वि० माना जाता है। इन्हें कुछ लोग केशवदास का वडा भाई मानते हैं, और साथ ही उनका समकालीन। इसमे सदेह नही कि वलभद्र मिश्र के वनाये सिखनख का वहुत प्रचार था किन्तु साथ ही यह एक कठिन ग्रथ भी था। साहित्य के इतिहास मे इनके इस ग्रथ के कई टीकाकारों के नाम मिलते हैं। सवसे

इस पर की गई टीका इस बात का प्रमाण है कि मत्स्य मे काव्यग्रथो को समझने और समझाने का प्रयास हुआ था। मनीराम द्विज ने जो वर्णन दिया है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि राजधानी मे ही नही वरन् राजपरिवार से सबधित अन्य ठिकानो मे भी काव्यचर्चा चलती रहती थी और कवियो का सम्मान होता था। थानागाजी, तिजारा आदि ठिकानो मे सम्मान होता था, और वहा के ठिकानेदार भी काव्यप्रेमी थे। जावली के राव भी इसी प्रकार विद्याव्यसनी रहे।

यह टीका बहुत करीने से लिखी गई है। टीकाकार ने अपनी टीका का क्रम इस प्रकार बताया है—

प्रथम मूलपद अर्थ पुनि, तृतीय अर्थ दृढ कीन।
सवदाडवर बाचियौ, काम करे परवीन ॥
अर्थ सुदृढ विस्तार है, क्यो पचिये ता ठौर।
नर्ने करनौं होइ तव, लपियौ कवि सिरमौर ॥

एक उदाहरण लीजिए—

केस वर्नन, प्रथम पक्ति

१ मूल– 'मरकत के सूत किधौं पन्नग के पूत किधौं,
भवर अभूत तम-राज के से तारे हैं।'

२ अर्थ– 'मरकत मनि स्याम है, पन्नग सर्प, अभूत जैसे न भये हौहि, तमराज अधिक अध्यारो।'

३. अर्थ दृढ– सोई सब्दाडवर जानियौ अनिल व्योम तृण वाल मरकतमणि-कवि प्रिया।
'कृष्णे नीलासित स्याम.', 'उरगः पन्नगो भोगी' 'ध्वाते गाढेऽन्धेतमस' अमरे०

पहला टीकाकार गोपाल कवि माना जाता रहा है। इन कवि की टीका का समय मिश्र-बन्धु, शुक्ल, चतुरसेन आदि इतिहासकारो ने १८९१ लिखा है किन्तु हमारी खोज मे पाई गई मनीराम वाली टीका गोपाल कवि की टीका से भी ५० वर्ष पुरानी है। कवि ने इस टीका का समय इस प्रकार दिया है—

अष्टादस व्यालीस हैं, सवत् मगसिर मास।
कृष्ण पक्ष पाचे सुतिथि, सौमवार परगास ॥

यह प्रति जो हमे मिली उसका लेखन भी गोपाल कवि की टीका से पहले ही हो चुका था। इसके लिपिकार थे 'भेरू सेपावत' और लिपिबद्ध करने का समय है सवत् १८७७ वि०—

श्रावण सुदि एकादसी, भानुवार मन[बु]मास।
मुनि मुनि वसु ससि सुबुधि सुनि, यह संवत परगास ॥
७ ७ ८ १

द्वितीय पंक्ति

१. मूल– 'मपतूल गुनग्राम सोभित रस स्याम,
　　　　काम मृग कानन कुहू के कुमार हैं ।'

२. अर्थ– 'मप तूल स्याम पाट, गुन सो डोरा, ग्राम सो समूह, सरस सो अधिक, काम
　　　　ही भयो मृग ताको कानन सो वन, कुहू सो मावस्या को भेद ।'

३ अर्थ दृढ– यहा भी कोप दिखाया गया है ।

इसी प्रकार तीसरी और चौथी पक्तियो की टीका की गई है ।

तृतीय

कोप की किरनि कि जलद नलि के तंत
उपमा अनत चारु चमर सिंगार हैं ।

चतुर्थ

कारे सटकारे भीजे सौधे सरम वास ,
ऐसे वलिभद्र नववाला तेरे वार है ।।

इससे अधिक सुन्दर टीका का उदाहरण और क्या मिल सकता है ? **मनीराम की यह टीका** हिन्दी साहित्य मे किया गया एक उत्तम प्रयास है और इस टीका का मूल्य तव और भी बढ जाता है जब हम देखते है कि यह टीका सवसे पुरानी है । सम्पूर्ण टीका मे एक ही पद्धति का अनुगमन किया गया है, और 'अर्थ' तथा 'अर्थ दृढ' के द्वारा कवि की विद्वत्ता तथा काव्य-मर्मज्ञता प्रमाणित होती है ।

एक अन्य पुस्तक '**विनयप्रकास**' हमारी खोज मे उपलब्ध हुई । यह पुस्तक नायक–नायिका वर्णन से सवधित है ।[1] इस पुस्तक के लेखक है कविश्रेष्ठ हरिनाथ[2] जो महाराव राजा श्री सवाई विनयसिंहजी[3] के आश्रित थे । इनकी

सिखनख टीका सहित यह, है सिंगार को मूल ।
भैंरू सेषावत लिष्यो, चतुर रहै मन फूल ।।

इस पुस्तक का नाम प्राय 'नखसिख' लिखा गया है परन्तु इसका नाम 'सिखनख' है, और पुस्तक मे वर्णन भी 'सिख' से आरम्भ कर 'नख' तक किया गया है

[1] कवि ने स्वय लिखा है—

रच्यो ग्रथ इह प्रीति करि, 'विनै नरेस प्रकास' ।
वरनौ नायक नायका, कवि सुष सदन विलास ।।

[2] कवि का नाम (अनुप्रासयुक्त छद मे')

गिरिधर गोविंदनाथ गदाधर गोकुल ग्यानी ।
गोकुलेस गभीर गरुर-गामी गुन ध्यानी ।।
गोपीवल्लभ ग्वाल वाल गन मन मदसूदन ।
माधौ मधु-रिपु मकर मुरलिधर कस-निषूदन ।।

कविता के देखने पर विदित होता है कि काव्य-गति, शब्द-चयन, छंद-निर्माण, भावुकता, अलकार-योजना आदि की दृष्टि से उनकी रचना उत्तम कोटि की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रथ बहुत बडा था और इसमे अनेक 'प्रकास' थे। इस पहले ही प्रकास मे ३८७ छंद है और 'हावभाव प्रसग' के अतर्गत कविता की छटा दर्शनीय है। इस प्रकास के अत मे कवि ने लिखा है—

'इति श्री महाराज श्री श्री श्री'' • विनयसिंहजी प्रकासे कवि सुष सदन विलासे कवि हरनाथ कृते नाइकाद हावभाव वर्नन नाम प्रथम प्रकास'।

इसके पश्चात् 'अथ रसादिक भाव लक्षन । दोहा ॥' और बस यही यह सुन्दर हस्तलिखित प्रति समाप्त हो जाती है। इस प्रकार के सुन्दर और विस्तृत शास्त्रीय ग्रन्थो को अधूरी अवस्था मे पाकर बडा दु ख होता है किन्तु सतोष इसी बात पर किया जाता है कि जो कुछ मिलता है वह तो किसी प्रकार सुरक्षित रहा। इस प्रथम प्रकाश के ही आधार पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है—

नायिका वर्णन—

गुनभरी गरव गुमानभरी मानभरी,
सकल सयान भरी रूप रस रेली है।
भाग-भरी सरस सुहाग अनुराग-भरी,
प्रेम-भरी परम प्रवीन अलवेली है॥
जाहि देषि सुर नर मोहत मधुपवृ द,
कवि 'हरिनाथ' साथ दीपति सहेली है।
मैन मन मैली नैन उरभेली जैसी,
कचन की वेली ऐसी नाइका नवेली है॥

करुनाकर करुना अयन, करहु कृपा वारिज वदन।
हरिनाथ ध्यान दृढ आनि तुअ, केसी कदन नद नदन॥

[3] महाराव राजा श्री विनयसिंहजी का राज्यकाल सवत् १८७१ से १९१४ वि० तक रहा। अलवर की राजकीय पुस्तकशाला की स्थापना इन्ही के द्वारा कराई गई, जिसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियो का उपयोग इस निवध मे किया गया है। पुस्तकशाला नाम की सस्था तो समाप्त हो गई किन्तु उसमे सगृहीत हस्तलिखित प्रतिया कुछ अलवर के म्यूजियम मे हैं और कुछ वर्तमान अलवर नरेश के निजी पुस्तकालय मे। इनके द्वारा ही 'विनय विलास' नाम का महल वनवाया गया जिसमे आज कल 'राजऋषि कॉलेज' लगता है। ये वडे विद्याव्यसनी तथा सग्रही थे, और अलवर मे इनकी कला-प्रियता के वहुत से नमूने ।

नायक के २४० भेद बताये हैं—

पति उपपति वैसुक कहो, नायक तीनि विचारि।
अनुकूल दछिन धृष्ट सठ, चारि चारि अनुहारि ॥ ३×४ = १२

ससा जैन वृप तुरग गुन, सब में व्यापत आन। १२×५ = ६०
साठ होत या रीति सों, भाषत सुकवि पछान ॥

अभिमानी त्यागी छली, भव्व भान सब होत। ६०×४ = २४०
द्वै सै चालिस जोरि कै, बरनत सुकवि उदोत ॥

नायिका के ११५२० भेद बताये हैं—

सुकियादिक सब नाइका, हाव भाव सविलास।
कवि हरिनाथ विचारि कै, बरनी विनय प्रकास ॥
भाव विभावानुभाव अरु, सचारी सुपनाज।
थाई सात्विक आदि है, जानि लेहु महाराज ॥ ३८४
चौरासी अरु तीन सै, तिगुनी कर रस देस। ३८४×३ = ११५२
ग्यारह सै बावन भई, सुनिये विनय नरेस ॥

उत्तिम मध्यम् अधम मिति, दिव्यादिक पहिचान।
करो दसगुनी तासुकी, कविकुल कहत बपान ॥ ११५२×१० = ११५२०

ग्यारहै सहस रु पाचनौ, बीस भई यौं रीत।
सुनिए विनय नरेस यह, भाषत सुकवि प्रतीत ॥

प्रौढा विप्रलब्धा का वर्णन देखिए—

फूले फूले फूलन के गहने गुहाई घने,
फूलन की माल सुपजाल हाल पहिरी।
रतन - जटित टीको नीको मन भामती को,
जीको हीको लीको नीको लागै छवि गहिरी ॥
'कवि हरनाथ' आई रति के महल बीच
देपि के सकेत सुनो दूनो दुप दहि री।
भौंचकी चकीसी जकी लकी-सी छकीसी अति
अकपकी भई बावरी सी बहिरी ॥

रूपगर्विता का भाषण सुनिए—

मेरे नैन हरि मीन मृग बनवास कीन्हो,
केहरी को कोल कुठि गयो लपि कटि तट।
देपि गत गवन मराल गजराज दोऊ,
अति अकुलानि कुलिलानि कंज पद दट ॥

कोइल कलापी कूक कोकिल कुमति भई
वानी सुखदानी 'हरिनाथ' सो मधुर रट।
आजि हौ गई ही अली जमुना भरन घट
गुज्झि आए मौर वसीवट के निकट तट ॥

प्रेमगर्विता—

भूषन न धारौ प्रेम नेमउ न पारौ तऊ
स्यामरे सलौने जू के नैनन वसी रहौ।

सामान्या कलहतरिता—

छायो नदलाल कर लीन्हे गुज माल भटू
वदन विसाल सुप जाल हाल पेषौ मैं।
जोरि जोरि दीठि रस रासि प्रेम पगि पगि
लगि लगि बाल चतुराई नेम लेषौ मैं ॥

कवि हरिनाथ मनुहारि कै मनाइ हारी
मानो ना मनाए तैं हठीली हठ पेषौ मैं।
परे मन सोचन सकोचन करते अव,
गए जव लाल तव कहै चहै देषौ मै ॥

सगी-दसा का कवित्त—

वैठी रगमहल लुनाई भरी लाडली सौ
सीसा कै महल सेज सुमन गुलाव की।
पानदान पीकदान अतर गुलावदान
लीन्हे मन भूपन जराउ जेव छाव की ॥
कवि हरिनाथ साथ रभा सी रुचिर सषी
चदमुषी चतुर चलाई चित चाव की।
आव की न दाव की पादकी परपि देषौ
भाव मै न आवै छवि आव महताव की ॥

ये कवि महोदय छविनाथजी द्वारा दीक्षित किये गए थे—

दीक्षित कवि छविनाथ के, कवि हरनाथ विचारि।
ग्रथ रचौ कवि सुप सदन, भाषा रस निरधारि ॥

यह एक बडा सुखद प्रसग है कि इनके एक 'प्रकास' के पाने पर भी पुस्तक का निर्माण-काल, १८८८ वि०,[1] मिल गया है। साथ ही विनयसिंहजी का राज्य-

---

[1] सवत् वसु वसु वसु ससी चैत्र पक्ष बुधवार।
वरनो विनय प्रकास मे समुझो मती उदार ॥
यह किंचित आश्चर्य का विषय है कि एक प्रकास के अत मे ही सवत् दे दिया गया है। हस्त-लिखित प्रतिमे १८८९ सवत् दिया गया है। सभवत यह इस प्रति को लिखने का समय है।

काल स० १८७१-१९१४ था अतएव पुस्तक के निर्माण-काल मे किसी भी प्रकार का सदेह नही रह जाता। इसमे सदेह नही कि इन महानुभाव की भाषा बहुत मजी हुई है और कविता मे बडा सरस प्रवाह है। अनेक प्रकरणो पर जो परिभाषा तथा उदाहरण दिये है वे परम्परागत हैं, कोई विशेष प्रतिभासपन्न प्रणाली दृष्टि-गत नही होती।

अन्यत्र वर्णन के अनुसार यह स्पष्ट है कि महाराजा बलवतसिंह[1] के समय मे काव्य-सबधी बहुत कार्य हुआ। रीति-काव्य की ओर भी इनके समय के कवियो ने ध्यान दिया और कुछ मौलिक रचनाएँ हमारी खोज मे उपलब्ध हुई है—

१ अलंकार मंजरी	—	कवि राम कृत	स. १८९७
२ छद सार	—	कवि राम कृत	
३. शृगार तिलक	—	'वृजचद'	स. १८९५
४ व्रजेन्द्र विनोद	—	मोतीराम	स. १८८५
५. रस कल्लोल	—	जुगल कवि	
६. सिखनख	—	रसानन्द	स १८९३
७. व्रजेन्द्र विलास	—	रसानन्द	सं. १८९५

१ **अलंकार मंजरी**— इसमे २८ पत्र हैं और श्री सवाई बलवंतसिंहजी के लिए लिखी गई है।[2] अलंकार मजरी के अतर्गत अलकारों की संख्या काफी है। एक-दो उदाहरण देखिए—

१ अप्रस्तुति प्रससा (अप्रस्तुत प्रशंसा)—

जहं वरणें कवि और कू, बात और पै डारि।
तहां कहत हैं सुकवि नर, अप्रस्तुति लकार॥
यथा— ना बरमे घरमै वृथा रे, घंन क्यो चहु ओर।
तरसै जग हरस्यो फिरै, तू सठ निपट कठोर॥

अन्यच्च कवित्त—

भूल्यो फिरै चतुर नरेसन को भ्रम पाय ,
आज नृप ताइ के दिलासी बासी प्रौन हैं।

---

[1] बलवंतसिहजी का राज्य-काल १८८२-१९०९ वि० माना जाता है। इनके पिता बलदेवसिंहजी तो स्वयं कवि थे और अनेक कवि उनके दरबार में आश्रय पाते थे। बलदेवसिंहजी का राज्य-काल केवल तीन वर्ष रहा था।

[2] 'इति श्री महाराजाधिराज श्री सवाई बलवतसिंह हेतवे राम कवि विरचिते अलंकार मजरी समाप्त मिती माघ वदी १२ सवत् १८९७ वि०'।

दान कू विचारि कै निहारि या समे को रूप ,
भूप न रहे हैं लषि लीजै राज सो न है ।।
भनत रमेस बिन त्यागे या दरिद्र देस ,
होत न नरेस सग छाड विन भौन हैं ।
एरे जर जौहरी जवाहर दिषावै कहा ,
परष करैया लघु गाम इहा कौन है ।।

यह रमेश नाम के किसी अन्य कवि का उदाहरण है ।

२. मीलित—

भेद लष्यौ नहिं जाय सुकवि जहा साद्रस्य तें ।
मिलत न जान्यौं जाय अलकार लकार विद ।।
यथा— लाल कचुकी बाल कै हिय मे गई मिलाय ।
अग लाली मे लाल जू लाली लषी न जाय ।।

पुस्तक के सबध मे कहा गया है—

शशि कुल मडल मंडलीक बलवतसिंघ[1] हित ।
अलकारमजरी[2] करी कवि राम[3] जथा मति ।।

इस पुस्तक के पढने का फल—

जो गुनि तें यह पढै बढै, तिहि की मति जानो।
अलकार विद होय, होय जिन सस पठानो ।।
मानो प्रवान यह मे सदा, मुदा होय चित दीजिए ।
कीनो कवित्त चहैं मित्र जो, तै अब विलम न कीजिए ।।

२. छदसार— यह पुस्तक भी इन्ही राम कवि द्वारा महाराज बलवतसिंहजी के लिए लिखी गई है। इसका निर्माणकाल भी सभवत. अलकार मजरी के आस-पास रहा होगा । पुस्तक के अत मे पुस्तक, आश्रयदाता और कवि के नाम दिए गए है—

'इति श्री छंदसारे श्री मन्महाराज श्री सवाई व्रजेन्द्र बलवतसिंह हेतवं राम कवि विरचिते मात्रा प्रस्तारादि वर्णनो नाम षष्टमो सर्ग. ।

छदसार समाप्तोय ।'

---

[1] 'यदुकुल चद्रवशी' भरतपुर के राजाओ के लिए प्रयुक्त होता है। बलवतसिह 'चद्रकुल मडल मंडलीक' कहे गए है। वैसे ये जाट राजा थे ।

[2] पुस्तक का नाम ।

[3] रचयिता का नाम ।

इस पुस्तक मे ६ सर्ग हैं—

प्रथम	—	नृपतिवसवर्णन,
द्वितीय	—	सज्ञानिबधनोनामद्वितीय सर्गः,
तृतीय	—	वर्णवृत्तिनिरूपण,
चतुर्थ	—	मात्रावृत्तिनिरूपण,
पचम	—	वर्णप्रस्तारादिनिरूपण,
षष्टम	—	मात्राप्रस्तारादिनिरूपण।

इस प्रकार के सर्गो मे विभाजन को देख कर बहुत सतोष होता है कि पुस्तक मे बडे ढग से सारी सबधित बाते एकत्रित कर ली गई है। पहला सर्ग तो नृपति के वंश से सबधित है, किन्तु अन्य पाच सर्गों मे 'छद' का विश्लेषण किया है। लक्षण उदाहरण बहुत करीने से दिए हैं। दो उदाहरण देखे—

१. मालिनी— नगण दुइ बनावौ, फेरि मो लै मिलाओ।
यगण यग मला को, पाद योही धराओ॥
पद पद यम देकै, च्यारि हू चर्ण होई।
कवि जन इमि जानौ, मालिनी छद सोई॥

२ दोहा— पूर्व उत्तर तेरह कला, पर ग्यारह करि ठानि।
तेरह ग्यारह राषि कै, दोहा छद बषानि॥

इन दो उदाहरणो से दो-तीन बाते विदित होती हैं—

अ लक्षण और उदाहरण एक ही छद द्वारा दे दिया गया है. मालिनी देखिए। दो नगण फिर मगण पुन यगण-यगण अर्थात् 'न न म य य'

आ परन्तु छद के अर्थ मे कुछ विशेष सार्थकता या चमत्कार नही है केवल कामचलाऊ प्रतीत होता है।

इ. लक्षण कुछ अधूरे है। दोहे का लक्षण पूरा नही है। अत मे क्या होना या न होना चाहिए इसका कोई वर्णन नही है। केवल मात्राओ की सख्या ही बताई गई है।

इतिहास की दृष्टि से पहला सर्ग भी महत्त्वपूर्ण है क्योकि कवि ने अनेक पीढियो का वर्णन लिख दिया है, जैसे कि यह किसी 'जागा' की वही हो।

पहले कृष्ण, गणेश, सरस्वती, शिव और कवियो की स्तुति की है—

तिन पुरुषन के वंस मे, प्रगटे श्री महाराज।
तिन कौ कुल बरनत अबै, रामलाल कविराज।[1]

---

[1] कवि का पूरा नाम 'रामलाल' था।

नृप वृजेस के देस कौ, बासी है द्विजराम।
.. .. ॥
ताकर पुर हरिपुर सदृश, अति`` मतिवत।[१]
तहा राज राजत सदा, बैठ्यो नृप बलवत॥

कवि ने बताया है कि सिनसिनी गाव मे सिसिनवार वीर जाट रहते थे। इनके आदि पुरुष मकन्न थे और फिर वश-परम्परा इस प्रकार चली—

मकन्न, पृथ्वी, पृथ्वीराज, सुदराज, महू, षान, व्रजराज, भावसिंह, बदनेस, सुजान, जवाहर, रणजीत, बलदेव, बलवत[२]।

यह सम्पूर्ण पुस्तक ७८ पत्रो की है जिसमे से २४ पत्र प्रथम सर्ग मे लिए गए हैं। इस सर्ग मे राजा की वशावली, उसके नगर का वर्णन, किला, फौज, परिवार, साथी, दरबार आदि का वर्णन है। इस पुस्तक से उस समय की अनेक बातो की जानकारी होती है। दो-एक वर्णन देखे। व्रजेस के शहर का वर्णन—

अब व्रजेस के सहर की, सौभा वरनी न जाय।
मानो तन रितुराज धरि, बसत भरतपुर आय॥

किले का वर्णन—

पुर के चारहु ओर कौ, राजत कोट उतग।
ताहि विलोकत अरिन कौं, होत मान मन भग॥

नाम भी बहुत बताए हैं। राजा के सेनापति का नाम गोवर्द्धन बताया गया है।[३] साथ ही तलवार, घोड़े, हाथी आदि का वर्णन है।

पुस्तक के शेष ५४ पृष्ठो मे छदो की व्याख्या, उनके लक्षण तथा उदाहरणो सहित, की गई है।

३ **श्रृंगारतिलक**– इसके रचयिता व्रजचंद हैं। इस पुस्तक का आधार कालिदास का श्रृगारतिलक है। कवि स्वय कहता है—

पडित कविन मत्त देषि कवि कुलिदास,
ढुढि ढुढि लाय सब ग्रथन कौ सार है।
तरुनी प्रवीनन के भेद बहु भाति जानि,
फेरि प्रगटायौ यह सूक्षम अपार है॥

---

[१] कवि ब्राह्मण था और बलवतसिंह के राज्य का ही निवासी था। सभवतः कवि भरतपुर मे ही रहता था जिसे वह विष्णुलोक के सदृश बता रहा है।

[२] इसके पश्चात् इस प्रकार—
बलवंत–जसवतसिंह–रामसिंह–कृष्णसिंह–व्रजेंद्रसिंह (वर्तमान भरतपुराधीश)।

[३] 'श्री व्रजपति कौ चमूपति गोर्वद्धन अति वीर।'

श्रीमन ब्रजेंद्र महाराज बलवतसिंघ ,
जिनकी कृपा को लहि रमविस्तार है।
पंकज वरन मम राधिका चरन ध्याय।
कीनो ब्रजचद ग्रन्थ तिलकसिंगार है ॥

यह पुस्तक बलवर्तसिंहजी के लिए बनाई है।[1] पुस्तक-निर्माण का समय संवत् १८९५ है।[2] यह कालिदास के शृंगारतिलक का 'भाषा रूप' है, जैसा कवि का कहना है—

'रच्यो सुमति अनुसार यह, भाषातिलक सिंगार।
ज्यो कहू भूल्यो होय तो, लीजो सुकवि सुधारि ॥'

पुस्तक के अंत मे लिखा है—

'इति श्री मन्नमहाराज ब्रजेंद्र बलवतसिंह हेतवे ब्रजचंद विरचिते शृंगारतिलक सम्पूर्णम्। सवत् १८९५ मे मिती माघ कृष्णा १३ रविवासरे लिप्य कृत मिश्र रामबकस भरतपुर मध्ये राज्ये श्री बलवतसिंहजी'। यह तिथि पुस्तक को लिपिबद्ध करने की है।

उनकी कविता का एक उदाहरण—

नील अरविंदन के नैन जुग रोपे चारु ,
कोकनद ही को भले आनन सु लोनो है।
कुद की कलीन रचि दंत की बनाइ पंक्त ,
पल्लव नवीनन को अधर नवीनो है ॥
भनि ब्रजचद त्योही चिवुक गुलाव कीन्ही ,
चंपक के दलन को अग अग कीनो है।
सुदर सु तैरो चित विधिना निलजी ने ही,
पाहन तै कठिन सु कैसे रचि दीनो है ॥

४. **ब्रजेंद्रविनोद**— मोतीराम द्वारा लिखित।[3] यह पुस्तक प्रधानत. नायिका

---

[1] साजि भरथपुर नगर मे, श्री बलवत उदार।
तिनके हित ब्रजचद ने, कीनो ग्रथ तयार ॥

[2] ठारै से पच्यानमे, आश्विन मास प्रवीन।
शुक्ल पक्ष दसमी विजय, भयो सु ग्रंथ नवीन ॥

[3] यह पुस्तक भी बलवंतसिंह जी के लिए लिखी गई—

'इति श्री मन्नमहाराज ब्रजेंद्र बलवंतसिंहजी बहादुरस्य विनोदार्थे मोतीराम सुकवि विरचिते ब्रजेंद्रविनोदे नायकभेदनिरूपने षष्टोल्लासः।'

यद्यपि कवि ने एक स्थान पर इसे 'कृष्णार्पण' भी किया है—

'वरन्यो जुगल किसोर हित, वृंदा विपिन विहार।
रीझिदान दीजे अभय, अपनी भक्ति अपार ॥'

भद पर है, जैसा इसके ६ उल्लासो से प्रगट है—

१. स्र गार रस निरूपणं,
२. स्वभाव नायका वर्नन,
३. परकीया भेद निरूपनं,
४. नायका वर्ननं,
५. वियोग स्र्ंगार दिसा वर्नन, तथा
६. नायक भेद निरूपनं।

अध्याय-विभाजन मे 'नायक भेद' का केवल एक उल्लास दिया गया है। वैसे भी रीतिकाव्य के अतर्गत जो गौरव और महत्त्व 'नायका' को प्रदान किया गया है वह बेचारे 'नायक' को कहाँ ? यह पुस्तक महाराज वलवतसिह के समय मे रीति-काव्य पर लिखी सबसे प्रथम पुस्तक प्रतीत होती है, जैसा इसमे दिए गए ग्रन्थ-निर्माण-काल से प्रकट होता है—

ठारै सै रु पिच्यासिया, संवत यो पहिचानि।
फाग सुदी पाचे रवी, कीनौ ग्रथ वषानि॥
(१८८५ वि०)

सामान्या का लक्षण और उदाहरण देखें—

लक्षण

जो तिय परपुरषन भजै, निहचै धन के काज।
सो सामान्या नायका, वरनत है कविराज॥

उदाहरण

सुपद सरोज सुमननि सौ सवारी सेज,
अतर गुलाबनि सो रषी तर करि कै।
चौमुषे चिराक चारु चहूँ ओर जोरि दीनै,
घोरि दीनै घनै [1]अगमद मोद भरि कै।
भूषन वसन रुचि पचि के सुधारे अग,
परे तन कपूर पान दान दीने धरिकै।
लाल हिय लागति हुलासिन सौ वालहाल,
विमल विसाल लीनी मोतीमाल हरि कै॥

मुदिता का लक्षण और उदाहरण —

लक्षण

वंछै पर पुरुषनि जुतिय, देषै सुनै निदान।
सकल सुकवि जन कहत हैं, मुदिता ताहि बखान॥

उदाहरण

रच सुनि खबर उरोज उमगन लागे,
कंचुकी के कठिन कसन दरकत हैं।
सुषद सुठार भरे अमर प्रभा के मार,
हियें पर मौतिनु के हार ररकत है।
मोतीराम उदित सरदचद आनन तें,
चहु ओर रूप के प्रकास सरकत हैं।
फिरति षुशाल आज लाल मिलवैं को आली,
बाल के विसाल भुज जाल फरकत हैं।। . इति मुदिता।

एक और उदाहरण—

चिरिया चहूधा चारु चरचा करन लागी,
जागे अरुनोदय की किरण अमद है।
सोक तजि तजि कोकप्रिय नियरी सी होत,
लोक मे प्रकास भयौ फूले अरविंद हैं।।
मोती परभात भये आये अरसात गात,
भले दरसात लाल जावके के विंद है।
भूली छरछदें अवलोकि नदनदें नैन,
नीरहि भरति परी और कछु फद हैं।।

इस पुस्तक को पढने के उपरान्त नीचे लिखी धारणाएं होती हैं—

१. इनके ग्रन्थ की अनेक विशेषताओ मे प्रकृति-वर्णन भी एक है। एक उदाहरण देखिए—

गहगहे गहर गुलाब के समाज फूले,
प्राय रितुराज सुपसाज निपटे रहे।
कलित भई है वन सघन सुपद वेलि,
महमहे सौरभ समूह उपटे रहें।
मोतीराम मलयज मिलित अमद गध,
मद मद मारुत के झूका झपटे रहे।
मजुल मृदुल मालतीनि मधुमत महा,
मोद मन मुदित मलिंद लिपटे रहै।।

२. यद्यपि इस पुस्तक मे तो राज्यवश का वर्णन नही मिलता, किन्तु यह दोहा अवश्य ही मिलता है—

श्री व्रजेंद्र को वंस सव, वरन्यौ तजि उरपेद।
अव वरनौ शृंगार रस, सकल नायका भेद।।

इस दोहे के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सभवत: इस कवि ने

किसी अन्य स्थान पर राज्यवश का वर्णन भी किया होगा। ५६ पत्र मे लिखी इस हस्तलिखित पुस्तक मे तो यह वर्णन नही है। हो सकता है कि इससे कुछ ही दिनो पूर्व लिखी किसी अन्य पुस्तक मे यह वर्णन हो। बहुत खोज करने पर भी वह पुस्तक नही मिल सकी।

३. इस पुस्तक का नाम 'व्रजेद्रविनोद' है और कवि ने इसे 'बलवतसिह बहादुरस्य विनोदार्थे' लिखा है। फिर भी कवि की आन्तरिक वृत्ति का आभास 'वरन्यौ जुगल किसोर हित' से लग जाता है।

४. यह पुस्तक प्रधानत 'नायका' सबंधो है और नायिका का कोई भी निरूपण शृगार रस के विना सार्थक नही हो सकता, इस बात को ध्यान मे रखते हुए कवि ने सबसे पहले शृगाररस का निरूपण किया और इसके पश्चात् नायिका की व्याख्या की गई तथा उसके भेद-प्रभेदो का वर्णन किया गया। विषय को पूर्ण बनाने की दृष्टि से अन्तिम उल्लास मे 'नायक-भेद' भी दे दिया गया है।

५. पुस्तक मे प्राप्त कविता उच्च कोटि की है। अनुप्रास आदि शब्दालकारो के प्रति उनकी रुचि होना तो उस समय की प्रवृत्ति के अनुसार था, किन्तु इस पुस्तक मे अर्थालकारो का प्रयोग भी बहुत सुन्दर रूप मे हुआ है, और प्रकृति-वर्णन कवि की व्यक्तिगत उत्कृष्टता है।

५. **रस कल्लोल**— जुगल कवि कृत। दुर्भाग्य से यह पुस्तक अधूरी ही मिली है। इस मिलने वाले अश मे २१ पत्र मात्र हैं और सख्या १५ का छद भी न जाने क्यो छोड़ दिया गया है। ५३ छदो मे वर्णित इस 'रस कल्लोल' के केवल प्रथम तरग का ही दर्शन हो सका। इस तरंग मे 'स्थायी भाव' का वर्णन है। दूसरी तरग के लिए कवि ने विषय की दृष्टि से 'विभाव' वर्णन की बात लिखी है—

कीनो प्रथम तरग मे, थाई भाव विचार।
पुनि विभाव वरनन करौं, दुतिय तरग निहारि॥

किन्तु यह तरग हमारे देखने मे न आ सकी, न जाने किस अनत उदधि मे विलीन हो गई है। इन दो तरगो की बात जान कर यह आभास होता है कि कवि ने इस पुस्तक मे 'रस' का सुन्दर निरूपण भाव, विभाव, अनुभाव, सचारी, आदि के अतर्गत किया होगा।[1] यह पुस्तक उस समय लिखी गई जब बलवतसिंह केवल राजकुमार थे और राज्य के अधिपति उनके पिता बलदेवसिंहजी थे। इस

[1] हमे पता लगा था कि इस पुस्तक की पूरी प्रति भरतपुर के किसी पन्ना नामक चपरासी के पास है, किन्तु बहुत प्रयास करने पर भी वह प्रति प्राप्त नही हो सकी।

आधार पर इस पुस्तक का आरम्भ संवत् १८८२ से पहले मानना चाहिये।[1] इसमे नवो रसो का वर्णन था। इसका प्रमाण पुस्तक की भूमिका तथा उसके नामसे मिलता है।[2]

इस पुस्तक की समाप्ति होने तक राज्य का अधिकार वलवन्तसिंहजी के हाथ मे आ गया। तरग के ममाप्त होते-होते कवि को लिखना पडा—

'इति श्री मन्महाराजाधिराज राजेद्र शिरोमणि यदुकुलावतंस श्री वलवन्तसिंह हेतवे लक्ष्मीनारायण सुकवि सुत जुगल विरचताया साहित्यनार रसतरगिन्यानि रस कल्लोल नाम ग्रथे स्थाई भाव निरूपण नाम प्रथम तरग.।

इसके अतिरिक्त निम्न लिखित कवित्त भी देखें—

× × × ×

कोई एक सत सीलवत देपि आरत कौं,
देहि सव रोम रोम ह्वै करि प्रसन्न चैंन।
याहू तें अनत जग जाचक अजाची किये,
जुगल भनत भली नृप वलवत दैंन॥

गणेश, सरस्वती आदि की स्तुति करने के उपरान्त कवि ने सर्वप्रथम स्थायी लया। भाव का वर्णन दर्शनीय है—

रस अनुकूल विचार जो, भाव नाम जिहि होई।
कहत अन्यथा भाव तें, जग विकार कवि लोई॥
सो विकार दो भाति कौ, अतर अरु सारीर।
अतर हू द्वै विधि कह्यो, स्थाई व्यभिचारीर॥
रह्यो भेद सारीर इक, ताको भेव वपानि।
सवै प्रगट दीमत रहे, सात्विक भावहि जानि॥
सौ यह स्थाई भाव, आठ विधि कौं कह्यो।
कविजन लेउ विचारि, भरत मत मैं कह्यो॥[3]

---

[1] व्रजचद श्री वलदेवसिंह जु सुजस जग जाको छयो।
वलवत वुद्धि विलद ताके पुत्र है गुणनिधि भयो।
तिहि हेत रम कल्लोल नवरस को निरूपण लै सच्यो।
लक्ष्मीनारायण सुकवि के सुत जुगल लघुमति तै रच्यो॥

[2] रस कल्लोल के अतिरिक्त जुगल कवि को लिखा एक ग्रथ हमे और मिला जिसका नाम है 'करुण पच्चीसा'। विवरण अन्यत्र देख।

[3] इस कवि ने प्रमुख आचार्य भरत के मत का प्रतिपादन किया है- -
अ कवि का कहना है—'भरत मत मैं कह्यो'
आ इन्होने रसो की सख्या ८ ही मानी है जो भरत मत के अनुसार है, वैसे सामान्यत ९ रस माने जाते हैं।

भरत के अनुसार ये आठो स्थायी इस प्रकार है—

अथ अष्ट स्थाई निरूपणम्—

रति हासी अरु शोक क्रोध उत्साह है।
१ २ ३ ४ ५
भय निंदा विस्मय जु काव्य के थाह है ॥
६ ७ ८

शान्तरस का स्थायी 'निर्वेद' नही दिया गया है।

हास्य के स्थायी 'हास' का वर्णन देखे—

हास-लक्षण

कौतूहल करि वचन औ, वेम होइ विपरीति।
मन विकार परमित जहा, सोई हास प्रतीति ॥

उदाहरण

आवत ही पुर के ढिग वालक, छाए चहू दिसि देपि सुरेस कौ।
देखि कें भूप के मौंन कह्यो, मिलि दासिनि आयौ है वावन भेस कौ ॥
सो सुनि वानी कुतूहल तें, वलिराज तिया कहै देहु री रासकौं।
ह्वै मुसिक्यावन वावन सो जग, पालक रक्षक भूप व्रजेसकौ ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने 'रस प्रदीपका'[1] नामक पुस्तक का अध्ययन किया था और इससे प्रभावित भी हुए थे—

करुणा रस कौ लक्ष्य यह, यातें कहौं सुनाइ।
रसप्रदीपका मे कह्यौ, सो अब देंहु दिषाइ ॥

सवैया— कोमल वोल विलाप कौ कीनें है, जीवित नाथ तू जीवैं कही पर।
ता रति नें उठि के ढिग आइ, महा विलषाइ लै हा यह औसर।
सोक समुद्र मे वूढ़ि गई लई, दीन दसा कही नाथ हत्यौ हर।
कोप की ज्वाल मे भस्म भयौ, पुरसाकृत काम विलोक्यौ मही पर ॥

सरी तरग के केवल १५ ही छद मिले।

---

[1] रसप्रदीपका नाम का कोई ग्रथ नही मिलता। 'रसदीपिका' नामक एक ग्रन्थ मिलता है। सभव है कवि द्वारा जो ग्रंथ रसप्रदीपका देखा गया था वह अब लुप्त है।

६. सिखनख— रसानन्द[1] द्वारा लिखित ।

ग्रन्थ का आरम्भ इस प्रकार होता है—

"श्री राधा कृष्णो जयति—

दोहा

रस आनद मय रूप की, नैनन साधि-समाधि ।
जग वाधा निस्तार हित, राधा चरन अराधि ।।

छप्पै

आदि शक्ति सव विश्व जननि इच्छ्या वपु धारत ।
महिमा अगम पुकारि निगम कीरति विस्तारत ।।
गिरा उमा रति रमा लिये रुप सन्मुप विनवत ।
सीस धारि रज अज गिरीस पद पकज विनवत ।।
तिहि सुधा प्रेम छकि विवस ह्वै रस आनद जस गाईयै ।
रस वोध करनि वाधा-हरनि राधासरन मनाईयै ।।

अथ शृगार रसाधार सिष नष निरूप्यते—

नष सिष लौं पिय मन रमी, परिपूरन शृगार ।
सिष नष राधा कुवरि की, वरनौं मति अनुसार ।।

---

[1] रसानन्द जाट थे । 'रम-आनन्द' अथवा 'रसानन्द' इनका उपनाम प्रतीत होता है । घनानद, और आनद घन की आनन्द स्वरूप माला मे ये तीसरी कडी है । इनकी कविता उच्च कोटि की है । मिश्रवन्धुओ ने इन्हे भट्ट लिखा है परन्तु कवि के निवासस्थान भरतपुर मे की गई खोज के आधार पर ये 'जाट' सिद्ध हुए है । ये अलीगढ जिले की इंगलास तहसील के वेसवा गाव से भरतपुर आये थे । इनके निम्नलिखित ग्रथ मुझे मिले है—

१. गगाभूतल आगमन कथा । २ सिखनख । ३ व्रजेन्द्रविलास । ४ रसानन्दघन । ५ सग्रामरत्नाकर । ६ हितकल्पद्रुम (ब्रिटिश म्यूजिम लंदन मे प्राप्त हुआ । इस कृति पर मेरा स्वतत्र लेख 'हितकल्पद्रुम' अनुशीलन मे देखें ।)

इनके लिखे और कई ग्रन्थ वताये जाते हैं, जैसे—

१ वारहमासी, २. सग्रामकलाधर, ३ भोजप्रकास, ४ रसानन्दविलास, (भक्ति ग्रंथ) ५ पोडसशृंगारवर्णन ।

ऐसे प्रतिभाशाली कवि का हिंदी साहित्य के इतिहास मे नाम तक न होना वडे आश्चर्य का विषय है । प्राप्त ग्रन्थो के आधार पर कहा जा सकता है कि रसानन्द एक उच्च कोटि के कवि, आचार्य, भक्त तथा नीतिज्ञ थे ।

सबसे पहले केशों का निरूपण है—

"जलद जाल अलिमाल मणि, मरकत औ तम तार।
नील चमर मषतूल सम, बिथुरे सुथरे बार॥

कवित्त

छबि की मसाल पै छुट्यौ है तम जाल कैधो,
सोम की छटा पै घन घटा तोमसाजही।
कैंधौं रस आनदसरूप के अनूप तत,
कैंधौं ब्रिजै चमर बिलौकें सौति लाजही॥
सौंधे सने चिलकै चुनै वा सटकारे कारे,
मित्त चित्त चिकनावै हित के समाज ही।
अटल अली के फद बधन कौ जी के जैसे,
चम्पा बरनी के नीके चिकुर बिराजही॥

दोहा

वारन-गवनी रावरे, वारन ठई अनित्त।
छुटे छुटावें साहसहि, बाधे बाधे चित्त॥"

काव्य की दृष्टि से भी भाषा की स्वच्छता, कल्पना की उडान, वर्णन की स्निग्धता और स्वाभाविकता तथा छद की पूर्णता और शब्दचयन की प्रतिभा भावो को अत्यन्त प्रभावोत्पादक रूप मे स्पष्ट कर रहे हैं।[1] इस पुस्तक मे निम्नाकित प्रकरण है[2]—

केस, पाटी, वेनी, माग, भाल, वेदी, गुलाल की आड, भ्रकुटी, पलक, नैत्र, चितवनि, तारिका, कज्जल, नासिका, नथ, अधर, दसनन, रसना, बानी, हास, कपोल, कपोल की गाड, कपोल को तिल, श्रवन, ठोडी, चिबुकचिन्ह, मुख, सर्वमुख, ग्रीवा, भुज, कर, कुच, कचुकी, उदर रोमराजि सहित, त्रवली, नाभि, कटि, नितव, जंघा, चरन, जावकएडी, अंगुरी नषत, नूपुर, पाइल, गति, भूषन, गुराई, जरकसी सारी और दामन।

---

[1] सिखनख का वर्णन बडा विस्तृत है और अग प्रति अग को लेकर सुदर छदो की रचना की गई है। कवि का निरीक्षण बहुत ही सूक्ष्म और सरस है। शरीर के किसी भी आकर्षक अग को कवि भूला नही है।

[2] इस कवि के अन्य ग्रथो का विवरण, जो यथास्थान मिलेगा, इस बात को प्रमाणित करने मे सहायक होगा कि इस एक ही कवि मे कवि और आचार्य सबधी अनेक बातें पूर्णता के साथ विद्यमान हैं।

१५५ छदो मे अग से सबधित ४८ प्रसगों का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् ५० छदो मे 'पोडस शृगार' का वर्णन भी मिलता है। सिखनख का सम्पूर्ण वर्णन १६१ छदो मे समाप्त हुआ है। इस पुस्तक का समय कवि ने स्वयं ही इस प्रकार दिया है—

३ ६ ८ १
राम निद्धि वसु चंद जुत, कहि संवत सुखदानि।
व्रप कृष्णा तेरसि सुदिन, पूरन ग्रथ प्रमानि ॥[1]

कवि केवल काव्यकार ही नही था वरन् उत्कृष्ट कोटि का लिपिकार भी था। 'सिखनख' नाम का यह ग्रन्थ स्वय 'रसआनंद' द्वारा ही लिपिबद्ध किया गया था—

'सिद्ध श्री जदुवसावतंस श्री मन्नमहाराजधिराज श्री व्रजेंद्रबलवंतसिंघ विनोदार्थे रस आनद विरचते सिखनख संपूर्ण। शुभमस्तु ॥

मिती ज्येष्ठ कृष्णा १३ सवत् १८९३ हस्ताक्षर रस आनन्द के भर्थपुर मध्ये ॥'

कवि की कविता का एक उदाहरण देखने से इनकी भाषा और शैली का आभास मिलता है—

राजै आज गादी पै वृजेद्र बलवतसिंघ,
गादी यौ अनंत निस वासर बहाल होहु।
नजरि नयाज पेशकश लै नरेसन तें,
दूजे देस देसन तें आमद रसालु होहु॥
भनि रस आनद प्रताप व्यंकटेश[2] के तें,
लेस पूरे पुन्यन कौ उदै ततकाल होहु।
जगमग माल होहु विक्रम विसाल होहु,
मित्र खुसहाल होहु वैरी पाइमाल होहु ॥

७ व्रजेंद्र विलास— रचयिता रस आनद। ग्रथ की समाप्ति १८९५

ठारै सै पच्च्यानवै, शुक्रवार उनमानि।
अक्षय त्रितिया माधवी, ग्रथ समाप्ति बखानि ॥

यह एक उत्तम ग्रन्थ है और इसमे ३६४ छद हैं। इस पुस्तक की पत्रसख्या ११९ है। अत मे एक कवित्त द्वारा प्रार्थना की गई है। दुर्भाग्य से इस हस्त-लिखित प्रति की अवस्था कुछ अच्छी नही है। वैसे पुस्तक पूरी है।

---

[1] रामो दाशरथी रामो भृगुवंशो समुद्भव। (३ राम)
[2] 'वेंकटेश' वाले लक्ष्मणजी राजाओ के इष्टदेव थे।

सर्वप्रथम कवि ने नदनन्दन व्रजचद की प्रार्थना की है, फिर गणपति की, और इसके पश्चात् बलवन्तसिहजी के राज्य का वर्णन किया है—

गुर गणपति गिरिजा सुमिरि, वदि चरन गिरिराज ।
श्री व्रजेंद्र बलवत को, वरनो राज समाज ॥

राजसमाज का वर्णन देखने योग्य है ।[1] राजा की कीर्ति, गज, साडिया, आतक, सभा, आदि के वर्णनोपरान्त कवि अपने ग्रथ का प्रथम विलास समाप्त करता है ।[2]

सबसे पहले पिंगल का प्रकरण लिया है क्योकि 'छदसार' के अनुसार इनका भी यही कहना है—

पिंगल मत समुझे बिना, छद रचन को ग्यान ।
होत न याते प्रथम ही, पिंगल करत वषान ॥

इस पुस्तक मे ७ विलास है ।[3]

१ विलास — प्रयोजन
२. विलास — पिंगल कर्मनिरूपरण
३ विलास — मात्रा
४. विलास — वर्णवृत्त छदनिरूपरण
५ विलास — व्यगि शब्दार्थनिरूपरण
६. विलास — काव्यदोषनिरूपरण
७ विलास — काव्य गुरण अनुप्रास चित्र

ऐसा विदित होता है कि इस पुस्तक मे एक विलास और होगा क्योकि अनुप्रास चित्र आदि के पश्चात् उस समय की पद्धति के अनुसार अलकार प्रकरण होना स्वाभाविक ही है । यह प्रकरण काफी बडा होना चाहिए, किन्तु अपनी

---

[1] चारि हू बरन निजनिज सुधर्म । निरविघ्न आचरत क्रिया कर्म ॥
जह बहु अवास सुख के निवास । तिन ऊपर कचन कलस भास ॥
फहराति धुजा लगि आसमान । जनु विजय भुजा नभ भासमान ॥
जह चौक चारु चौरे फराक । तह कटत नचत हय वर चलाक ॥

[2] राजा के लिये लिखा है—चौदह विद्या मे निपुन, चौंसठि कला प्रवीन ।
पै निस द्यौस रहै सदा, कविता के रस लीन ॥

[3] दूसरे और तीसरे विलास के २५ से ३२ तक के पत्र पुस्तक मे नही है, इनके स्थान पर सादे कागज लगा दिये गए हैं ।

खोज मे मैं उसे पाने मे असमर्थ रहा। पुस्तक के कुछ उदाहरण—

प्रथम कवित लच्छिन कहौं, बहुरि प्रयोजन मित्र।
तातैं पाछैं वरनि हौं, कारन भेद विचित्र॥

अथ काव्य लक्षिन

सगुन पदारथ दोष विहीन, ईषद भूपन कवि क्रम लीन।
पुनि पिंगल मतते अविरुद्ध, सो कविता पहिचानव शुद्ध॥

काव्य कौ प्रयोजन—

जस विनोद वित राजश्री, अति मगल की दानि।
सो कविता पहिचानिये, चतुराई की खानि॥
(इनै आदि दै और हू जानियें)[1]

काव्य कौ कारण—

शब्दार्थ जिनते विधि नीकी, कवित होति भावती जीकी।
ताकौ प्रघट गूढ जु अरथ्थ, जानौ चित्त कारन समरथ्थ॥
(सो वह चित्त कौ कारण त्रिविध होता है)[1]

इस पुस्तक के एक दोहे से ऐसा विदित होता है कि इन्होने नायक-नायिका भेद पर भी कोई पुस्तक लिखी थी जिसका नाम 'व्रजेंद्रप्रकास' था।[2]

हमारे अनुसधान मे जो महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित पुस्तकें रीतिकाल से सवधित मिली, उनका साधारण विवरण ऊपर दिया जा चुका है। इन पुस्तको मे कुछ तो पूर्ण हैं और कुछ अपूर्ण, किन्तु रीति सवधी सभी प्रसगो का निरूपण सम्यक् रूप मे मिलता है। इन पुस्तको के प्रधान विषय ये हैं—

१ रस, २ ध्वनि, तथा अन्य काव्य-सम्प्रदायो सवंधी प्रसग, ३. अलकार, ४. छद, ५. नायक-नायिका भेद, ६ सिखनख, ७ राग-रागनियो का वर्णन ८. पोडस शृगार, आदि।

बहुत सी हस्तलिखित पुस्तको की कई-कई प्रतियां उपलब्ध हुईं जैसे 'रस पीयूषनिधि', 'सिखनख'। इनमे से 'सिखनख' की तो टीका मात्र पर ही हमारा अधिकार है क्योकि टीका ही मत्स्य के मनीराम द्विज द्वारा की गई है। 'सिखनख' इसके मूल लेखक बलभद्र मिश्र तो ओरछा के रहने वाले थे। दूसरे ग्रन्थ की जो प्रतिया प्राप्त हुईं उनमे से कई तो अपूर्ण है किन्तु जो ३-४ प्रतिया पूर्ण

---

[1] यत्र तत्र गद्य–टिप्पणिया भी दी हुई हैं, किन्तु बहुत सूक्ष्म।

[2] 'लच्छिन तिय अरु पुरुष के' हाव भाव सविलास।
प्रथम वृजेंद्र प्रकास मे, ते सव किये प्रकास॥'

मिली उनके आधार पर कहा जा सकता है कि मूल ग्रन्थ और उसकी प्रतिलिपियो मे वहुत थोडा अतर रहा होगा। इसमे सदेह नही कि जो रीतिकालीन परंपरा हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश मे प्रचलित हो रही थी उसी से मत्स्य प्रदेश भी प्रभावित हुआ और अनेक नवीन रीति-ग्रथो का निर्माण होता रहा। साथ ही काव्य-विवेचन-संवधी प्रामाणिक ग्रथों को लिपिवद्ध किये जाने का कार्य भी चलता रहा। इस विषय मे राजाओ की काफी रुचि थी और उनके दरबारो में रीतिकारो का आदर होता था।

उस समय वैसे तो अनेक छद तथा अलंकार प्रचलित थे पर अधिक प्रयोग मे आने वाले छदो की सख्या सीमित थी। निरूपण ग्रन्थो मे छद और अलंकारो की सख्या वहुत वढ चुकी थी, परन्तु प्रचलन मे नही। कविवर सोमनाथ ने अलकार और छद के अनेक भेदो का वर्णन किया है, और इसी प्रकार वहुत से अन्य कवियो ने भी। हिन्दी के प्रसिद्ध रीतिकारो की तरह यहाँ के कवि भी प्रचलित तथा अप्रचलित सभी अलकारो एव छदो का सोदाहरण निरूपण करते थे। व्याख्या-प्रणाली इतनी उत्कृष्ट प्रतीत नही होती, किन्तु हिन्दी-प्रदेश मे जो प्रणाली चल रही थी उससे यह किसी प्रकार कम भी नही। भोगीलाल और रसानद ने हृदयग्राही प्रणाली का अनुगमन किया, और राम तथा व्रजचद आदि कवि सरल प्रणाली के पक्षपाती थे।

मत्स्य मे जो साहित्य-शास्त्री और सिद्धान्त-निरूपणकर्ता हुए उनकी कुछ विशेषताए इस प्रकार है—

१. रीति के अतर्गत उपर्युक्त सभी विषयो का निरूपण किया गया, यद्यपि शृगार के वाहुल्य से इस रस को 'राजत्व' प्रदान किया गया किन्तु काव्य के अन्य अगो की भी उपेक्षा नही हुई, जैसे शृगारेत्तर रस, ध्वनि, गुण, दोष आदि।

२ आचार्य मम्मट से प्रभावित कवि नायक-नायिका-भेद की ओर अधिक नही झुके। उन्होने उत्तम, मध्यम तथा अधम काव्य का वर्णन उसी प्रकार किया जैसे काव्य-प्रकाश मे है। हिन्दी के अन्य रीतिग्रन्थ नायक-नायिका-भेद तथा शृगार के अन्य उपादानो से अधिक प्रभावित है किन्तु मत्स्य प्रदेश मे निर्मित रीति-ग्रन्थो मे सिद्धान्त का सम्यक् प्रतिपादन विशेष रूप से किया गया है।

३. काव्य-निरूपण मे प्रायः सरल शैली का अनुगमन किया गया है,

यह प्रवृत्ति दो रूपो मे लक्षित होती है—

अ. लक्षण देने मे,

आ उदाहरण देते समय।

काव्य के विभिन्न अगो को समझाते समय सरलता का ध्यान रखा गया है, उदाहरण भी स्पष्ट और सरल दिये गये है। मत्स्य मे कठिन कविता नही मिलती। इसका अभिप्राय यह नही कि सरल कविता करने वाले इन कवियो की काव्यकला निम्नकोटि की है। इस अध्याय मे स्थान-स्थान पर दिए गये उदाहरण इस बात के पुष्ट प्रमाण है कि काव्य-गुणो की दृष्टि से कविता का सामान्य स्तर उच्च ही रहा। सम्भव है राजाओ के लिए लिखे जाने से इन ग्रथो मे सरलता पर विशेष ध्यान दिया गया हो।

४. प्रसगो को समझाते समय मत्स्य के आचार्यों द्वारा गद्य का प्रयोग भी यथास्थान किया गया है। उस समय को देखते हुए लक्षण-ग्रथो मे प्राप्त इस गद्य को हमे सरल और सुगम ही मानना पडेगा। गद्य का प्रयोग करते समय आचार्यो का ध्यान बोलचाल की सामान्य भाषा की ओर ही रहा। कविता मे तो विशिष्ट पदरचना की ओर कुछ ध्यान अवश्य रहता था किन्तु गद्य साधारण होता था। सम्भव है उन लोगो का अनुमान हो कि विशिष्ट पदरचना के लिए केवल पद्य ही उपयुक्त साधन है, गद्य तो बोलचाल की भाषा है। गद्य के प्रयोग से विषय को समझने मे बहुत आसानी हो गई है।

५ यहा के कवियो द्वारा काव्य के विभिन्न अगो की व्याख्या करते समय ब्रजभाषा गद्य का ही प्रयोग हुआ। अलवर मे जो भाषा प्रयुक्त हुई वह भी ब्रज ही है। इसका प्रधान कारण उस समय ब्रजभाषा का महत्त्व तथा कवियो का ब्रजप्रदेश से आना था। जैसे संस्कृत देववाणी होने के कारण सर्वत्र ग्रहण की गई, हो सकता है, उसी प्रकार साहित्य की भाषा के रूप मे ब्रजभाषा को ही स्वीकार किया गया, फिर चाहे वह गद्य में प्रयुक्त की गई अथवा पद्य मे।

इसमे सदेह नही कि रीतिकाल मे मत्स्यप्रदेश के कवियो का अपना एक गौरवपूर्ण स्थान है। सोमनाथ के सम्बन्ध मे तो हिन्दीजगत को अब सदेह ही नही रहा क्योंकि उनका रसपीयूषनिधि नामक ग्रथ अब हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि बन गया है। यहां और भी अनेक कवि ऐसे हुए जो अपना व्यक्तिगत उच्च स्थान रखते हैं। कलानिधि, रसानन्द, भोगीलाल और हरिनाथ ऐसे नाम नही जिन्हे हिन्दी के रीतिकाल का वर्णन करते समय भुलाया जा सके। कला-

निधि और रसानन्द तो विशिष्ट काव्य-शास्त्री कहे जाने के अधिकारी हैं और हिन्दी के उच्च रीतिकारो की श्रेणी मे इन्हे रखा जा सकता है।

इस प्रदेश मे अनेक कवि आते जाते रहते थे क्योकि उन्हे मत्स्य के राजाओ के दरबार मे आश्रय और सम्मान मिलता था। कुछ कवि तो यही बस गये और कुछ समय-समय पर आते रहे। भरतपुर के प्रसिद्ध कवि कलानिधि, जो बूदी के बुधसिंह और उसके पश्चात् भोगीलाल के पास रह चुके थे भरतपुर मे आकर बस गए। इसी प्रकार बख्तावरसिंह के दरबार मे रहने वाले भोगीलाल भी राजा का यश सुन कर ही उनके पास आए थे। समय-समय पर आने वाले कवियो में देव, कृष्णदास और नवीन के नाम प्रमुख हैं। यहा के काव्य पर भी इन प्रसिद्ध कवियो का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। कहा जाता है कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध महाकवि देव भरतपुर तथा अलवर राज्यो मे पधारे थे।[1] इनके सम्बन्ध मे कई किवदतिया प्रचलित हैं। नवीन भी इधर आये। इनका नेहनिदान एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है और मत्स्य मे बहुत प्रचलित था क्योकि इसकी कई प्रतिया हमे मिली, जिनमे से एक को लिपिबद्ध करने वाले स्वय रसानन्द थे। इस पुस्तक के अन्त में लिखा है—

आसाढ वद २ सवत् १८९६। हस्ताक्षर रस आनद के भरतपुर मध्य।
श्री राधायै नम.।

---

[1] भरतपुर के प्रसिद्ध साहित्यसेवी स्व० गोकुलचन्द्र दीक्षित के पास देव के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ थे। उन्ही ने भरतपुर का इतिहास 'ब्रजेन्द्र वशभास्कर' लिखा तथा देव के ग्रन्थ 'शृगारविलासिनी' का सपादन किया। बहुत दिनो तक यह कहा जाता था कि देव का 'सुजान विनोद' महाराजा सुजानसिंह के लिये लिखा गया था क्योकि सुजानसिंहजी के समय मे ही देव कवि डीग पधारे थे। राजा ने उनसे कविता सुनाने को भी कहा था और साथ ही राजा की इच्छा थी कि वे देवजी का कुछ आर्थिक सत्कार भी करे। न जाने क्यो देव ने कुछ नही सुनाया और कहा 'सरस्वती आज्ञा नही देती है।' जब बार-बार कहा गया तो देव ने कुछ वैराग्य सवधी छद सुनाये जो 'देवशतक' मे सम्मिलित बताये जाते हैं। जब आपस मे नोक-झोक बहुत बढ गई तो देव ने निम्न दोहा कहा था—

पीताम्बर फाट्यो भलो, साजो भलो न टाट।
राजा भये तो का भयो, रह्यो जाट को जाट॥

कहा जाता है कि देव अलवर भी पधारे थे किन्तु इस प्रसग मे समय मेल नही खाता। देव का काल १८ वी शताब्दी का पूर्व काल है और अलवर के प्रथम राजा प्रतापसिंह का समय सं. १८१३ से १८४८ वि० है। हो सकता है जब ये लोग अलवर से दूर कुसुमरा मे रहते थे तब देवजी वहा पधारे हो। इनके वशज भोगीलाल तो अलवर के राज्यकवि थे ही।

श्री जी श्री ।

देव, नवोन[1] ग्रादि के ग्रतिरिक्त ग्रौर भी कवि ग्राते रहे होगे ।

इस प्रकार मत्स्य प्रदेश मे रीति-काव्य-धारा पुष्कल रूप में प्रवाहित होती रही ग्रौर ग्रन्य स्थानो के ग्रनेक कवि ग्रौर विद्वान भी इसमे ग्रपने स्रोत मिलाते रहे ।



[1] इनकी एक ग्रन्य पुस्तक 'प्रवोव रस सुधासार', सवत् १८८१ की लिखी हुई, ग्रौर मिली है ।

अध्याय ३

शृंगार-काव्य

शृंगार काव्य के अतर्गत कई प्रकार की कविता आ सकती है, जैसे—

१. लक्षण ग्रन्थो मे दिए गए उदाहरण,

२. कृष्ण की लीलाओ मे सयोग तथा विप्रलभ शृगार,

३. राजाओ के विलास का वर्णन,

४. ऋतु-वर्णन मे नायिका आदि का वर्णन,

५. 'नखसिख' या 'सिखनख' मे शृगारी कविता,

६. विवाह आदि प्रसगो मे,

७. राधामगल, पार्वतीमगल, जानकीमगल आदि अवसरो पर इस प्रकार के वर्णन,

८. शृगार रस के विश्लेषण हेतु लिखी कविता मे कामुक चेष्टाओं के वर्णन,

९. होरी, आदि।

'नखसिख' सवधी कविता हमने रीतिकाव्य के अतर्गत ले ली थी क्योकि उसका प्रतिपादन एक प्रचलित प्रणाली के अनुसार होता था और जो पद्धति वध गई थी उसमे कोई हेर-फेर नही होता था, अन्यथा यह प्रसग और इससे संवधित कविता भी शृगार के अन्दर आती है। रीतिकाव्य और शृगार मे अतर करना हिन्दी वालो के लिये थोडा कठिन है, क्योकि जो साहित्य मिलता है उसके आधार पर विभाजन-रेखा खीचना सभव नही हो पाता। सिद्धान्त रूप मे कवि जिस समय तक लक्षण देता है अथवा किसी बात को समझाता है वह रीतिकार है — आचार्य है, किन्तु जव उदाहरण देते समय सहृदयता का अनुगमन करता है तो शृगारी कवि वन जाता है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य का तृतीयकाल 'शृगारकाल' अथवा 'रीतिकाल' कहलाता है। हमने ये दोनो वाते अलग कर दी हैं क्योकि मत्स्य-साहित्य का अध्ययन करते समय हमे यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई दी कि इस प्रान्त के कवियो मे आचार्यत्त्व के गुंण अधिक है और शृगारी रचना की ओर उनका इतना ध्यान नही।

मत्स्य-प्रान्त मे राधाकृष्ण की भक्ति का बहुत प्रचार था अतएव यहा राधा और कृष्ण से सवधित बहुत सा शृगारी साहित्य एकत्रित हो गया। दान-लीला

श्रीकृष्ण लीला, उद्धव पचीसी, रास पचाध्यायी आदि प्रकरण मत्स्य मे शृंगार के प्रतिष्ठापक बने। यह साहित्य सयोग तथा विप्रलभ दोनो प्रकार का था। शृंगार का विश्लेपण करने पर हमे इस निष्कर्प पर आना पडता है कि संपूर्ण नायक-नायिका-भेद भी शृंगार काव्य के अतर्गत आ जाने चाहिये क्योकि उनमे शृंगार के अतिरिक्त और है भी क्या ? किन्तु हमने इसको भी नखसिख के अनुसार रीति के अतर्गत ही लिया है, कारण वही है कि इस प्रसग मे भी कवियो ने कुछ वधी हुई प्रचलित प्रणालियो का अनुगमन मात्र किया है और उसे लक्षण तथा उदाहरण के रूप मे लिखा गया है।

राजस्थान के साहित्य मे राजाओ का व्यक्तिगत विलास भी इस काव्य के अतर्गत आ सकता है। यद्यपि हमारी खोज मे इस प्रकार का साहित्य वहुत कम मिल सका फिर भी हमारा अनुमान है कि उस समय की परिस्थिति को देखते हुए ऐसा साहित्य भी प्रचुर मात्रा मे होना चाहिये। हो सकता है यह साहित्य राजाओ के व्यक्तिगत जीवन से सवधित होने के कारण प्रचार न पा सका हो। राजाओ द्वारा अनेक त्योहार मनाये जाते थे, जैसे होली। दरवार मे मुसाहिवो के साथ होली खेलने के उपरान्त महलो मे भी होली होती थी और कोई कारण नही कि कवि की विदग्ध आखे वहा न पहुँची हो, किन्तु इस प्रकार का साहित्य वहुत ही कम मिल पाया है।

हमारी खोज मे कवित्त सवैया आदि प्रचलित शृंगारी छन्दो के अतिरिक्त कुछ पद भी ऐसे मिले है जिनका सवध शृंगार से है। इन प्रसगो मे लक्ष्मण तथा उर्मिला के शृंगार से सवधित पद वहुत मूल्यवान हैं। इस सवध मे दृष्टव्य है कि—

१. लक्ष्मणजी भरतपुर राज्य के इष्टदेव रहे है।

२. राधा-कृष्ण सवधी शृंगारिक पद तो मिलते हैं किन्तु सीता और राम संवधी पद वहुत कम हैं। उर्मिला-लक्ष्मण सवधी पद तो हिन्दी मे एक मूल्यवान तथा विचित्र प्रसग होगा किन्तु मत्स्य प्रदेश के कवियो ने लक्ष्मण जैसे त्यागी को भी नायक वना डाला है। इस सवध मे एक विचारणीय वात यह है कि श्री मैथिलीशरणजी के द्वारा इस प्रसंग को लेने पर हिन्दी-ससार में उसे मौलिक उद्भावना वताया गया था किन्तु मत्स्य प्रदेश मे डेढ सो वर्प पूर्व इस प्रकार की सरस कविता हो चुकी थी। यह तो नही कहा जा सकता कि श्री गुप्तजी को स्फूर्ति प्रदान करने मे यह साहित्य कुछ उपयोगी सिद्ध हुआ होगा, लेकिन यह वात माननी पडेगी कि हमारी खोज के आधार पर उनका यह शृंगारी प्रसंग एक दम नया नही।

३. यह रचना पदो मे है, और पदो के ऊपर रागो के नाम आदि दिए हुए हैं।

यह तो एक मानी हुई बात है कि उस समय के दूषित और कामुक वातावरण के कारण देशी राजाओ को मनोवृत्ति शृगारी रचनाओ की ओर थी। मत्स्य प्रदेश का साहित्य इस धारणा का अपवाद सा मालूम होता है। खोज मे मिली हुई पुस्तको के आधार पर कहा जा सकता है कि मत्स्य के राजा इस सामयिक प्रवृत्ति से इतने प्रेरित नही थे। मत्स्य मे जहा रीति के ग्रन्थ हैं वहा नीति के भी है, भक्ति सबधी साहित्य है तो राजनीति भी है, धर्म-प्रकरण है तो युद्ध-कला विशारदता भी है, रामायण और महाभारत के अनुवाद है तो भागवत के भाषा-पारायण भी है, मगलो की रचना हुई तो साथ ही अन्य प्राचीन कहानिया भी कही गई है। इस प्रकार मत्स्य के विविध विषय-विभूषित साहित्य मे कामुक विलास का वह रूप देखने मे नही आता जिसने हिन्दी के उस काल का साहित्य गर्हित बना दिया। यहा के राजाओ का मन भी इस ओर कैसे लग पाता जब कि—

१ यहा के राजा अपनी ही झझटो मे फसे रहते थे, उनके लिये न विलास का अवसर था और न उसकी उपयुक्तता ही,

२. विशेषतः जाट राजा युद्ध के लिये उत्सुक रहते थे, उन्हे दरबारो मे चुपचाप बैठकर शृंगारी कविता सुनने की न फुरसत थी और न शौक,

३ गोसाईजी, गोवर्द्धनजी आदि के प्रभाव से राधाकृष्ण की ओर पूज्यभाव अधिक था, उनके विलासमय रूप की ओर झुकाव नही था। इसका परिणाम यह हुआ कि यहा के साहित्य मे एक ओर तो नायक-नायिका का अधिक प्रचार न होने पाया दूसरी ओर कवित्त सवैया आदि छदो मे शृंगारी कविता भी कम लिखी गई। वैसे खाली मौको पर दरबारी कवि कुछ शृगारी रचना अवश्य सुनाते रहे होगे क्योकि वातावरण से सब कोई प्रभावित होते हैं फिर सर्वत्रगामी कवि ही कैसे पीछे रहता, चाहे वह जाटो के दरबार मे हो अथवा युद्ध-शिवरो मे।

व्रज मे रास-लीलाए बहुत समय से होती आ रही है, और इन लीलाओ के आधार पर शृगार सबधी कविता भी हुई—राधा-कृष्ण अथवा गोपी-कृष्ण के नाम से शृगारी कविता में बहुत वृद्धि हुई। अलवर नरेश बख्तावरसिंह की लिखी "कृष्ण-लीला" मे राधा और कृष्ण दोनो का अलग-अलग नखसिख तथा उनका मिलन और क्रीड़ा आदि प्रसग दिए गए हैं। राधा-कृष्ण का यह नायक

और नायिका-स्वरूप मत्स्य के साहित्य मे वहुत कम पाया जाता है। लीलाए अधिक मिली जैसे कृष्ण की होरी अथवा फाग लीला, रसोई लीला, दान-लीला, माखन चोरी लीला, लीलहारी लीला, वैद्य लीला, चीरहरण लीला। राजदरवारो मे भी ऐसी पुस्तको की पहुँच थी।

रस की दृष्टि से इस सपूर्ण काल को शृगार काल कहा जाता है क्योकि इस युग मे शृगार रस की कविताए ही प्रधानरूप मे लिखी गई। मत्स्य का शृगार साहित्य अश्लील नही हो पाया क्योकि यहा के राजाओ की रुचि विलासी नही थी। शुक्लजी के शब्दो मे जव अन्य "राजाओ के लिये कर्मण्यता और वीरता का जीवन वहुत कम रह गया था" तव यहा मत्स्य मे राजाओ के सामने अनेक समस्याए रहती थी जिनमे सवसे वडी समस्या थी घर के दस्यु का दमन, राज्य की स्थिति को सुदृढ वनाना तथा शत्रु के आक्रमण से वचने की क्षमता रखना। भरतपुर तथा अलवर के राजाओ ने अग्रेज, मराठे और मुसलमानो से युद्ध ठाने थे। अपने राज्य की वृद्धि का भी उन्हे वरावर ध्यान रहता था। जवाहरसिंहजी के राज्यकाल मे तो भरतपुर की सीमा वहुत वढ गई थी और यह सव राजा के व्यक्तिगत उत्साह और सगठन के द्वारा हुआ था। जवाहरसिंहजी से वलदेवसिंहजी के समय तक वातावरण इसी प्रकार का रहा था।[1]

इस प्रान्त मे पाई गई कुछ पुस्तको का विवरण दिया जाता है जिनके आधार पर निष्कर्ष निकालते हुए कुछ विशेष वाते कही जा सकेगी।

करौली के राजकुमार रतनपाल भैया का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास मे आता है। "प्रेम रतनागर" नाम की पुस्तक वहुत प्रसिद्ध रही है इसके रचयिता देवीदास है, रतनपालजी उनके आश्रयदाता थे।[2]
प्रस्तावना के रूप मे कवि ने लिखा है—

सदा करौरी देषीये, इन्द्रपुरी कौ रूप।
श्री भैया रतनेस कौ, सेवत वडेडे भूप॥

---

[1] लार्ड लेक के साथ भरतपुर के युद्ध इसी समय मे हुए, और अलवर मे भी मेवो के आदोलन लगभग इसी समय के आस-पास दवाये गये।

[2] इस पुस्तक का निर्माणकाल इस प्रकार है—

सवत सत्रह से वरस, वयालीस रु ब्यार।
अश्वनि सुदि तेरस कियौ, ग्रथ विचारि विचारि॥

वैसे से तो यह ग्रंथ हमारे काल मे आता भी नही परन्तु करौली राज्य का यह ग्रथ एक परम्परा विशेष की ओर सकेत करता है, जिसका अनुगमन "नेह निदान" आदि ग्रन्थो मे हुआ।

तहा आयौ देवी सुकवि दैन असीस उदार ,
रतनपाल भैया कीयौ तासो प्यार अपार।
एक दिना अँसै कह्यौ साहिव सहेत सनेह ,
हम कौ पूरन प्रेम कौ रतनागर करि देह।

और फिर इस ग्रंथ की रचना हुई।[1]

इस पुस्तक मे ५ तरगें है—

१. प्रथम तरग—कवि, रतनपाल, पुस्तक-प्रयोजन
२. द्वितीय तरंग—"प्रेम कौ निरूप"। प्रेम के अनेक स्वरूपो का वर्णन किया गया है।
३. तृतीय तरग—अनेक उदाहरण दिये गये है, चकोर, मीन, हस, आदि के प्रेम को चित्रित किया गया है।
४. चतुर्थ तरग—अन्य उदाहरण।
५. पचम तरंग—इस तरंग मे भी वहुत से उदाहरण दिए गए हैं।

श्रृंगार की अपेक्षा इसे 'प्रेम काव्य' कहना अधिक सगत होगा। इसमें स्त्री और पुरुष का काम विषयक प्रेम नही वरन् प्रेम के सच्चे स्वरूप का वर्णन है—

प्रेम कै न जाति पाति प्रेम कै न रात दिन
प्रेम कै न जत्र तत्र प्रेम कौ न नेम है ,
प्रेम कै न रग रूप प्रेम कै न रक भूप
प्रेम कै तो एक रूप लोह अरु हेम है।
प्रेम कै न सुख दुप और प्रेम कै न हान लाभ
प्रेम कै न जीव तातै तीनू काल छेम है ,
देवीदास[2] देषीयौ विचारि चारो जुग माझ
अँसो यह पूरन प्रकास नाम प्रेम है॥

---

[1] रतनपाल भैया कवियो के वडे प्रेमी थे। कहा गया है—

श्री भैया रतनेस जू जवहि लेइ धन हाथ,
अरि कविकुल-दारिद दोउ भजत येक ही साथ।

रतनपाल भैया करौली नरेश धर्मपाल के पुत्र थे—

"धर्मपाल सागर तें उपजौ"

[2] देवीदास आगरा नगर मे ताजगज के रहने वाले थे। आश्रयदाता की खोज मे करौली जा निकले, क्योकि उन्होने सुना था—

रजधानी जदुपतनि की नगर करौरी राजु ,
तहा पडित अरु कविन कौं राजत सकल समाजु।

फिर तो करौली के राजकुमार रतनपाल ने इनके साथ वहुत सुन्दर व्यवहार किया। प्रेम-व्याख्या के अतिरिक्त देवीदास ने राजनीति का भी सुन्दर विवेचन किया है।

प्रेम का वहुत सुन्दर विवेचन किया गया है।

एक अन्य पुस्तक, मत्स्य के प्रसिद्ध कवि सोमनाथ द्वारा लिखित, "प्रेम-पचीसी" है। यह भी एक शुद्ध प्रेम काव्य है जिसमे प्रेम के सयोग तथा वियोग दोनो पक्ष चित्रित किये गए है। इस पुस्तक की एक वहुत भारी विशेषता यह है कि इसमे पजावी का समावेश है। साहित्य मे यह एक नूतन प्रयोग है और सामान्यत हिन्दी काव्य मे इस प्रकार की प्रवृत्ति देखने मे नही आती। इस ग्रथ की भाषा से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि कविवर सोमनाथजी पजावी भाषा से सुपरिचित थे किन्तु यह समझ मे नही आता कि कवि को इस प्रकार के प्रयोग की आवश्यकता क्यो पडी। इस पुस्तक मे स्थान-स्थान पर पजावी वेश-भूषा से सुसज्जित काव्य का दर्शन होता है। व्रजभाषा के कवि सोमनाथ मे यह प्रवृत्ति पाकर आश्चर्यमिश्रित आनंद होता है। इसका अन्य कोई समाधान न पाकर हम यही मानेगे कि ये भी कवि का एक प्रयास था जिसमें उसे सफलता मिली। सोमनाथ ने रीति-ग्रथ लिखे, प्रवन्ध काव्य रचे, फुटकर कविताएं की, भक्तो के चरित्र और देवताओ की कथाए लिखी, संस्कृत पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद किए और साथ ही हिन्दी मे पजावी के समावेश का सुन्दर प्रयोग भी कर डाला। प्रेम पचीसी का आरम्भ इस प्रकार होता है—

"अथ सोमनाथ लिष्यते—

मंगल मूरति विघन हर सुन्दर त्रिभुवन पाल,
पेवट प्रेम समुद्र के जै जै श्री नदलाल।
क्या कीनी तकसीर तुसाढी[1] नहिं मुपरा दिपलावै है,
राति दिना विन तैंडी[2] चरचा मुजनू[3] और न भावै है।
वेदरदी महवूव गिरदे क्यो गिरंदगी करता है,
सोमनाथ नेही सै कैसा दिल अंदर दा[1] परदा है।
वे तुम सै महवूव गुविंदे नैन असाडे उरझे हैं,
कौन सकै सुरझाई इनोनै पै औरो सै सुरझे हैं।
वेदरधी पहिचानि दरध नूं[2] भला दिया तै अरदा है,
सोमनाथ नेही से .....
जित्थे[3] पैर धरै तू ज्यानी[4] तित्थे[5] पलक विछावा[6] मै,
तैंडी कहैं कहानी जिसनू[7] हस हम कठ लगावा मै।
तैंडा रूप गुविंदे मैंडे[8] नैनो नाल[9] विहरदा हैं,
सोमनाथ नेही से......

---

[1] तुसाढी, [2] तैंडी, [3] मुजनूं आदि पजावी प्रयोग।

[1] से [9] तक सकेतित शब्दो को देखिए एकदम पजावी भाषा है किन्तु खूवी यह है कि इस भाषा को हिन्दी वाले अच्छी तरह से समझ सकते हैं और कोई कठिनाई नही होती।

दर्दबद वेदरद कन्हैया जे पन को प्रति पालै हैं,
पाक नजरि पहिचानि गहगही गरु वे दरद उसालै है ।
प्रेम पथ मे डगदै जानी अब क्यो हिये अहरदा है,
सौंमनाथ नेही से... ..

प्रेम पचीसी हिन्दी साहित्य मे एकदम नई चीज है इस काल के अन्य कवियो मे हमे पजाबी भाषा का यह रूप नही मिलता। प्रेम की दृष्टि से भी यह प्रेम लौकिक नही है, यह तो कृष्ण के प्रति प्रेम है जैसा पुस्तक के चौबीसवे पद्य से स्पष्ट है।

तुझ विन श्री वृजचंद चद्रिका चदन तन हित चावै है,
रुचदे नही दुकूल रग सग फूल सूल सरसावे है।
तैंडे लिये न लरदा जो भी नाहक लोग झगडदा है,
सौंमनाथ नेही सै .....

और अत मे तो कवि इसे स्पष्ट रूप से "नद किसोर निमित्त" कह देता है—

सूर पचीसा प्रेम को सुनि सुपपावै चित्त,
सौंमनाथ कवि ने रच्यो नदकिसोर निमित्त।

इस वात का निराकरण नही हो पाता कि आरम्भ मे पुस्तक का नाम प्रेम पचीसा कहकर अत मे सूर पचीसा क्यो कहा गया है। हो सकता है इसका सबध कवि ने गोपी और कृष्ण विरह से जोड़ा हो और इस प्रसग मे भ्रमर गीत के नाते सूर का स्मरण कर लिया हो। कृष्ण का वर्णन भी स्थान-स्थान पर आता है। जैसे—

पचरग पाग लटपटी तिसपै कलगी मनिगन वारी है,
कुडिल श्रवन कमल से लोचन चद्र वदन उजियारी है।
यौं वनि कै व्रजचद क्यौ नही मैंडे डगरनि करदा है,
सौंमनाथ नेही से... .
कसकत अबै हमेसा तेंडी वक विलोकनि तिष्षी है,
ना जानूं ए अषे कित्थै जालम जादू सिष्षी है।
मैं तुज हत्थ विकाया मोहन हुन क्यो कान्ह अकरदा है,
सौंमनाथ नेही से ...
तुझनूं विना निरष्षै मोहन मुझनू चैन न परदा है,

यह पुस्तक सिलेखाना लाइब्रेरी द्वारा प्रेषित राजकीय पुस्तकालय भरतपुर मे मिली थी। इसी जिल्द मे "प्रेम पचीसा" की एक अन्य हस्तलिखित प्रति भी है जिसमे "अदर दा" के स्थान पर "अदर विच" लिखा हुआ है। अन्य वातो में अंतर नही है। पुस्नक के देखने से निम्नलिखित वातो का पता लगता है—

१. यह कविता विशद, स्वच्छ एवं सुन्दर पद-योजना युक्त है,
२. पुस्तक के पढने से कविता की अबाधगति लक्षित होती है,
भाषा तो हिन्दी ही है किन्तु पजाबी मिश्रित है—विशेषत. सर्वनाम तथा कारक चिन्ह,
४. दूसरी प्रति मे इसकी भाषा को "रेखता" कहा गया है जिसका अभिप्राय खडी बोली के उर्दू रूप से है,
५. इस पुस्तक के आरम्भ और अत के दो दोहे शुद्ध व्रजभाषा मे हैं, बीच के पचीस छद पजाबी मिश्रित हैं।

काव्य के क्षेत्र मे मत्स्य के राजा भी पीछे नही रहे। अलवर के बख्तावरसिंह, भरतपुर के बलदेवसिंह तथा करौली के रतनपाल अच्छे कवि थे। बख्तावरसिंहजी ने "श्रीकृष्णलीला" लिखी है जिसमे भक्ति के साथ-साथ राधा-कृष्ण संबंधी शृगार, नखसिख सहित, पाया जाता है। कविता यथेष्ट अच्छी है और उस में प्रवाह भी है, पहला ही दोहा देखे—

विघन हरन मंगल करन दुरद बदन इकदंत,
परस धरन असरन सरन वुद्धि देव वरवंत।

राजा ने रचना करते समय भक्तिभाव की ओर विशेष ध्यान रखा है जैसा निम्न दोहे से विदित होता है—

राधाकृष्ण सुदृष्टि सौं मम उर भक्ति प्रकास,
गढ लीला वन दान की वर्णो कृष्ण विलास।

वास्तव मे यह लीला "श्रीकृष्ण दान-लीला" है केवल "श्रीकृष्ण लीला" नही जैसा हस्तलिखित प्रति में लिखा गया है।

पुस्तक मे लेखक के नाम आदि का भी उल्लेख है और साथ ही पुस्तक लिखने के उद्देश्य का भी।[1] पुस्तक के आरम्भ में कवि अपनी नम्रता और शील का परिचय देता है—

---

[1] कवि का नाम तथा निवास—

राधाकृष्ण उपास है बषतावर निज नाम,
नरू वस कछवाह कुल माचाडी शुभ ग्राम।

उपास्यदेव	— राधाकृष्ण
नाम	— बख्तावर
वश	— नरूवंश, कुल — कछवाह
ग्राम	— माचाडी

काव्य रीति समुझौं नही है मेरी मति मद,
मैं तौ कछु जानौं नही तुम जानौं गोविंद।

पुस्तक से ऐसा प्रतीत होता है कि राजा ने अपने दरबारी कवि या अन्य किसी श्रेष्ठ कवि की बात मानकर इस पुस्तक की रचना की—

कवि इंदर आज्ञा दई कीजै कृष्ण विलास,
आज्ञा बषत प्रमान करि लीनी निज उर धार।[1]

राधा के 'नषसिष' के अतर्गत कुछ छंद देखे। इन छदो मे स्वच्छ भाषा, स्वाभाविक अलकार तथा वर्णनशैली की उत्कृष्टता देखने योग्य है।[2]

चमकत चौंप चार चित चोषी।
दमकति दामिनि दुति दुइ पोषी॥
कानन कुडल कनक कलित है।
चारु तरोना चपल चलित है॥
जग मग जूडा जोति जुगत है।
परगट पाटी प्रेम पगति हैं॥
वैनी विमल पीठि पर राजै।
नागिन कदली पत्र विराजै॥
लोल कपोल गोल मन मोहैं।
ठोरी चिवुक चारु दुति सोहै॥
उरविच कुच सुच रचि रुच राजै।
कनक कद दुति देषत लाजै॥

वर्णन की दृष्टि से शृंगार के सभी उपादान प्रस्तुत किये गए हैं—

सखी वर्णन—

सग की सषी सवै सबै सिंगार साजि के।
अग ओप अद्भुतै अनग रंग राजिकै॥
मद मंद मानिनी गयद गौन गामिनी।
केलि कर्ण कामिनी चली मनौ सुदामिनी॥

वन, वृक्ष, पंछी आदि सभी उद्दीपन-कार्य मे सहायता प्रदान कर रहे हैं—

तमाल ताल आल और साल भाति भाति हैं।
फरास वास पास ओ पलास पाति पाति हैं॥

---

[1] संभव है "कवि इदर" भोगीलाल ही हो क्योंकि वे राजा के पास रहते थे और उनकी कविता भी उच्च कोटि की होती थी।

[2] ये छद "राधा कौ नषसिष शृंगार वर्णन" के अतर्गत हैं। इस वर्णन मे भी पूज्य भावना की रक्षा निरतर होती रही है, कही भी वासना का आभास नही मिलता। यह इस कवि की विशेषता है अन्यथा इस युग मे राधाकृष्ण के नाम पर निम्नकोटि की शृंगारी कविता मिलती है।

सिंगार हार झार तू तपादरा उदार है।
सुवर्ण जूथिका जुही जुही सुडार डार है।

बोलें कपोत केकी कुलग,
कोकिला कीर सारीं सुरंग।
चातक सु चाप चडूल चार,
खगराज ब्याल खजन अपार।

राधा के साथ कृष्ण का नखसिख भी दिया हुआ है—

वक्स्थल दृढता अति धारे। मरिणक लाल भृगु लता विहारे।।
भुज ध्वज गज सुडन परमानें। कोमल कर लषि कजन जानें।।
अग अग छवि वरणि न जाई। कोटिकाम दुति देखि लजाई।।

राधा के साथ उनकी सखिया, कृष्ण के साथ उनके सखा; वन का सुन्दर स्थान फिर राधा-कृष्ण का मिलन सुखदाई क्यो न होता !

गहवर वन[१] मोहन लसै तिह मग राधा आइ,
जुरी सु दृष्टिहि परसपर वषत कहत सिरनाइ।

[यहा भी लेखक का पूज्यभाव कथा के साथ है]

और फिर तो कृष्णराधा का वही चिरपरिचित प्रेममय झगड़ा—

हो तुम कौन गोप की जाई।
विन बूझै महवन मे आई।।

दान-लीला का वर्णन बहुत सुन्दरता के साथ किया गया है और कवि ने लिखा—

दान केलि गोविंद की वरनी वषत बनाइ।
वसौ सदा राधा सहित मो उर मे जदुराइ।।

इस लीला का फल भी लिखा है—

वद्रीनाथ दरस के कीने। जो फल सो यामे चित दीने।।
जो फल जगन्नाथ परसेतें। सो यह हरि लीला दरसे तें।।

कृष्ण और राधा के प्रेम-युक्त वार्तालाप का एक उदाहरण—

मोहन सुनौ कहै ब्रजनारी। हमरी वाट कहा अडवारी।।
तुम हो दान कौन सो चाहो। सो किनि परगट हमै लषाहो।।

"नए दान" की वाते सुनकर कृष्ण ने कहा—

नये कहैं हम कछु न लजावैं। नई नई कहो वात सुनावैं।।
नयो सघन वन यह निहारो। नई नई तुमसुनि चितधारो।।

---

[१] 'गहवर वन' व्रज-चौरासी-कोस मे आता है।

फूल पान फल नये नयें है। नये सुबादर झूमि रहे हैं॥
नई सु चपला चमकत दरसे। नई नई बूदन घन बरसै॥
नई सवानी पच्छी वोलें। नये नये बन करत किलोलें॥
नई नई तुम बनि ठनि आई। नई वेल तरवर पर छाई॥
नये सुलहगा चीर नये है। सब आभूषण नये नये है॥
नये सुफल कौं जो तुम धारो। नये नये चित नही विचारो॥
कहो नये फल तुमहि चषावै। जो कछु दान नयो सो पावें॥

अब राधा द्वारा की गई 'काले रंग' की बुराई देखे—

स्याम रंग कौ को पतिआवे। हिये हमारे कवहु न भावै॥
देखो स्याम सर्प हैं जेते। औगुण विषतें भरे है तेते॥
कारे काग करें विधि षोटे। स्याम रंग सब ही हैं छोटे॥

उत्तर मे श्याम अपने भोले भाले मुख से काले रंग की प्रशंसा करते है—

मुष पर स्याम दिठौना सोहै। स्याम चिवुक तिल अति मन मौहे॥
देहु दान क्यो रारि वढावो। ठाढी कवकी वचन बनाओ॥

इसके बाद मुरली से सब को मुग्ध कर लिया और उस बन मे गान, नृत्य, केलि, क्रीडा, रसरग की धूम मच गई. परिणाम यह हुआ कि—

मनमोहन मोही व्रज बामा,
सरस रग रीझी सुनि स्यामा।

और इस प्रकार शृंगार के सुष्ठु वातावरण मे दान देने और लेने के रूप मे लीला समाप्त होती है। इस पुस्तक का निर्माणकाल इस प्रकार है—

संवत युग४ सिववदन५ वसु८, ससि१ युत कातिकमास।
कृष्ण पक्ष षष्टी बुधे, पूरण दानविलास॥

कवि ने लीला रचने का स्थान भी बताया है—

जगर मगर सपति अगर सोहत नगर नगीच,
बषत रची लीला सु यह अलवर गढ के बीच।
मगल श्री गोविंद को वरन्यो बषत प्रवीन,
टरत अमगल नितहि नित मगल करन नवीन॥

पुस्तक के अंत मे लिखा है "इति श्री कछवाह कुल नरूका रावराजा वषतावरसिंह विरचित श्री राधाकृष्ण दानलीला वर्णन"

"पठनार्थ दिवाणजी रामलालजी"

इस पुस्तक मे निम्नाकित विशेषताए है—

१ कविता का स्तर उच्च कोटि का है।

२ पुस्तक मे व्रजभाषा के निखरे रूप का दर्शन होता है।

३. सपूर्ण वर्णन मे शृगार रस का प्रतिपादन बहुत ही सयत तथा पूज्य भाव से किया गया है।

४. शृगार के सभी उपकरण नायक, नायिका, नखसिख, क्रीडा, केलि, सखा, सखी, व्यग्य वचन आदि सुसगत रूप मे विद्यमान हैं।

५ संभव है किसी अच्छे कवि ने प्रचार की दृष्टि से यह पुस्तक राजा के नाम से चला दी हो क्योकि इतनी सुदर कविता का, साधारणतया, राजाओ की रचना मे मिलना सभव नही होता फिर भी इतना अवश्य मानना पडेगा कि यह सब बातें राजा की आज्ञा से ही हुई होगी, क्योकि यह तथा अन्य पुस्तके राजकीय पुस्तकालय मे ही बहुत दिनो तक रही थी।

बख्तावरसिहजी के पौत्र शिवदानसिहजी[1] के शिक्षणार्थ एक पुस्तक 'शिवदान-चन्द्रिका लिखी गई, जिसके रचयिता[2] कवि मान थे[3]। पुस्तक के उद्देश्य का वर्णन करते हुए कवि ने बताया कि शिवदानसिहजी को काव्य-ज्ञान कराना ही इस पुस्तक का उद्देश्य था। पुस्तक की भाषा सरल और निखरी हुई है—

उदित भान परताप प्रगट कूरम कुल मडन।
कीने अरि गण लुप्त तिमिर दुर्गन दल षडन॥

इस पुस्तक मे बरवा छद के माध्यम से कुछ बहुत ही सुन्दर प्रसग हैं। नायिका की शान देखिए—

अंग अचल मुष वचना अनसिक नैन,
पुतरी की गति भीनी कीनी मैन।
अंचल चष अनियारे चचल चाल,
कजन भजन खजन गजन बाल।

---

[1] शिवदानसिहजी का शासन काल सवत् १९१४ से १९३१ तक रहा।

[2] इस पुस्तक की रचना कवि मान ने की थी। "इति श्री मन्महाराज कवार श्री शिवदान-सिहजी हित कवि मान रचित शिवदान चन्द्रिका नाम ग्रथ समाप्त।"

[3] पुस्तक की समाप्ति का समय—

संवत नभ° शशि[1] निधि[9] मही[1] फागुन शुभ सुपक्ष।
दुतिया बासर भूमिसुत ग्रथ भयो परतक्ष॥

लिखने का आरभ—

समत विधु विधु[8] नभ° निधी[9] बहुरि गनपति[1] दत।
चैत बुधासित अष्टमी लिषी "मान" सुनिसत॥

राधे मोहन दोऊ साज सुकीन,
मुकट वेनु चूनरिया केलि नवीन।[1]

बरवै छंद मे मान द्वारा की गई यह रचना बहुत ही सुन्दर बन पडी है। यद्यपि बरवा छद अवधी भाषा मे प्रस्फुटित और विकसित होता है, किन्तु कवि मान ने वह चमत्कार व्रज भाषा मे कर दिखाया।

भरतपुर की खोज मे कुछ रचनाए 'चतुर' के नाम से मिलती है। चतुर शब्द का प्रयोग अनेक शब्दो के साथ हुआ है, जैसे चतुर मान, चतुर मोहन, चतुर नंद, चतुर पीव, चतुर सखी, चतुर सूर, चतुर छैल, चतुर रसिक आदि। कुछ लोगो का अनुमान है कि महाराज बलदेवसिंहजी स्वय ही इस नाम से कविता किया करते थे। कही-कही 'चतुर प्रिया' शब्द भी आता है और कहा जाता है कि इस नाम से महाराज बलदेवसिंहजी की रानी अमृतकौर कविता किया करती थी। इसमे कोई भी सदेह नही कि रानी अमृतकौर काव्य मे अभिरुचि रखती थी, और कई ग्रन्थ इनको समर्पित किए गए थे।

चतुर द्वारा लिखित **'तिलोचन लीला'** मे शृंगार सबधी कई सुन्दर प्रसग आते है।

अपने अनुसधान मे हमे इस पुस्तक की दो प्रतिया मिली, एक मे ४८ पत्र हैं और दूसरे मे ८७। दूसरी प्रति मे कुछ अन्य बाते भी सगृहीत हैं। दोनो प्रतिया किसी एक ही लिपिकार की लिखी प्रतीत होती हैं। इन दोनो प्रतियो को देखने से प्रतीत होता है कि चतुर ने अनेक स्थानो से सग्रह किया और अपनी कविता भी लिखी। तिलोचन लीला मे कोई विशेष शृंगारी प्रसग तो नही है फिर भी शृंगार रस के छीटे अवश्य ही हैं।

चतुर ने **'पद मगलाचरन बसत होरी'** नाम की शृंगार रस से पूर्ण एक अन्य पुस्तक लिखी है।

यह पुस्तक भरतपुर राज्य के इष्टदेव श्री लक्ष्मणजी से सम्बन्धित

---

[1] नायका की स्वाभाविक एवं सरल आकृति से सबधित ये बरवै बहुत उत्तम हैं।

है ।[1] पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार होता है—

'श्री गणेशाय नम । श्री सरस्वती नम । श्री गुरभ्यो नमः । श्री लक्ष्मणजी सहाय । अथ मगला चरण के पद लिष्यते । राग ईमन ताल धीमो तितालो ।[2]

इस पुस्तक मे इष्ट लक्ष्मणजी को ही माना गया है और उनके साथ ही तीनो भाइयो को भी महत्त्व प्रदान किया गया है । जैसे—

त्रिभुवन मोहन छवि धरे दसरथ्थ दुलारे ।
चारो चतुर के हिय ते मति हूजौ न्यारे ॥

साथ ही अनेक देवी देवताओ का वर्णन भी है । कृष्ण की होरी का एक पद देखिए—

राग बिलावल ताल जलद तितालो—

नंदलाल यह ठीठ कन्हैया पिचकीन रग मचावै ।
बीच गैल कै ठाढोई नाचै बुरी बुरी गारि सुनावै ॥
तू जु कहै चलि पनिया भरन को उतहै जान न पावै ।
चतुर छैल सैं छलबल करिकै बिनरग कोऊ न जावै ॥

पुस्तक के पदो मे अधिकाश पद हमे अयोध्या ही ले जाते है ।

राम और सीता—

राग अलहैया आडौ चौतालौ

भूलत रग हिडोरै दोउ मिल भूलत रग हिडोर ।
रघुकुल नन्दन और जनक नदनी चितवन मे चित चोर ॥

---

[1] लक्ष्मणजी भरतपुर के इष्ट थे । कवि ने अन्यत्र लिखा है ।
भजौ मन लक्ष्मण राजकुमार ।
सकल सुष्ष दायक भक्तन कौ अभिमत के दातार ॥
तेज प्रताप पुज एकहि जग प्रगट शेस अवतार ।
पाखडन के द्रुम समूह कौ दावानल सु पजार ॥
चारवाक सैलन फोरन कौ इन्द्र वज्र सम त्यार ।
बोध अधकार मेटन कौ सूरज उदै सुदार ॥
जैनी मत मतग मर्दिवे पचानन बल सार ।
मायावाद भुजग भगहित गरुड कहत निर्धार ॥
विश्व शिरोमणि श्री रघुवर के जय की ध्वजा प्रकार ।
सरनागत के पाप पुंज मेटन को गंगाधार ॥
असे प्रभु कौ सेवन सर्वत्र और वृथा व्योहार ।
चित्त लगाय चतुर ताही तें तरि भव पारावार ॥

[2] यह स्पष्ट ही है कि 'चतुर' संगीत के मर्मज्ञ थे ।

जनकिसुता कौ रूप निरषि कै आनद भरि झकझोरि।
चतुर सखी महाराज रिझावै वूका उडति भरि कोरि॥

अब 'लछमन छैल' देखिए[1]—

लछमन छैल फाग के माते झूलत रंग हिडोरै प्यारी।
सरदचद मैं कनकलता[2] मिलि मुनि जति के चित चोरौं॥
रग के से भीने झुकि झुकि मैंटे झोटन मे झकझौरै प्यारी।
चतुर सखी आनद रग भरि कै राजिंद पै घन तोरै॥

लक्ष्मण को ऐसे रूप मे देखना हिन्दी साहित्य मे एक विलक्षण बात है। साकेत मे श्री मैथिलीशरण द्वारा चित्रित लक्ष्मणजी चतुर के लछमन छैल से पीछे ही पड जाते है। एक बात और है। गुप्तजी के लक्ष्मण आधुनिकता लिए हुए है और वातो का जमा खर्च बड़े करीने से करते हैं। उनकी पत्नी उर्मिला भी इस आधुनिकता मे किसी भी प्रकार अपने पति से कम नहीं है। चतुरजी के लक्ष्मण और उर्मिला अपेक्षाकृत प्राचीनता लिए हुए हैं लेकिन केलि-क्रीडा मे थोडे आगे बढे हुए है। झूले का प्रसग अभी-अभी देखा ही है। उन दिनो लक्ष्मणजी का एक भक्त और त्यागी राजकुमार के रूप मे चित्रित किया जाता था, होरी और शृ गार से उनका क्या सरोकार, लेकिन चतुरजी ने अपनी होली के 'हुरगे' मे उनको भी ले लिया है। वे ही नही, इस 'हुडदग' से परम तपस्वी भगवान शकर भी नही बचने पाये। ये देखिए शकरजी भी होली खेल रहे हैं—

'शकर खेलत होरी। सग गिरिराज किशोरी॥
जटा जूटि सिर उपर कसिकै मुडमाल दह तोरी।
डमरु त्रिसूल डार दोऊ करतै लै पिचकारि सजोरी॥
अविर भरलई निज झोरी मे शकर खेलत होरी।

वैसे लक्ष्मण के प्रति उनका भक्ति और श्रद्धा से युक्त पूज्य भाव है। 'भजो मन लक्ष्मण राजकुमार'—इसका एक अच्छा उदाहरण है। बहुत से अन्य स्थानो पर भी कवि ने इसी प्रकार लिखा है—

सुष की अवधि अवधि कौं वसिवौ।
सियवर लषन भरथ रिपुहन कौं नितही दरस दरसिवौ।
सरजू तट निकुज कुजनि कौ विमल विलास विलसिवौ॥[3]

---

[1] छैल के रूप मे लक्ष्मण का स्वरूप विशेष रूप से द्रष्टव्य है। लक्ष्मणजी की ऐसी झाकी वहुत ही कम मिलती है।

[2] सरदचद लक्ष्मण और कनकलता उर्मिला। झूले पर दोनो के मिलकर झूलने का दृश्य और झकझोरी देखने योग्य है।

[3] कवि हमे एकदम अयोध्यापुरी ले जाता है, जहां सरयू प्रवाहित हो रही है। व्रज मे इस प्रकार की भावना और दृश्य-चित्रण अपना विशेष महत्व रखते हैं।

लक्ष्मण और उर्मिला सबधी कुछ और पद—

अथ षसपाने के पद—

राग सारग ताल धीमो तितालौ

महल सरद दोउ मिलि बैठे षस के परदा लगाये री आली ।
लक्ष्मण छैल उर्मिला रानी सरजू तीर लुम्यायेरी आली ॥
मदनवान और फूल मोगरा पुसप गुलाब लगायेयेरी आली ।
चतुर सषी फूलन की सिज्या ओढत हैं सुख छायेरी आली ॥

लोकगीत के रूप मे एक और—लक्ष्मण के प्रति

दसरथ राजकुमार सावण लूम्यौ छै जी राज ।
थे कित लूमे राजदुलारे नाहि और ते काज ॥
घन जोवन के हो मतवारे हमैं प्रीति की लाज ।
चतुर पीव तुम हो निरमोही हमतै नाहिन काज ॥

'पद मगलाचरण वसत होरी' ग्रथ, पत्र सख्या २२८ के उपरान्त भी, अधूरा है, पता नही इस ग्रन्थ-रत्न मे और क्या-क्या लालित्य था। राम, लक्ष्मण और अजनिकुवर से सबधित एक विचित्र चित्र प्रदान करना इस पुस्तक की विशेषता है। राधा और कृष्ण सम्बन्धी पद भी इस पुस्तक मे हैं किन्तु बहुत कम, और अधिक होते भी तो कोई विशेष बात नही थी क्योकि राधा-कृष्ण का शृ गार तो उस समय की सर्वत्र प्रचलित पद्धति थी। लक्ष्मणजी का नाम नीचे लिखे कई कारणो से विशेष उल्लेखनीय है—

१ भरतपुर के महाराज वेकटेश लक्ष्मणजी के शिष्य थे।

२ भरतपुर मे लक्ष्मणजी के दो मदिर हैं. एक पुराना—श्री वेंकटेश लक्ष्मणजी का, और दूसरा—नया बाजार वाले लक्ष्मणजी का। साधारणरूप से लक्ष्मणजी के मदिर कम ही दिखाई देते हैं।

३ भरतपुर राज्य की पताका पर लिखा रहता है—

'श्री लक्ष्मणजी सहाय'

इस पुस्तक मे खडी बोली के भी पद हैं—

मोहि नाहक क्यो दे गाली।
स्यावासि स्याम मोहि गाली दे तू ताली देहै क्या यह हालि निकाली ॥
चटकै मटकै पटकै अतिही हटकै घूघटवाली।
चतुर कान तोसो जीते तोसी लाज सकुच सब डाली ॥

शृंगार रस की एक सुन्दर झाकी कवि भोलानाथ[1] द्वारा रचित 'लीला पच्चीसी' नामक पुस्तक मे मिलती है। इस पुस्तक मे पाच प्रसंग हैं और छंदों की संख्या १०७ है। पुस्तक के अन्त मे 'लीला प्रकास' नाम दिया हुआ है। दूसरे प्रसंग का एक उदाहरण—

कुजन मे द्रुम वेलि फूलि यें रहति सदा अति।
गुजत मजु मलिंद वृंद गति मद सदा गति ॥
तरनि तनूजा नीर तीर कल्लोल सुहाई।
नाचत मत्त मयूर हस वग सारस नाई ॥
वृंदावन सुखधाम प्रिया पीतम को छाजत।
जहा काम अभिराम वाम सग सदा विराजत ॥
समय होत रितुराज सरद की रैंनि सुहाई।
दपति जंह विहरंत काम की फिरत दुहाई ॥
किंसुक वकुल अनार आव द्रुम फूली वेली।
कुहू कुहू पिक पुज मजु गुजत अलि केली ॥

ऐसे सुन्दर समय मे जब प्रकृति अपने उद्दाम यौवन मे है

गये द्वारिका आय मिले कुरपेत हेत करि।
किये मनोरथ सफल सबन के सब विधि के हरि ॥[2]

तृतीय प्रसग मे—

उपरि गयो तव मान बालके हियतें त्यौं ही,
कही वड़े रिझवार न चहियत यह तौ त्यौं ही।
लगी घाय प्रिय हियें वेलि ज्यौं बाल विहसिकैं,
राधी गरैं लगाइ हाय कहि गाढे कसिकैं।
लषि लषि दृगन अघात मुदित मन होत दरस अति,
इक सिंघासन लसत दोऊ दपति अनन्य गति।

---

[1] भोलानाथ, महाराज सूरजमल के पुत्र नाहरसिंह के आश्रय मे रहते थे।

सूरज लौं परतछ अखिल भुव मडल लहियै।
सूरजमल्ल भुवाल अचल अचला मे कहियै ॥
नाहरसिंघ प्रसिद्ध पुत्र तिनकौ जगमाही।
नित कवि भोलानाथ वसत तिनकी हित छाही ॥
तिनकौ ही मत पाइ जथा मति लीला वरनी।
छूट जाय अयताप पढत औ सुनत सुकरनी ॥

[2] यह वृन्दावन की केलि-क्रीडा या 'महारास' नही है, प्रत्युत कुरुक्षेत्र मे पुनर्मिलन के अवसर पर कृष्ण का राधा आदि से मिलना है।

इस सग्रह मे कुछ हास्यमय लोकगीत भी है—

१ रसिया

अरे सुनिजारे बालम पीपर तरे की वतिया।
मैंने मगाये गिरी छुहारे लायौ प्यारौ मटर भुनाय।
पीपर ······
मैंने मगाये मथुरा के पेरा प्यारौ लायौ वीरी वधाय॥
पीपर······

२ मोती महल के वीच दरियाई कौ वगला।
राजा की वेटी ने वाग लगायौ देषन आया उजीर
अऐ तेरी सौं देखन आया उजीर।
राजा की वेटी ने महल चिनाया······
राजा की वेटी रसोई तपाई, जैमन ·····
राजा की वेटी ने सेज विछाई, पौढन ·····
रे दरियाई का बगला

३. अरे समलिया फेरी दे दे जाइ मैं न भई घर अपने।
घर के वलम कौ षाटी महेरी।
प्यारे तुमकू मेवा पकवाई ····[1]

वीरभद्र कृत 'फागु लीला' मे होरी के अवसर पर कृष्ण की एक सरस लीला का वर्णन मिलता है[2]। कृष्ण एक गोप का रूप बना कर उसके घर जा पहुँचे और उसकी अटारी मे सो गये। गोप को पहले से ही कुछ सदेह था अतएव इधर से जाते समय कह गया था कि उसकी अनुपस्थिति मे घर मे कोई व्यक्ति घुमने न पावे। गोप की मा ने जब कृष्ण को गोप के रूप मे घर आया हुआ देखा तो उसने समझा गोप आ गया और उसे अन्दर चला जाने दिया। जव थोडे समय वाद असली गोप आया तो मां ने दरवाजा नही खोला क्योकि वह समझती थी कि उसका वेटा तो अटारी में सो रहा है यह दूसरा व्यक्ति छलिया कृष्ण ही होगा। असली गोप के वहुत कुछ कहने पर भी दरवाजा नही खोला गया,

---

[1] कवि ने इनका सग्रह होरी के अतर्गत किया है। इस सग्रह में वारहमासा भी है और इस सपूर्ण सग्रह का उद्देश्य भी निम्न दोहे से स्पष्ट है—

फच्ची दैनि दक्षिणा ही आगे तें हमेस की जो,
माजी श्री अमृत कौरि पक्की कर दीनी सो।

यह संग्रह सवत १८६० के लगभग का मालूम होता हैं। इसमे मीरा और सूर के पद भी मिल्ते हैं, किन्तु जिन पदो का उल्लेख यहा किया गया है वे निश्चय ही भरतपुर के कवियो द्वारा रचित हैं, क्योकि लक्ष्मण का यह रूप अन्यत्र सभव नहीं।

[2] यह प्रति महारानी अमृतकौर के पठनार्थ लिखी गई थी। पुस्तक के अंत मे लिखा है—

विचारा रात भर बाहर ही पड़ा रहा। अन्त मे जब सुबह हुआ तो सारा भेद खुला। वीरभद्र की फागुलीला मे माता-पुत्र की लडाई देखिए—

पूत कहै सुनि माता बौरी।
लाग्यो भूतक परी ठगौरी॥

किन्तु मा अपने असली बेटे को पहचानने मे अब भी भूल कर रही है—

मात पूत मिलि करे लराई।
करि गयो कान्ह महा ठगिहाई॥

असली बात थी—

तै मइया मेरो घर खोयौ।
आइक कान्ह अटारी सोयौ॥

इस प्रकार कृष्ण गोपियों तथा ब्रज वालाओ को 'तका' करते थे। वीरभद्र भी उस सामान्य प्रवृत्ति से नही बच सके जिसके अनुसार कृष्ण का चित्रण एक कामुक व्यक्ति के रूप मे किया गया है—

औरे एक तकी वृज वाला,
ता पर आसिक नद के लाला॥
ताहू की हरि सू रति गाढी,
ह्वै न सकति आगन मे ठाढी।
महा बली पति को डर भारी,
मिल न सकत पीतम सौं प्यारी॥

किन्तु थोडे ही दिनो बाद 'आइ बन्यौ होरी कौ औसर' और उसके पश्चात् कृष्ण का ऐसा ही एक अन्य छलियापन दिखाया गया है।

मत्स्य प्रदेश मे इस प्रकार की कृष्ण सम्बन्धी लीलाएँ बहुत कम मिलती हैं, प्राय. पूज्य भाव की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। किन्तु यह स्वीकार करना पडेगा कि राजघरानो तक मे इस प्रकार का साहित्य 'कृष्ण लीला' के नाम से प्रवेश पा जाता था और गोवर्धन के पंडे तथा पुजारियोका इसमें हाथ रहता था। एक बात पढ कर बहुत कुछ समाधान हो जाता है कि कृष्ण तो उस समय केवल बालक थे और 'आसिक' जसे शब्द किसी अन्य अर्थ मे ही लिए जावेगे। फागुलीला मे ही लिखा है—

"इति श्री फागुलीला सम्पूर्ण समाप्तमती माह सुदी १३ गुरुवार सवत् १८८७। पठनार्थ श्री श्री श्री मैयाजी श्री यमृतकौरि जी योग्य"

चतुर्थ प्रसग मे 'रूप' देखिए

अमल कमल दल नैन वदन ससि दसन विसद अति ।
कुंडल कलित कपोल ललिततर कुतल हृत मति ॥
पीत वसन वनमाल गरे मोहत मराल गति ।
अतर नित चित वसति दृगनि ठानी वह मूरति ॥
ठाढे वोलति कान वैठि पोढे हू कान्हहि ।
आए आवहि कान्ह न आए क्योंकरि ध्यानहि ॥
चहुंधा चितवत कान्ह हसत वोलत कान्हहि कहि ।
तोहि कहा अलि भयो वानि तज यह किन सुधि गहि ॥
कैसे सुधि-सिप गहों अरी तू तो भई वौरी ।
कान्ह कान्ह फिरि कान्ह कान्ह कान्हैं मुष ढौरी ॥

अतिम प्रसंग मे

जमुना तीर तमाल माधुरी मिलत कदंवनि ।
सौरभ सुखद समीर भीर भौरन की अवनि ॥
सुधि कीजै किहि भाति साथ जे सुख हम लीने ।
कहो आजु महाराज कहा वे दिन परवीने ॥
सुधि कीनें सुधि जाति सबै सुधि समझहु हितकी ।
प्रभु सौं कछु न वसाइ विछोहौ करत न चितकी ॥

इस छोटी सी पुस्तक मे

१. सयोग तथा वियोग शृंगार के उभय पक्ष का उत्तम चित्रण है ।

२ कविता सरस और उच्च कोटि की है ।

३. स्थान-स्थान पर प्रकृति-वर्णन के सुन्दर प्रसग है ।

४. इस पुस्तक के लिखने की निश्चित तिथि तो नही मिलती, किंतु इसमे सन्देह नही कि इसका निर्माण महाराज सूरजमल के समय मे हुआ क्योकि इसमें उन्ही के राज का वर्णन है और उन्ही के पुत्र राजकुमार नाहरसिंह की आज्ञानुसार इसे लिखा गया था ।

भरतपुर मे वर्तमान किले के अन्दर एक मदिर है जो विहारीजी का मदिर कहा जाता है । यह मदिर किशोरी महल के पास ही है । यहाँ के एक महन्त 'व्रज-दूलह' नाम से कविता करते थे । इनका समय भी बलवत काल ही है । इन्होने स्पष्ट लिखा है—

माजी श्री अमृत कौरि भूप वलवत जू की,
सदा राम रामानुज रक्षा करिव करें ।

यह पुस्तक प्रचलित राग-रागनियो मे लिखी गई है। राग ईमन देखिए—

होरी होरी कहा कहँती डोलै।
अगवारै पिछवार गिरारै मनमानी तू गारी वोलै ॥
छीनि लऊ तेरी डफै मुरलिया इतनी ठसक मगरूरीखोलै।
ब्रजदूलह जू छैल अनोखो हमि हसि कै तू बतिया छोलै ॥

(कितनी तेज है यह नायिका !)

एक दूसरी नायिका देखिए जो कृष्ण के कारण सहमी हुई है—'लरकैया' जो है—

पिचकारी न मारौ कन्हैया मेरी चूनरि भीजै दईया।
अब ही मोल लई मनमोहन सास लड़ै घर सैया ॥
नगर चवाव करै सव नारी तेरे परौ मैं पैया।
ब्रजदूलह होरी खेल न जानौ कहा करौ लरकैया ॥

दो विभिन्न नायिकाओ का चित्र हमारे सामने है। इनमे से एक उद्धत, जोरदार और हाथापाई करने वाली है, और दूसरी लड़कनी, सहमी तथा होरी खेलने की रीति से अनभिज्ञ है।

इस पुस्तक मे अन्य कवियो के छद भी मिलते हैं। 'धीरज' का एक छंद देखिए—

गोकुल गुजरेटी रूप लपेटी जोवन गर्भ-गरूर भरी।
ससिवदनी मृगनैनी मुदर हार हमेल जराव जरी ॥
रंग रगीली अरु चटकीली मुलकत अगिया अति सुथरी।
अलक लडी अलवेली धीरज चाल चलत गज मत्तवरी ॥

इन महाशय ने भी राम और लक्ष्मण को होली के छैलो मे दाखिल कर दिया है।

होरी षेलै जी राम जनकपुर मै।
राम लषन भरतानुज न्यारौ अद्‌भुत वीर लसत तन मैं।
भरि भरि रग अवधि कौ राजा फेंकत है चलि चलि मुख मैं ॥

और यह है उर्मिला, माडवी और श्रुतिकीर्ति की होली।

होरी षेलत श्री राम अनुज नारी।
उर्मिला माडवी श्रुतिकीर्ति सव ठाडी है जूथ जूथ न्यारी।
वहु भूषण शुभ चीर लसै उर नक वेसरि मुख छवि भारी ॥
महल महल मिलि नारी सुलक्षणि बोलत हैं शुभ वारि वारी।
फिरि फिरि नारि धारि तन मारे हरषत हैं सीता प्यारी ॥

लाड लडैतो कुवर कन्हैया। पेलत आगन देपति मैया ॥
बदन चद चचल अति नैना। अलक पडे मधुरे कजवैना ॥
नासा को मोती अति सोहे। कानन कल हुलरी मन मोहै ॥
लटक रही लट घूघरवारी। चपल भौंह पर बेंदी कारी ॥

इससे प्रगट होता है कि कृष्ण तो आगन मे खेलने वाले वालक थे जिन्हें देख कर उनकी माता प्रसन्न होती थी, 'नायक' नही थे जो वासना से प्रेरित होकर इधर उधर फिरते हो। अस्तु

हिन्दी मे अनेक रास पंचाध्यायिया प्रसिद्ध हैं। १. नददास, २. रहीम, ३ नवलसिह, ४ व्यास आदि की 'रास पचाध्यायी' मिल चुकी हैं। नंददास की रास पंचाध्यायी तो हिन्दी साहित्य मे एक अनुपम कृति है जिसने अपनी काव्य छटा से साहित्य प्रेमियो को प्रभावित किया और अनेक कवियो को इसो प्रकार का काव्य प्रस्तुत करने को प्रोत्साहित किया। मत्स्य प्रदेश की खोज में हमे भी एक रास पचाध्यायी प्राप्त हुई जिसके रचयिता हैं 'वटुनाथ'। इनकी 'रास पचाध्यायी' मे प्रकृति का वहुत ही उत्कृष्ट वर्णन है।[1] यह वर्णन आलस्वन के रूप मे है और इसके द्वारा एक सुन्दर वातावरण उपस्थित करके कृष्ण के महारास का वर्णन किया गया है जो पुस्तक का प्रधान विषय है।

---

[1] कुछ उदाहरण देखिये

जहा वकुल कुज वंजुल निकुंज। सरसै सुहावनी पुज पुज ॥
मकरद मोद आमोद नीक। छकि मज गुजरत चंचरीक ॥
जगमगै मालती लता लूमि। परमल अनूप महकत भूमि ॥
छुटि नीर तरणिजा तीर तीर। चहुं चलै तीन विधि को समीर ॥

वन करत सुगधित गधवाह। चलि मद मंद हिय भरि उछाह ॥
कूजै अलिद के वृंद गोद। महकत केत की वधु मोद ॥
जहा जुही मोंगरा रैनगंघ। करि है अलिद भरि मोद गध ॥
सरसत सेवती थल सरोज। वरसन केतकी काम चोज ॥
जलजीव फिरै चहु नीर नीर। विहरै अनेक पग तीर तीर ॥
नहीं जिन्हैं प्रलै की नैक जाच। इक कही व्यास सुत साच माच ॥
सुखरूप मुक्ति की और जुक्ति। सव दरस परस तै करैं मुक्ति ॥
इमि रूप महावन चहू ओर। अरु वीस जोजने भू सुठौर ॥

कविता की दृष्टि से रास पचाध्यायी एक सुन्दर ग्रथ है और वटुनाथ के इस ग्रंथ मे स्थान-स्थान पर नददास की सी काव्य-प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है। यह ठीक है कि नददास की उडान और काव्य-चमत्कार मे वटुनाथ सर्वत्र इतने ऊँचे नही उठ सके हैं, फिर भी इनकी कविता उत्तम कोटि की है और प्रकृति-वर्णन इसकी विशेषता है। इसका निर्माणकाल कवि द्वारा सवत् १८९६ दिया हुआ है—

वसु दस षट श्री नद हू संवत लेउ विचारि,
ताके आश्विन मास मे पूरि करी गिरधारि।

इस पुस्तक मे १२७ पत्र हैं, और ग्रथ बहुत सुन्दरता के साथ लिखा गया है। इसमे अनेक राग-रागनिया भी दी गई है और उनके भेद बताए गए हैं। वटुनाथ के आश्रयदाता भरतपुर के महाराज बलवतसिंहजी थे, जैसा पु तक के अन्त मे दी गई इन पक्तियो से स्पष्ट है—

'इति श्री वटुनाथेन कृता श्री रसिक मुकुटमणि नर्पेद्र व्रजेद्र श्री बलवंतसिंह नृपति चक्र चूडामणे हिताय पचाध्यायो सपूर्णम्। मीती आश्वनि'

आलबन की प्रकृति फिर उद्दीपन बन जाती है—

ताही छिन उडराज उदित नभ ऊचौ आयौ,
सुषदाई कर उदय राग प्राचीदिश छायौ।
रसक गनन के ताप हरन मनु व्योम सरोरुह,
प्रकट भयौ कमनीय महामगल मूरति उह॥
जिमि कामी जन काम बस प्यारी मुख मडल भलै,
कुकम सौ बहु दिननि मैं घर लहि आतप कौं दलै॥

चन्द्रमा के उदय होते ही और मुरली का शब्द सुन कर—

काम विवर्द्धन उह पुनिगान। भई विवस व्रजतिय सुनि कान॥
सदन सदन तें सब ही निकसी। घन घन चद कलित जनु विकसी॥
वेग चलति मग कुडल कीये। जहा प्यारी ठाडी मन दीये॥
छेकि सबनि कौं पहले चली। ता बसी धुनि मग मे रली॥
चदमुखी इदीवरनैनी। भूपन भूषित वर गजगैनी॥
मनि मजीर मधुर धुनि श्रैनी। नील वसन फूलन की वैनी॥

रूप का ऐसा आभास और फिर कृष्ण का सामीप्य। किन्तु कृष्ण तो छुप जाते हैं—

दुरति हरि कुज द्रुत वजुल निकर,
हुँ गई विरह बस विकल बामा।

सघन वन दुरौं जिन जूथपति होत जिमि,
करनिगन तपित अतिचित विहाला।

एक और भी रूप की प्रतिमा देखें—

कुंचित केम मुपै मकराकृत कुडल लोल कपोल प्रकासी,
मंद हमी अवलोकनि त्यौं अधरामृत चारु विलोकि हुलासी।
देत अभय भुजदड रमातिय रजन जोति उरस्थल भासी,
चदन पौरि अमदित वेंद मवदन देषत होत है दासी॥

गोपिया जिस अवस्था मे थी उसी मे कृष्ण के पास पहुंच कर रासलीला मे सलग्न हो गईं। प्रचलित प्रथा के अनुमार इममे भी पांच अध्याय हैं और उनमे भगवान कृष्ण के महारास का हृदयग्राही वर्णन है।

वियोग शृंगार-वर्णन मे गोपियो का विरह ही काव्य की सामग्री वनता रहा है। हमारी खोज मे भी कई भ्रमर-गीत तथा गोपी-विरह निकले। कुछ 'खर्रे' भी निकले जो लम्बे-लम्बे कागजो पर स्वतत्र रूप मे लिखे हुए हैं। राम कवि[१] की लिखी **विरह पचीसी** एक खर्रे पर मिली।
कवि ने लिखा है 'या तें कछु गोपी विरह कहू सुनो चित लाय'।

एक कवित्त देखें—

स्याम के सखा कूं आयौ जानि द्विज गाम कहैं
धाम धाम वास इति वचन सुनाय कैं।
जवते गये हैं व्रज छाडि व्रजराज पूरी,
तव तैं दई है आज पवरि पठाय कैं॥
माय तैं छिपाय लाय लाय जमुना कैं तीर,
मगल गवाय वीर सुवुध वुलाय कैं।

---

[१] राम का पूरा नाम रामलाल था। इनके द्वारा कुछ लक्षण ग्रन्थो की रचना भी हुई। अधिक वर्णन अन्यत्र देखा जा सकता है।

एक राम कवि और थे जिनका पूरा नाम रामवक्श था। डीग-निवासी वयोवृद्ध पडित जगन्नाथजी ने उनके पास सगहीत हस्तलिखित पुस्तकों का अवलोकन करते समय पता लगा कि रामवक्शजी भी 'द्विजराम' उपनाम से कविता करते थे। ये जसवतसिंहजी के समय मे थे और वाऊ गुलावसिंहजी इनके आश्रयदाता थे। इनका एक आशीर्वादात्मक छद उक्त पडितजी ने एक स्थान पर लिखा दिखाया था—

प्रातहि सौं उठि भानु मनायकें देत है आसिस यो द्विजरामहि।
दपति जासु लहैं मन मोद विनोद को पाय लिखे तह नामहि॥
वाचहु नाहि फिरौ विपरीत सो जो कछु शब्द कढै अभिरामहि।
होय प्रसन्न निवास करो सोई वाऊ गुलाव जू के निज धामहि॥

कितिया न जानौ लाल वतिया लिषी है कहा ,
छतिया जुडावौ यहि पतिया बचाई कैं ॥

रसआनद ने एक पुस्तक **'रसानन्दघन'** लिखी है । यह पुस्तक बडी नही है । इसमे केवल २० पत्र हैं और अधूरी-सी मालूम होती है, क्योकि लिखित अश के पश्चात् तीन चार पत्र सादा छोड कर एक दूसरी पुस्तक लिखी गई है । सभव है लिपिकार ने इन तीन चार पत्रो को पुस्तक के पूरो करने के लिए छोड़ा हो, और शायद यह पुस्तक पूरी लिखी भी जाती किन्तु एक बार का छोडा हुआ काम कठिनाई से ही पूरा होता है । यह भी हो सकता है कि दूसरी पुस्तक तैयार करने से पहले ३, ४ पत्र छोड दिए गए, किन्तु पुस्तक अपूर्ण है । रसानदघन मे उच्च कोटि की कविता मिलती है । पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार होता है—

'श्री गणेशाय नम अथ रस आनन्दघन लिष्यते—

छप्पे– माथे मुकुट शिषड तिलक मडित गोरोचन ।
दर्पित कोटि कर्दप्पि दर्प मद घूमित लोचन ॥
कुडल मकराकार डुलत झलकलत कपोलन ।
तडिदिव कटि पट पीत मत्त इमि मल्हकत डोलन ॥
मुष कंज मजु मुरली धुनित श्रवत सरस आनद श्रवन ।
जै गोकुलेश मृदुवेश जै गोपमेश गोपी रवन ॥'[1]

पुस्तक से संगृहीत दो कवित्त—

१. चाह भरी चचल चितौनि चष चचलन ,
चचला तैं चचल मरोर मोई हित साज ।
पीत पट साजै नग भूषण विराजै पग ,
नूपुर समाजै सुनि लाजै कोटि रतराज ॥
हीरा की सी पानि मुसिकानि मे रदन आभा ,
चीरा चारु चद्रका चटक चित चुभी आज ।
जाके भले भाग भयौ आनद रसालु मंजु ,
मूरति रसाल वाके लाल की लषै मै आज ॥
२. केलि थली कुज फूली फली हरी भरी रहौ ,
तापै अलि पुजनि की गुज उभरी रहौ ।

---

[1] रसानंद को राधा का इष्ट था ।

रस आनद की सपदा जियकी जीमनि मूरि ।
रोम रोम राधा रमी वसी धुनि गुन पूरि ॥
राधा रास विलासनी राधा रस निधि-पुज ।
राधा सुमन विकासिनी हित के नैंननिकुज ॥

वृंदारकवृंद परिचारक समेत हेत,
कुसल मनावैं ते वे कुसल घरी रहौ ।।
घटिहाई सौतिन के कठ दुख गाठि छुहौ,
अघ की उघटि आई दीढि पर जी रहौ ।
नैंन रस आनद के भीने रहौ लाडिले के,
माग लाडिली की अनुराग मे भरी रहौ ।।

कृष्ण और राधिका की यह प्रेम-भरी जोडी बहुत ही सयत रूप मे प्रस्तुत की गई है । 'रसआनन्दघन' का यह 'प्रथम रहस्य' है । इस पुस्तक को रसानद ने स्वयं ही सग्रह ग्रथ बताया है—'रस आनन्दघन सग्रह' ।

खोज मे कुछ लोक-गीत भी पाये गये । 'व्रज का रसिया' यथेष्ट मात्रा मे प्रचलित है और व्रज भूमि मे आज भी रसियो की गूंज है । उत्सवो के अवसर पर, मेलो के समय, गोवर्द्धन की परिक्रमा करते हुए रसिक लोग अनेक प्रकार के रसिये गाते सुने जाते है । इनमे शृगार की छटा देखने को मिलती है, किन्तु इन रसियो का जो रूप हमे मिल सका वह सवत् १९५० के पीछे का है । अत. उन्हें इस प्रवध मे सम्मिलित नही किया जा सकता । अलवर के महाराज जयसिह तथा भरतपुर के महाराज कृष्णसिह ने इस ओर अनेक प्रयास किए । अलवर के महाराज जयसिहजी देव के निजी पुस्तकालय मे गीतो के सग्रह की दो तीन फाइले मुझे देखने को मिली । चेष्टा इस बात की गई थी कि प्रात के सभी क्षेत्रो से गीतो का सग्रह किया जाय । स्थान-स्थान पर सग्रह कर्ता भेजे गए और प्रचलित गीतो को 'ग्रामीण गीत' के नाम से सग्रह किया गया । इस हस्तलिखित प्रति मे स्थानो तथा व्यक्तियो के नाम लिखे हैं । यथा—

'गीत मौजा धीरोडा कौम गूजर मीणा'

मीणा लोगो के गीत बहुत प्रसिद्ध है और 'पचवारा की मीणी'[1] नामक गीत

---

[1]पचवारा की मीणी नैंडा की हे मीणी ।
तोनो राजा जैंसिंघ जी वुलावेये ।।
म्हानैं काई फरमावो जी जैंसिघजी महाराज ।
थानैं महल दिखावा हे पचवारा की मीणी ।।
म्हारैं महल घणेरा जी जैंसिघ जी राज ।
थानैं वाग वतावा हे नैंडा की मीणी ।।
म्हारैं वाग घणेरा जी जैंसिघ जी राज ।
था नैं गहणू घडावा हे नैंडा की मीणी ।।
म्हांरे गहणू घड़ेरो जी जैंसिघ जी राज ।

तो गावो मे बहुत गाया जाता रहा है। इन गीतो मे स्थानीय भाषा का प्रयोग हुआ है। मत्स्य प्रदेश के शृंगार-साहित्य को हिन्दी के अन्य शृगारी-साहित्य से तुलना करने पर बहुत कुछ विभिन्नता दिखाई देती है। उनमे से कुछ बातों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

१. मत्स्य मे राधाकृष्ण के शृगार की ओर कवियो का हृदय पूज्य-भावनायुक्त रहा। यहाँ के साहित्य मे वासनामय काव्य का प्रायः अभाव है।

२. राधाकृष्ण के साथ-साथ राम और सीता तथा लक्ष्मण और उर्मिला के शृ गार सबधी प्रसग भी मिलते है। यहाँ तक कि शिवजी की होली भी लिखी गई है, परन्तु अश्लील वर्णनो की एकदम कमी है।

३ कवित्त, सवैयो के साथ-साथ इस प्रदेश में पदो का प्रयोग भी बहुतायत से हुआ है और उनके साथ राग, ताल आदि के नाम विधि-पूर्वक दिए गए हैं। इन पदो का निर्माण, संभवतः होली के अवसर पर, गायन की दृष्टि से किया गया हो।

४. अपने इष्ट या पूज्य देवो के शृ गार-वर्णन मे राजा तथा उनके आश्रित कवि दोनो ने ही भाग लिया।

५. मत्स्य के शृ गारसाहित्य मे सयोग तथा वियोग दोनो का चित्रण किया गया है।

६. सात्विक तथा शुद्ध शृ गार की दृष्टि से प्रेम का निरूपण भी किया गया और उसके महत्त्व को समझाने की चेष्टा की गई। रीतिकालीन शृगारी कवियो की तरह अश्लील शृंगार की ओर यहाँ के कवियो का ध्यान नही गया।

हमारी खोज में जो शृंगार-काव्य मिला वह तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

१. रीति-काव्यो मे उदाहरण देते समय

१. नायक-नायिका,

२. नखसिख,

३. शृगार-निरूपण, आदि के रूप मे उपलब्ध साहित्य। इस प्रकार के साहित्य से हिन्दी का भडार भरा पड़ा है।

२. राम, कृष्ण आदि की लीलाओ का भक्ति-भाव से प्रेरित होकर वर्णन करना। कुछ ऐसे प्रसग भी आ गये हैं जहाँ शृंगार का वर्णन करना पडा है किन्तु इन प्रसगो मे भी शृगार का रूप बहुत ही दबा हुआ है और पूज्य भाव को ठेस नही लगने पाई है। भ्रमर गीत मे वर्णित वियोग-शृगार को इसी के अंतर्गत लिया जा सकता है और साथ ही रास पचाध्यायी का सयोग शृगार भी।

३. 'होरी' आदि उत्सवो के अवसर पर गाने योग्य प्रसग। भारतवर्ष में होरी एक अद्भुत त्यौहार है जब शृगार का कुछ वर्णन और साथ ही कुछ प्रदर्शन आवश्यक सा हो जाता है। ब्रज की होली[1] वैसे भी प्रसिद्ध है: मन्दिर तथा महल सभी जगह होली चलती है।



[1] होली देखने के इच्छुक बरसाने पधारें और वहां नंदगांव तथा बरसाने की होली का आनद लें। उसकी याद आपको जीवन भर बनी रहेगी। ब्रज की स्त्रियो का वह पराक्रम देख कर आप चकित रह जायेंगे!

अध्याय ४

भक्ति-काव्य

व्रजमडल भगवान कृष्ण की लीलाभूमि है जहा स्थान स्थान पर भगवान कृष्ण के मन्दिर मिलेगे। मत्स्य प्रान्त मे भी कृष्ण की भक्ति का बहुत प्रचार रहा है। किन्तु इस प्रदेश मे राम की भक्ति भी कुछ कम नही रही। अलवर का तो राजघराना ही सूर्यवशी है, और अलवर का इतिहास लिखने वाले कुछ विद्वानो ने भगवान सूर्य से इस वश की परम्परा सिद्ध करने की चेष्टा की है।[1] मत्स्य प्रान्त मे भगवान राम के अनेक मदिर हैं। भरतपुर नगर मे लक्ष्मणजी के दो प्रसिद्ध मन्दिर है। विहारीजी, जगन्नाथजी, हनुमानजी, देवी, भगवान शकर आदि आदि के मदिर भी वरावर पाये जाते है। गगा की पूजा और भक्ति मत्स्य के सभी राज्यो मे रही। और आज भी राजस्थान का जन समाज गगा-स्नान के पुण्य को सर्वोपरि मानता है। भरतपुर मे गिरि गोवर्धन के प्रति वहुत श्रद्धा है। भरतपुर राजघराने के तो गिरिराज महाराज इष्ट देव भी वने, और यहा नियमपूर्वक गिरिराज महाराज की पूजा की जाती है। अनेक अवसरो पर भरतपुर के राजाओ द्वारा जीर्णोद्धार आदि का कार्य कराया गया। इस सम्वन्ध मे 'गिरिवर विलास'[2] नाम की पुस्तक वहुत महत्त्वपूर्ण है। मन्दिरो मे नियमित रूप से श्रावण के महीने मे राम लीलाएँ हुआ करती थी। वडे मन्दिरो मे श्रावण की तृतीया से रक्षाबधन तक नित्य ही कृष्ण की लीला होती थी। यह प्रथा अव लुप्त सी होती जा रही है। इसी प्रकार रामलीला भी प्रति वर्ष हुआ करती थी। भरतपुर की रामलीला दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। अनेक वर्षो तक वन्द रहने के वाद अभी कुछ ही वर्ष पूर्व उसे पुन उसी पद्धति पर जारी किया है, किन्तु आज न उसका इतना समारोह देख पडता है और न इतनी श्रद्धा हो। समय-परिवर्तन के साथ साथ मनुष्य की धार्मिक भावनाओ मे भी परिवर्तन हुआ। वुद्धिवाद ने श्रद्धा मे कमी की और आज की भीषण आर्थिक तथा राजनैतिक समस्याएँ भी पुरानी सस्कारमाला को तेजी से वदल रही हैं। किसी गोवर्द्धन जाने वाले के ये शब्द कितने उत्साह से सुनाई पडते है—

> 'नाय मानैं मेरी मनुआ, मैं तो गोवरधन कू जाऊ मेरी वीर।
> सात कोस की दे परकम्मा, मानसी गगा न्हाऊ मेरी वीर।।'

---

१ पिनाकीलाल जोशी द्वारा लिखित 'अलवर का इतिहास' (हस्तलिखित)

२ विशेष विवरण अन्यत्र देखें।

भरतपुर और अलवर के बहुत से भक्त तो गोवर्धन की यात्रा पैदल ही करते हैं, और सप्तकोशी परिक्रमा समाप्त कर के पैदल ही घर लौट आते हैं। गले मे पीले सीको की बहुत सी कठिया पहने, अलगोजा बजाते व्यक्ति जब वापिस आते दिखाई देते हैं तो इन 'रमियो' को देख कर व्रज के पुराने दिन याद आ जाते हैं। गोवर्धन मे मुखारविंद पर पूजन की बहुतसी सामग्री चढती है। कोई भक्त दूध की धारा से सातो कोस की परिक्रमा देते है। कोई छप्पन भोग लगवाते हैं जिसमे काफी द्रव्य लगता है। गिरिराज की सप्तकोशी की परिक्रमा के साथ मानसी गगा की भी परिक्रमा दी जाती है। मानसी गगा का स्नान गगा-स्नान के तुल्य गिना जाता है। आज भी मानसी गगा का दीपदान बहुत प्रसिद्ध है। भरतपुर के राजा तो गिरिराज महाराज के बडे भक्त रहे हैं और आज तक भरतपुर के महाराज उसी श्रद्धा और भक्ति के साथ पूजन तथा परिक्रमा करते हैं। अनेक भक्त गिरिराज की 'दडोती' (सातो कोस की ढोक देते हुये परिक्रमा) करते हैं। कुछ ही दिन पहले भरतपुर महाराज ने दडोती लगाई थी। गोवर्धन की मान्यता दूर-दूर तक है और मत्स्य तो इससे काफी प्रभावित रहा है। गोवर्धन के पडे आज भी देश-परदेश जा कर अपने भक्तो से दक्षिणा-भेट प्राप्त करते है। इन लोगो के द्वारा व्रज की अनेक लीलाएँ गा गा कर सुनाई जाती हैं। पहले राज-घरानो तक मे इन लोगो की पहुँच थी और राजा तथा रानिया इनके प्रति भक्ति-भाव रखते थे। भरतपुर की रानी अमृतकौरजी को कृष्ण लीलाओ की अनेक पुस्तकें समर्पित की गईं थी।

गोवर्धन मे हरदेवजी का एक प्राचीन मन्दिर है और भरतपुर मे भी हर-देवजी का एक मन्दिर है जिसके पुजारी अपने को गुसाई कहते हैं। मैंने यहां के पुराने पत्र आदि देखे जिनसे विदित होता है कि तत्कालीन महाराज ने इन लोगो को गोवर्धन से बडे आदर-सत्कार के साथ बुलाया था। अनेक स्थानो पर 'हरदेवजी सहाय' लिखा मिलता है। कई कवियो ने भी ऐसा लिखा है। वल्लभकुली गुसाई भी भरतपुर से बहुत सबधित रहे। किन्तु जिस समय का वर्णन यहा किया जा रहा है उन दिनो लोगो को राम और कृष्ण की भक्ति मे विश्वास था। रासलीला और रामलीला श्रद्धा के साथ देखे जाते थे। ('सरूपो' अभिनयकर्त्ताओ) के प्रति भक्ति-भावना देखी जाती थी।

देखते ही देखते लीलाएँ और रास कुछ विकृत हो चले। यह देखा जाने लगा कि पहले तो रास लीला होती थी जिसमे कृष्ण-राधा, उनकी दो सखिया (मुख्यत) 'ललिता' और 'विसाखा' रहती थी। 'सरूपो' की पूजा के उपरान्त कुछ नृत्य, रास आदि होता और इसके पश्चात् वही रास मडली नौटकी मे परिवर्तित हो

जाती थी। आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस लडके को कृष्ण बनाया जाता है उसे ही रानी अथवा अन्य सुन्दर स्त्री का पार्ट दिया जाता है और उसके गाने तथा भावभगी कामोत्तेजक होने के साथ-साथ अश्लील होते हैं। अनेक प्रकार के बेढंगे प्रदर्शन उसी रग-मच पर किए जाते है जहा दस मिनट पहले कृष्ण की लीलाओ का प्रदर्शन हो रहा था। मन्दिरो मे अमरसिंह, नौटकी, तिरियाचरित्र, सियाहपोश न होकर कुछ भगवद्भक्ति सम्बन्धी कथाएँ ली जाती थी—जैसे ध्रुव लीला, प्रह्लाद, मोरध्वज, सुदामा आदि। मुझे याद है कि पहले रास और लीलाओ के कारण श्रावण के महीने मे नगर मे एक उल्लास सा छा जाता था और रक्षाबधन तक तथा उसके पश्चात् भी यत्र-तत्र रास होते रहते थे। उन दिनो आधी रात के बाद नगाडे की चोट सुन कर स्वत पता लग जाता था कि रास हो रहा है। इन रासो का रूप बहुत बिगड गया और बुरी तरह अश्लील गानो की भरमार होने लगी। अब यह प्रथा ही समाप्त होती जा रही है। सिनेमा के इस युग मे 'फ्री' होने पर भी रास कोई नही देखता। ब्रज के कुछ स्थानो—जैसे मथुरा, वृन्दावन मे अब भी रास-प्रणाली चल रही है। किन्तु मत्स्य प्रदेश मे यह प्रवृत्ति बहुत कम हो चली है।

मत्स्य प्रदेश मे गोवर्धन की भक्ति आज भी बहुत व्यापक है। गुरुपूर्णिमा के दिन 'मुड़ियापूनो' के नाम से गोवर्धन मे एक बहुत बडा मेला लगता है। वैसे परिक्रमा तो पूरे साल तक बराबर लगती ही रहती है। बीच मे कुछ समय के लिए भरतपुर के राजचिन्ह के नीचे 'श्री गोकुलेन्दुर्जयति' हो गया था। सेवर[1] में श्री ब्रजेन्द्रबिहारीजी का एक मन्दिर है। महाराजा जसवतसिंह ब्रजेन्द्र-बिहारीजी के दर्शन नित्य प्रति करते थे। कामा मे चन्द्रमाजी का मदिर और घाटा नामक स्थान मे गुसाईंयो के स्थान आज तक है। राम की भक्ति भी बहुत रही। भूतपूर्व अलवर नरेश ने अपने विजय मदिर में भगवान राम और सीता की अति आकर्षक मूर्तियो को प्रतिष्ठित कराया। 'अट्टा' नाम से राम का एक मन्दिर शहर मे भी है जिसकी बहुत प्रतिष्ठा है। भरतपुर के किले मे बिहारीजी का मन्दिर बैरागियो का बताया जाता है। कहा जाता है एक साधु की जटायें उसी स्थान पर झाडियो मे उलझ गई थी और भगवान ने प्रगट होकर स्वय ही जटाओ को छुडाया।[2] इसी स्थान पर बिहारीजी की प्रतिष्ठा की गई। इसके

[1] भरतपुर से चार मील पर एक कस्बा है जहा किसी समय भरतपुर-महाराज सेना सहित रहते थे।

[2] जटा छुडाते हुए भगवान और साधु की मूर्ति मन्दिर मे विराजमान है।

साथ ही मत्स्य प्रदेश मे कुछ पहुँचे हुए साधु और फकीर भी हुए जिनमे से एक लालदास का परिचय अन्यत्र कराया जा चुका है। चरनदासियो का प्रसग इसी अध्याय मे आगे आवेगा। राजाओ की वृत्ति साधु महात्माओ की सेवा करने की होती थी।

मत्स्य प्रदेश मे हमे भक्ति के कई रूप मिलते हैं—

१ **राम भक्ति**– अनेक कवियो ने राम की उपासना सबधी विविध छद और पद आदि लिखे है तथा उनके जीवन से सम्बन्धित कुछ घटनाओ को भी चित्रित किया है।

१ राम-करुण नाटक—लक्ष्मण-मूर्छा के अवसर पर।
२. हनुमान नाटक—सीता की खोज के प्रसग मे।
३. अहिरावण वध कथा—राम-लक्ष्मण-हरण।
४ जानकी मगल—सीता और राम का विवाह।
५ रामायण—बलदेव की 'विचित्र रामायण'।

२ **कृष्ण भक्ति**– कृष्ण की अनेक लीलाओ के सरस वर्णन प्राप्त होते हैं। दान-लीला, फागुलीला, नागलीला, माखनचोरी लीला, राधा-मंगल आदि अनेक सुन्दर प्रसग हैं। इनके अतिरिक्त भ्रमर-गीत परम्परा का काव्य भी प्राप्त होता है, जिसमे निर्गुण-सगुण का व्यापार उसी खूबी के साथ निभाया गया है जैसा उस प्रकार के अन्य साहित्य मे। सगुण-भक्ति से सम्बन्धित कुछ और भी साहित्य है।

१. शिव सम्बन्धी—पार्वती मंगल, शिव-स्तुति, महादेवजी की व्याहुलो।
२. गगा सम्बन्धी—गगाभूतलआगमन, गंगा की प्रार्थना आदि।
३. देवी सम्बन्धी—दुर्गा सप्तशती का अनुवाद, कालिकाष्टक, फुटकर प्रार्थना के छद।
४ गोवर्द्धन सम्बन्धी—गिरवर विलास, गोवर्द्धन महात्म्य आदि।
५. भक्तो सम्बन्धी—ध्रुव-विनोद।
६ भागवत प्रसग—दशम स्कध की कथाएँ जो भागवत से अनूदित है।

७ अन्य धार्मिक ग्रन्थ—रामायण, महाभारत आदि के अनुवाद ।

३. **निर्गुण ज्ञानाश्रयी**—हिन्दी मे सत-साहित्य अपना पृथक् ही स्थान रखता है। इस साहित्य मे सतगुरु, सबद, बानी, अनहद नाद, नाडिया, योग आदि के प्रकरण होते है। साथ ही हिन्दू-मुस्लिम के भेदभाव को हटाने की भी चेष्टा होती है। मत्स्य में निर्मित चरनदासी साहित्य कुछ इसी प्रकार का है। किन्तु इन सब का प्रतिपादन करने पर भी चरनदासजी अवतारवाद में विश्वास रखते हैं और इसी का प्रतिपादन उनकी शिष्याओ दयाबाई तथा सहजोबाई आदि ने किया। हां 'रामजन' नाम के एक सत की पुस्तक मे सत मत का पूरा अनुगमन किया गया है। नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि ये महात्मा अस्पृश्य रहे हो, आज के प्रचलित 'हरिजन' से 'रामजन' का काफी साम्य बैठता है।

४ **निर्गुण प्रेम-मार्गी**—एक पुस्तक 'प्रेमरसाल' कही जाती है, जिसके रचयिता गुलाममुहम्मद[1] हैं। दुर्भाग्यवश यह पुस्तक प्राप्त नही हो सकी। किन्तु गुलाममुहम्मद महाराज रणजीतसिंहजी के समकालीन थे और कई लोगो से इनकी मौखिक चर्चा सुनी गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मत्स्य मे भक्ति सम्बन्धी विविध धाराओ पर रचनाएँ की गईं, फिर भी यह मानना पडेगा कि आधिक्य सगुण भक्ति का ही रहा। और उसमे भी कृष्ण सम्बन्धी रचनाएँ अधिक प्राप्त होती है। इसका कारण कृष्ण की लीला भूमि मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, महावन, गोकुल, दाऊजी आदि स्थानो का इस प्रदेश के निकट होना है।

राज्य की ओर से धार्मिक कार्यों की ओर काफी ध्यान दिया जाता था। प्रत्येक राज्य मे निश्चित रूप से कुछ धनराशि धर्मार्थ सुरक्षित रखी जाती थी

---

[1] गुलाममुहम्मद महाराज रणजीतसिंह के समकालीन थे, जिनका राज्य काल स० १८३४ से ६२ विक्रमी हैं। इस पुस्तक की वही शैली थी जो प्रेममार्गी सूफियो की रही। इनके पिता का नाम अब्दाल खा था। पुस्तक मे प्रस्तावना के रूप मे भरतपुर नगर तथा दुर्ग का सुन्दर वर्णन लिखा कहा जाता है। वास्तव मे यह ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण होना चाहिये क्योकि इसको पा कर मत्स्य मे भक्ति की चारो धाराओ का सुन्दर सम्मिलन हो जाता है।

और इस विभाग को धर्मार्थ विभाग, सदावर्त, पुन्य विभाग, अथवा अन्य ऐसे ही नामो से अभिहित किया जाता था। इस विभाग द्वारा जहा असहायो को सहायता होती थी वहा मन्दिरो के लिए भी निश्चित रूप मे सहायता दी जाती थी। अनेक स्थानो पर बराबर पाठ होता रहता था। नियमित पाठ करने वाले ये 'वर्णी वाले' राज्य और राजा की मगल कामना के हेतु पाठ करते रहते थे। प्रत्येक राज्य के पडे, दानाध्यक्ष आदि होते हैं। तीर्थ-स्थानो मे दरबार की ओर से कुछ द्रव्य सहायतार्थ भेजा जाता है। पूजन आदि का कार्य नियमित रूप से अब भी होता है। प्रत्येक उत्सव के समय पुरोहित द्वारा सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न कराया जाता है। स्वस्ति-वाचन के विना कोई कार्य पूरा नही समझा जाता। यदि किसी कारण से राजा अनुपस्थित हो तो पूजन-कार्य दानाध्यक्ष द्वारा करा दिया जाता है। महन्त, पुजारी आदि के प्रति राजाओ की श्रद्धा बराबर रहती है। आज सारी बातें बदल रही हैं। न राज्य रहे न राजा, और न धार्मिक कार्यों मे इतना उत्साह। उस समय की अवस्था को देखते हुए ये स्वाभाविक ही था कि सगुण भक्ति सबधी काव्य की रचना हो। मत्स्य प्रदेश मे भी इसी परम्परा का अनुगमन हुआ।[1]

सर्व प्रथम हम राम काव्य को लेते हैं। रीतिकारो मे उदयराम[2] का नाम आ चुका है। भगवान राम के चरित्र से सम्बन्धित इनके बनाये तीन नाटक हमे मिले है जिनमे से दो को तो स्पष्ट रूप से 'नाटक' लिखा है और तीसरे को 'कथा'।

हनुमान नाटक की कुछ पंक्तियां—

पवन पुत्र कु वोलि बोलि मुद्रिका गहाई।
जनकसुता के हाथ जाइ दीजो यह भाई॥
सीता की सुधि लैन कूं चले महा वलवान।
पाइ रजाइस राम की हरषत है हनुमान॥
रजा यह राम की॥

[1] मत्स्य के कवियो में महन्त, पुजारी, पडे, चौबै, दानाध्यक्ष, राजपुरोहित आदि सम्मिलित हैं।

[2] इनके बनाये हुए २४ ग्रन्थ बताये जाते हैं, जैसे—सुजान संवत, गिरवर विलास, हनुमान नाटक, रामकरुण नाटक, अहिरावण वध कथा, कृष्ण प्रतीत परीक्षा, राधा प्रतीत, सकेत समागम, यक्षपचीसी, बारहमासी। ये कविवर महाराज रणजीतसिंह के समय मे थे, जिनका राज्य-काल सं० १८३४ से १८६२ विक्रमी रहा।

महावीर वलमान तीर सागर की आयौ।
किलकिलाय गल गर्जि तर्ज गिरि गगन उड़ायौ ।।
पायक श्री रघुवीर कौ बलधायक बल अग ।
लवा लक झपटन चले वली बाज वजरग ।।
रजा यह राम की ।।

सीता विरह विसाल हाल हनुमान सुनायो।
है आये द्रग लाल सुनत जनपाल रिसायौ ।।
कुटब सहित दसकठ कौं अब संघारौं जाय।
लैहु जानकी जाय अब बोले राम रिसाय ।।
रजा यह राम की ।।

धनि धनि तू हनुमान कठिन कारज करि आयौ।
महावीर बलवान कियौ सबको मन भायौ ।।
यह नाटिक हनुमान को कहै सुनै नर कोय।
ग्यान ध्यान वहु ऊकति उदै उर प्रेम बुद्धि वहु होय ।।
रजा यह राम की ।।

रामकरुण नाटक से कुछ पक्तियां—

यहा राम अकुलाय रैन रहि गई कछु थोरी।
ज्यों जल निघटे मीन दीन विधु विना चकोरी ।।
कटे पष पपेस वामनि विनु फनि अकुलाई।
हेरि हेरि हनुमान मग राम रहे अकुलाय ।।
राम करुणा करें ।।

सुनहु सषा सुग्रीव समुझि सदेह न यामे।
वानर देहु पठाय बीनि बन चदन लामे।
रचौं चिता अब आय सब तापर बैठो जाय।
लै लछिमन कौं गोद मे दीजौ अगिन जराय ।।
राम करुणा करें ।।

उदय भयौ इत भोर सहित सरवरी सिरानी।
झलकी किरणि कलिद जगे जब सारगपानी।
नित्य क्रिया कर कुमर दोऊ आये आसन पास।
कटि निषग कर सर धनुष बैठ कुवर हुलास ।।
राम करुणा करें ।।

इसी प्रकार 'अहिरावण वध कथा' है। इसे 'कथा' कहा गया है, नाटक नहीं। उपर्युक्त दोनो अवतरणो को देखने पर यह स्पष्ट नही हो पाता कि कवि ने इन दोनो को 'नाटक' किन कारणो से कहा है, यद्यपि इसमे सदेह नही कि कवि इन्हें

नाटक ही कहना चाहता है—"यह नाटिक हनुमान कौ", पुस्तक का नाम भी नाटक ही लिखा है। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि शैली विशेष के कारण कवि अपनी इन दोनो कृतियों को नाटक कहता है तो 'अहिरावण वध' कथा को नाटक क्यो नही कहता, उसे 'कथा' क्यो कहता है। अहिरावण कथा के कुछ अश ये है—

अहिरावण को बोल कहै रावण सुनि भाई।
राम लक्ष्मण वीर तिन्हे तू हर ले जाई।।
अहिरावण यह सुनत ही मगन भयो तिहि काल।
माया करि हर लैगयो तिनको निसि पाताल।।
कुमर ये कौन के।।

लीये षडग छिनाय किते पल मारि भगाये।
केते कर सौ पकरि मुड ते मुंड भिराये।।
अहिरावण सिर तोर के डार्यो कुड मझार।
भुजा उपाढी सो पडी रावण के दरबार।।
कुमर ये कौन के।।

जामवत सुग्रीव विभीषण सबही भाषै।
धन धन पवनकुमार प्राण तै सबके राषै।।
कीस भालु कपि कटक के भयो न भावत भोर।
रामचन्द्र चाहत उदै कपि कुल कुमद चकोर।
कुमर ये कौन के।।

इन तीनो पुस्तको को देखने से कुछ सामान्य निष्कर्ष निकलते हैं—

१ कवि हनुमानजी का भक्त था क्योकि उसने अपनी तीनो पुस्तको मे वे ही प्रसग लिये है जिनमे हनुमानजी की वीरता और बुद्धि का वर्णन है। तीनो पुस्तको मे कवि का उद्देश्य हनुमानजी का महत्त्व दिखाना है।

२ इस कविता पर नददास के भ्रमर-गीत की स्पष्ट छाप है। 'सखा सुन श्याम के', 'सुनो व्रजनागरी' के आधार पर तीनो रचनाओ की सृष्टि की गई है। छन्द-योजना एकदम उसी प्रकार की है। इसका एक मात्र कारण नददास के भ्रमर-गीत का अधिक प्रचार हो सकता है।

३ कवि ने दो पुस्तको को नाटक और तीसरी को कथा कहा है। वैसे इन तीनो मे कोई अन्तर तो है नही, फिर भी इसका समाधान यही हो सकता है कि सस्कृत काव्य में जो प्रसग नाटक के नाम से प्रचलित थे जैसे 'हनुमान नाटक' उन्हे नाटक कहा गया है और अन्य को कथा। तीनो ही प्रसगो मे कथा सबधी सम्पूर्ण योजना मिलती है।

वलदेव[1] नाम के एक खण्डेलवाल वैश्य ने 'विचित्र रामायण' नाम का एक सुन्दर प्रवंध काव्य लिखा है। यह हस्तलिखित पुस्तक हर प्रकार मे सुन्दर है। इस रामायण मे कथा-विभाजन काडो में नही किया गया है, जैसा प्राय. देखने मे आता है। काडो के स्थान मे अको मे कथा-विभाजन किया है अंको का विवरण इस प्रकार है—

अंक		पृष्ठ सख्या
१	जानकी परिणय	३
२	सिय रामचन्द्र विलास	२२
३	वन गमन	२५
४	सिय हरन	४२
५	वैदेही वियोग	४६
६	हनुमान विजय	६९
७	सेतु वधन	८५
८	अगद दूत	९३
९	मत्री नय वचन	११३
१०	दशमुख माया कपट	१२६
११	कुभकर्ण विनाश	१३५
१२	मेघनाद सहार	१५३
१३	सौमित्र शक्ति विभेद	१६०
१४	राम संगर विजय	१७६ से २१६

विषय-सूची के देखने से पता लगता है कि कवि ने उन्ही प्रसगो को लिया है जो कथात्मक है। वाल-काड और उत्तर-काड के उन प्रसगो को उसने उपयुक्त नही समझा जिनमे कथा की गति रोक कर अनेक अन्य प्रसगो को देने का प्रयास किया गया है। पुस्तक का प्रारभ राम-सीता-विवाह से होता है और समाप्ति राम की विजय के साथ। विभाजन उसका अपना व्यक्तिगत है जिसमे १४ अक है। इन्होने भी इस कथा को नाटक कहा है जिससे अकों मे विभाजन और भी सार्थक प्रतीत होता है।

---

[1] ये खडेलवाल वैश्य थे और अपनी इस पुस्तक की रचना का समय सवत १९०३ इस प्रकार दिया है—

त्रय नभ नव ससि समय मे माघ पचमी खेत।
पूरण कीनो राम जस गुरु दिन हर्ष समेत॥

सवत् १९०३ वसत पचमी गुरुवार।

पुन ताते यह 'नाटक' महान ,
तिहु लोकन को पावन प्रमान ।

विचित्र रामायण एक बहुत सुन्दर काव्य-ग्रन्थ है जिसमे कवि की मौलिकता स्थान स्थान पर लक्षित होती है । पुस्तक मे अनेक छदो का प्रयोग और विशिष्ट शब्द-चयन कभी कभी रामचन्द्रिका का ध्यान दिला देते हैं, किन्तु अर्थ-ग्रहण मे कही भी कठिनाई नही होती—सर्वत्र ही सरल और स्वच्छ कविता के दर्शन होते हैं । सक्षेप मे यह ग्रथ प्रत्येक प्रकार से एक सुदर काव्य है। इसमे १४ अक हैं, मगलाचरण है और कथा भी सम्पूर्ण रूप मे है । इसका नायक धीरोदात्त है, प्रतिनायक भी है । गृहीत प्रसग सुन्दर है, साथ ही सयोग और वियोग के प्रकरण सुन्दरता के साथ चित्रित किये गये हैं । कथा मे कही भी शैथिल्य दृष्टिगोचर नही होता । साथ ही यह हस्तलिखित प्रति भी अति उत्तम है । चारो ओर काफी हाशिया छोड कर सुस्पष्ट और मोटे अक्षरो मे समस्त ग्रन्थ लिखा गया है । स्याही चमकदार है तथा आरम्भ से अत तक हस्तलेख बहुत ही सुन्दर और चित्ताकर्षक है। पुस्तक दर्शनीय है और उस समय की उत्कृष्ट हस्त लेखन कला का सम्यक् प्रतिनिधित्व करती है ।

प्रचलित परपरा के अनुसार गणेश[1] और सरस्वती[2] की वदना के पश्चात् गुरु-वदना[3] तथा स्थान विशेष (भरतपुर) का भी वर्णन है। और इसके उपरात रामायण लिखने की परम्परा का उल्लेख है कि किस प्रकार सबसे पहले हनुमानजी ने रामायण की कथा लिखी, 'ताके अनतर बालमीक विमाल मुनि', 'ताके अनतर भोज भूपति' 'पुनि मिश्र दामोदरहि[4] ने क्रम सहित विरच्यौ आनि कै' । यह द्रष्टव्य है कि तुलसी, केशव आदि राम-गाथा-कारो के नाम नही लिखे गये हैं ।

इस पुस्तक के लिखने के लिए स्वय राजा ने आज्ञा दी थी—

तिन की अनुसासन लहि उदार ,
कुल विदित वैस्य खडेलवार ।

---

[1] श्री गणेशाय नम — विनय करत हो प्रथम ही गणपति को सिर नाय ।
जिनके सुमरण ध्यान तै उर अज्ञान विलाय ।।

[2] सरस्वती की स्तुति एक भाव पूर्ण कवित्त द्वारा की गई है ।

[3] गुरु पद पदम परागवर मम मन मधुपहि राषि ।
राम चरित भाषा करो, निज मति उर अभिलापि ।।

[4] सभवत. कवि महाशय मिश्र दामोदर से प्रभावित हुए थे ।

बलदेव नाम कवि नें विचित्र ,
यह रामचरित भाषा पवित्र ॥

अपने काव्य के सबध मे लिखते हैं .

जो सव्द अर्थ चित्रित अनूप ।
ध्वनि विंगह को नामधि स्वरूप ॥
जुत भूषन अरु दूषन विहीन ।
कवि या विधि कीजो काव्य कीन ॥

विचित्र रामायण के कुछ प्रसगो को उद्धृत किया जा रहा है—

(i) सयोग शृगार सबधी कुछ छद

उदय विलोकि मयक कौ रघुपति परम उदार ।
बरनन करति सपीन प्रति उपमा विविध प्रकार ॥

भानु को वियोग पाय प्राची रग कु कम के ,
रुची है सुधाकर की किरनिन छायकै ।
उदधि ऊमग सौं उतग होत कजकुल ,
मौन माधि साधि रहे छविहि छिपायकैं ॥

विकसे कमोदिनि के कुल अति चाय भरे ,
हरषे चकोरिन के मडल सुभाय के ।
नभ अवकास होत तम को विनास होत ,
त्रास होत कोकिन के कुल पर आयकै ॥

(ii) शयन का समय हो गया :

सुरति समय पहिचानि, गवन करामन सपिन को ,
कह सारिका प्रमानि, कनक पिंजरा तै वचन ।

(iii) चन्द्रमा पर एक उक्ति :

रजनी कौं नृपति है सबतैं अधिक समि ,
तिमिर वधू को कालरूप के समान है ।
कामिनि संजोग को है सांथी सो स्कल भाति ,
गगन सरोवर को कमल प्रमान है ॥

मानसरवर कैसो राजहस राजै अरु ,
कलित कमोदिनि की निद्रा कौ कृपान है ।
सुरति के पूजन मै प्रथम सुकु भ सो है ,
कामवान कारन कराल षरसान है ॥

इसी अतिम पक्ति को इस दोहे मे इस प्रकार कहा है :

सुरति सु पूजन के विषे प्रथम कु भ हिममान ,
काम वान तीछन करन है कराल षरसान ।

(iv) और अन्त मे ·

वचन सारिका के सरस विग सहित ए जान,
निज निज मदिर प्रति गईं मपी सकल गुनपान।

(v) राम सिया की जोडी का एक दर्शन

वाम अंग राम के विराजत विदेह सुता,
लाजत मदन कोटि सोभा दरसाये तें।
मानो घन दामिनी अनूप वपु धारे दुहू,
राजें परजक पे सुहाग सरसाये तें।

भीजे निसिवासर रसीले रग रीझे मिलि,
दपति परस्पर सुगध वरसायें तें।
सपति सुरेसहू की फीकी सी लगत सेम,
वरनें बने न कोटि मुपहू के गाये तें।

(vi) और अब वियोग में भी राम को देखिए .

इमि कोप सहित रघुपति उदार।
गहि बान बहुरि उर किय विचार॥
ए मृगी नैन सिय दृग समान।
यह दया लागि त्यागें न बान॥

हुव उदय चद्र मडल प्रचंड।
जिमि प्रलय काल को मारतड॥
लषि ताहि राम बोले विहाल।
यह उदय भानु मंडल कराल॥

सौमित्र विलोकहु ताहि तात,
निजि किरणन तें मम दहत गात।
कहु सीतल तर छाया निहारि,
तिहि सेवन कीजै निकट वारि॥

(vii) इस ग्रन्थ मे और भी अनेक प्रसगो का उत्तम वर्णन मिलता है।

अहो वालि के नद आनदकारी।
दसग्रीव तें सधि जो में उचारी॥
करी तें वलव्वीर के नाहि अव्वै।
कहो भेद मोसो महावाहु सव्वै॥

तवै वालिको पुत्र हू यों अतुल्ल्यो।
करज्जोरि के राम सौ वैन वुल्ल्यो।
दसग्रीव सो सर्वथा सधि नाही।
धरो जुद्ध की चाहना चित्त मांही॥

यह ग्रन्थ वास्तव मे विचित्र है। इसमे भावनाओ का मानवीकरण किया गया है। काव्य की दृष्टि से भावो का यथातथ्य चित्रण इसकी विशेषता कही जा सकती है और यही कारण है जिससे कथा के आध्यात्मिक प्रसग जो सामान्यत. बाल और उत्तर काड मे आते हैं हटा दिये गये हैं। हो सकता है कवि को तुलसी के बाल और उत्तर काडो के ये प्रसग उपयुक्त प्रतीत नही हुए हो और इसीलिए अपने पूर्व के राम-कथाकारो मे तुलसी के नाम का उल्लेख भी नही किया हो। कई स्थानो पर जब कवि कल्पना और अलकारप्रियता की ओर अग्रसर होता दिखाई देता है तो कविवर केशवदासजी का स्मरण हो आता है। छदो की विविधता मे भी कुछ ऐसा ही आभास होने लगता है। शुद्ध काव्य की दृष्टि से यह पुस्तक एक उच्च स्थान की अधिकारिणी है और कवि की प्रतिभा की द्योतक है। साथ ही इसमे प्रवन्ध काव्य का निर्वाह भी वडी चतुराई के साथ किया गया है।

कुछ फुटकर कविताओ मे ऐसे प्रसंग भी कवियो द्वारा लिये गये हैं जैसे ब्रजेस का 'रामोत्सव' अथवा रामनारायण का 'जानकीमगल'। डीग मे मैंने रामनारायण के लिखे तीनो मगलो को देखा—पार्वतीमगल, जानकीमगल तथा राधामगल। काव्य अच्छा है, उदाहरण अन्यत्र दिए हैं।

राम-भक्ति सबधी काव्यो के अतिरिक्त कृष्ण-भक्ति के काव्य भी मिलते हैं। कृष्ण की भक्ति सबधी कविता के कई रूप प्राप्त होते हैं—

१ लीलाएँ। २. भ्रमरगीत। ३. राधामगल।
४. कृष्ण के जीवन की सम्पूर्ण कथा।

पहले कुछ लीलाएँ देखे—

१. **नागलीला**—बख्तावरसिह की दानलीला के उदाहरण शृंगार काव्य के अन्तर्गत दिये जा चुके है। दानलीला का एक अन्य सबधित प्रसंग देखिये—

अथ दानलीला लिख्यते—

अजव महवूव गोकुल मे किया घर नद का रोशन।
धरे सिर मुकुट सुवरन का जराऊ ऊजरा कुंदन॥
रवा शुद ओढ पीतांबर सुवह दमसूय विंदावन।
अजायव नौ जवा सुन्दर पिलायँ जुल्फवर आनन॥
सकेले गोप के लडके लई सव धेन आगू घर।
अनूपम वास की मुरली वजावत है मधुरतानन्॥

अगर जो नाहि तुम अैसी नचावत नैन हो काहे ।
करत मुसक्यान की वतिया चलत महकाय की चालन् ॥

दानलीला के इस एक ही उदाहरण मे कई वाते दिखाई पड़ती हैं—

१ विदेशी शव्दो का प्रयोग—महवूव, रोसन (रोशन) रवागुद, अजायव (अजीव का वहुवचन) जुल्फ ।

२ कुछ वहुवचन—मधुरतान एक वचन, मधुरतान वहुवचन ।
विदेशी और तत्मम शव्दो का योग—जुल्फ (विदेशी) वर (तत्सम)

३ कविता साधारण कोटि की प्रचलित भाषा मे लिखी गई है ।

४. मुहावरेदार भाषा मे काव्य-योजना ।

५. विचित्र प्रयोग—'मुसक्यान की वतिया', 'चलत चालन' ।

६ सभवत: यह काव्य वख्तावरसिंहजी की अपनी रचना है क्योंकि इसमे कवि-प्रतिभा कम है, व्यावहारिकता अधिक ।

२ नागलीला—

नाथ के वाहर कू लाये ।
सकल वृज देखन कू धाये ।
अमर घन नभ माही छाये ।

फन फन नाचत कृष्णजी वसी लीनी हाथ ।
जो फन ऊंचौ उठत नाग को तापर मारत लात ॥

वजावत गधर्व दे ताली ।
वसत इक जमना में काली ।

आज भी कृष्ण की नागलीला वहुत प्रचलित है। मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन आदि व्रज के प्रसिद्ध स्थानो मे जाने पर पडे, चौवे आदि इस प्रकार की ही लीलाएँ सुना कर भक्तो को मुग्ध करते है। मैं अपने प्रवास काल मे जव ब्रह्म-देश के रगून नामक नगर में था तो व्रज के ३-४ पडे वहाँ भी पहुँचे थे और मार-वाड़ियो के घर जा जा कर इसी प्रकार की दानलीला, नागलीला, मानलीला, चीरहरणलीला आदि सुना कर भक्ति-भावना का सचार करते थे और अपने लिए पुष्कल दक्षिणा भी एकत्र कर सके थे। इन लीलाओ का गायन अव कम होता जा रहा है क्योकि पहले तो कृष्ण-भक्ति मे ही कमी है और गाने के स्थान मे तो केवल सिनेमा के चलते हुए गाने ही सुने जाते हैं। किन्तु आज से २०-२५ वर्ष पहले इन लीलाओ का यथेष्ट प्रचार था—रास, गायन दोनो रूपो में ।

६. अलीबख्श द्वारा लिखी कृष्ण की अनेक लीलाएँ[1]—

१. मुरली—

श्याम की मुरलिया मै हर लाई अरी हेरी दैया श्याम की
अरी हारी माई श्याम की ।

मैं याकू नाहक हर लाई ना थी मोरे काम की . ...
हाय ना थी मोरे काम की ।

या व्रज बीच वसुरिया वैरनि तै राधे वदनाम की
हाय तै राधे वदनाम की ।

श्याम की मुरलिया .. ..
कलपत कृष्ण मुरलिया कारन मै नै दया न नाम की
मैं पापिन नित पाप कमाये चोर भई ही, राम की
अलीवख्स निस दिन भज मैया लै माला हरनाम की
श्याम...... ....

२. माखन चोर—

दधि चोरत पकरचो गयो सुरी देखौ माखन चोर ।
अब आयौ है दाव मैं सु तेरौ डारू गाल मरोर ॥
तेरौ डालू गाल मरोर चोर तै नित मेरौ माखन खायौ ।
तू रोजीना भगजाय थो सुमरे आज दाव मै आयो ।
चलि तेरी मैया पास लै चलू भलो मुखमर्यो जायो ॥

३. स्वाभाविक वर्णन की छटा देखें—

लालारे मोकूं दही विलोवन दे अरे तू माखन मिसरी लै ।
दधि की मथनिया सनी परी है वासन धोवन दै ।
माखन मिलगयो सव झागन मे दधि और विलोवन दे ॥
लाला रे मोकू ......

दधि की रेनी जव रस आवै रई डवोवन दै ।
चैन लैन तू दे नहि दिन मे रैनि व सोवन दै ॥
लाला रे मोक .....

अलीवक्स को दिल धडकत है मत याहि रोवन दै ।
लाला रे मोकूं .....

---

[1] महाराजा अलवर के निजी पुस्तकालय मे प्राप्त बडे आकार के पन्नो वाली इस पुस्तक मे सुन्दर स्पष्ट अक्षरो मे कृष्ण की अनेक लीलाएँ लिखी गई हैं।

४. मुरली और माला—

वजन लगी रे देखो वैरनि वसुरिया।
कूक सुनत उठी हूक पसुरिया।।

तोरी मुरली देदे मोहि कि कान्हा मै समझाऊ तोहि।
तू तेरी मुरली देदे मोकू मैं अपनी माला दऊ तोकू।
वदलन के मिस आऊगी ज्यौ भरम करै ना कोय।।
तोरी मुरली......

और मुरली लेने पर—

वस मुरली ते मतलब मेरो कहा काम अब कान्हा तेरौ।
मेरो गूंठो हू ना जाय कि देखौ वाट रह्यौ है जोय।।
तोरी मुरली .. ..

५. माता से शिकायत ('खडी वोली के रूप सहित')—

मैं तो ना जाऊं री मोरी माई मोरी राधे ने वसी चुराई।
हम जमुना पर वेनु चरावत वह जल भरने आई।।
मुरली मोरी लैगई हरि के विरपभानु की जाई।। मैं ..

दो दमरी की माला देगई छल कीनौ छलहाई।
श्याम सरवसोने की मुरली सुघर सुनार वनाई।।

भवै कमान तानि श्रवनन लगि मीठी सैन चलाई।
तकि कर तीर दियो मोरे तनकै लीनो मार कन्हाई।
मैं तो ना जाऊ.. ...

इस प्रकार इस कवि ने अपने भाव-विदग्ध हृदय से कृष्ण लीला के अन्तर्गत अनेक प्रसगो को लिया है।[1]

४ बृज विलास—वीरभद्र[2] कृत मोटे अक्षरो मे लिखे इस ग्रन्थ के केवल १६ पत्र ही उपलब्ध हो सके—

अति सुन्दर व्रजराज कुमारा। तात मात के प्राण अधारा।।
आनद मगन सकल परिवारा। व्रजवासिन की प्रीति अपारा।।
लीला ललित विनोद रसाला। गाये सुने भाग तिहि भाला।।

---

[1] इस कवि की कविताओ का जो हस्तलिखित सग्रह श्री महाराजदेव अलवर के पुस्तकालय मे है उस वारे मे श्री महाराजदेव ने स्वय ही कहा था, और 'प्रिंस अलीवख्श ऑव मडावर' कहते हुए इस मुसलमान कवि की कृष्ण भक्ति का परिचय कराया था। उनके पुस्तकालय मे इस प्रकार के अनेक हस्तलिखित ग्रथ मिले जो सम्भवत समर्पण के पश्चात् वही पुस्तकालय मे वन्द हो गये और आज तक प्रकाश मे नही आ सके।

[2] यह पुस्तक भी माजी अमृतकौर जी के पठनार्थ लिखी गई थी।

यह पुस्तक ब्रजवासीदास की 'ब्रजविलास' शैली पर 'चौपाई' छंद मे है। बालक कृष्ण की एक झाकी—

छिनक चढे माता की कनिया। कबहुक रज मे लोटत सनिया ॥
कबहुक बागो बन्यो चिकनिया। कबहुक सूथन कबहु क तनिया ॥

कृष्ण की एक शृ गारमय लीला देखिये—

घर मे पैठत चोर विलोक्यौ। द्वारौ आय बगरे कौ रोक्यौ ॥
अरबराइ हरि बाहर आये। जोवन बल ग्वालिन गह पाये ॥
लै उर बीच प्रेम सो भेटी। काम तपन की बेदनि मेटी ॥
तिही ठौर हरि कीन्हीं चोरी। देषि ठगी सी व्रज की गोरी ॥
भेटि भुलावल रह्यौ न तन को। परसत छीन लियौ मन धन कौ ॥
कुचकुकम उर लियौ लगाई। अधर सुधारस पियौ अघाई ॥

एक दिन कृष्ण को पकडने के लिए एक युक्ति सोची गई। एक गोपी से उसके पति ने कहा कि तू कृष्ण को अपने पास बुला लेना, फिर—

अँचि किवार दीजियौ तारौ। भागि जाय नहिं मेरौ सारौ ॥
पकरि जाइ नीकै करि मारू। दूध दही कौ स्वाद निकारू ॥

और कृष्ण वहा पहुँच भी गये। किन्तु गोप की मा ने अपनी हडबडाहट मे उस कमरे का ताला लगा दिया जिसमे गोपी का पति कृष्ण को पकडने के लिए छिप रहा था। परिणाम यह हुआ कि गोप रात भर बन्द पडा रहा, दरवाजा खोला ही नही गया—[1]

यह लीला अति मधुर सुधासी।
कहत सुनत छूटै जम फासी ॥

यह व्रजविलास वीरभद्र (जिसकी फागलीला का वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है) नाम के कवि का बनाया हुआ है और कवि कहता है कि—

कहत सुनत सुख ऊपजै, बाल हसै मन माहि।

इस पुस्तक को सम्पूर्ण करने की तिथि कवि ने स्वय ही 'असाढ सुदी ६ सवत् १६११' बताई है। इसमे सन्देह नही कि इस पुस्तक का आकार बहुत छोटा है परन्तु इसमे ब्रजभाषा का वह स्वाभाविक रूप मिलता है जो भरतपुर मे जन-साधारण के द्वारा बोला जाता है। अलकारमुक्त इस कविता मे मुहावरो और आडम्बररहित भाषा का लालित्य देखने को मिलता है। इसमे कृष्ण को

[1] ऐसे प्रसग शृगार के अतर्गत भी लिये जा सकते हैं। वास्तव मे कृष्ण लीलाओ मे भक्ति और शृगार का अलग करना बहुत कठिन है।

उन्ही लीलाओ का वर्णन है जिनमे गोपो का मजाक बना कर उन्हे परेशानी मे डाल दिया गया है। इस प्रकार के दो तीन और भी उदाहरण इस पुस्तक मे मिलते हैं। कृष्ण एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं कि बिचारा गोप बहुत कुछ सोचने पर भी कुछ नही कर पाता। उल्टा खुद ही ताले मे वन्द होकर रात भर परेशान होता है और उधर चोर कृष्ण उसी की गोपी के साथ एक कमरे मे आराम से अपना समय बिताते है !

भ्रमर-गीत सबंधी पुस्तकें भी कुछ मिलती है।

विरह विलास— रसनायक[1] कृत—इनकी कविता बहुत उच्चकोटि की है। पुस्तक मे एक दोहे के वाद एक सवैया या कवित्त दिया हुआ है जिसमे दोहे का स्पष्टीकरण अथवा उसकी व्याख्या है। इस पुस्तक मे पचास पत्र है और भ्रमरगीत प्रकरण मे तो वियोग तथा करुणा का एक विशद और अनुकरणीय सामजस्य है।

मधुकर हमे न सोच कछु जो उन करी निदान।
सोच यहै अचरज वडो विरद विसार्यौ कान्ह ॥

अब कवित्त मे इसका स्पष्टीकरण देखिए—

सोच न हमे है गुन ओगुन किये को कछू,
सोच न हमे है दधि माषन उजारे को।
सोच न हमें है रसनायक अमोही भये,
सोच न हमे है कछू मथुरा सिधारे को॥
सोच न हमे है कीनी कुबिजा भले ही प्यारी,
सोच न हमे है जोग ज्ञान दिठ धारे को।
गोपीनाथ वाजि गोपी रोवत ही छोडी ताको,
सोच है हमारे ऊधो विरद बिसारे को॥

एक अन्य उदाहरण—

व्रजनारी भोरी तऊ परैं न अलि इहि पेच।
कहा ठगत ठगिया अरे जोग ठगोरी वेच॥

---

[1] रसनायक ने अपने को 'काम्यवनस्थ'' लिखा है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यह कविश्रेष्ठ कामा के रहने वाले थे जिसे कामवन भी कहते हैं। और इसी दृष्टि से इन कवि महोदय को मत्स्य प्रदेशीय माना गया है। 'कामा' वर्तमान भरतपुर जिले की एक तहसील है।

कवित्त में स्पष्टीकरण—

पेप भरि लाये लादे डोलत पुराननि ही,
जिनस अथाही तामे दाम को लगाय है।
ज्ञान ही को गोभ तुम आन के उतारी यहाँ,
अवला बसत तिन्हे कैसे छवि पाय है॥
निगुन करेंगी कहा गुननि रही हैं भरि,
प्यारे रसनायक के प्रेमहि पुराय हैं।
भोरी लषि गोपीन को ठगत कहा है जाउ,
जोग की ठगोरी ऊधो व्रज न विकाय है॥[1]

गोपियो की अवस्था देखिए—

एक बेर आयें व्रजे सुदर स्याम सुजान।
सुरत समे न रुसाई हो मोहि तिहारी आन॥

कवित्त

एक बेर आय व्रज विरही जिवाय लीजे,
पाछै मन मानेंह सोव कीजै सचुपाय हो।
मान न करौंगी रसनायक धरोगी धीर,
गुन ही गनोगी पै न ओगुन मनाय हो॥
पीवत अधर देत दैहू न कठिन जुग,
कुच ही धरो न अग हरुवै छुवाय हो।
सोहैं है हजार मोहि नद के कुमार अव,
सुरत समय न हा हा रावरे रिसायहो॥

उस समय की फूलो से गुथी वेणी का अव क्या हाल है—

सुमन सनेही स्याम ने वैनी गुहे वनाय।
ते छूटत मधुकर मनो फूलझरी लगिजाय॥

कवित्त

कवरी कलीनि जे पे उन ही गुहीही तेव,
सूल सी सलत हिये दारुन अरतु हैं।
चुनि चुनि कुसुम जे सेजही विछाये तेव,
सेल लो लगत हाय भारिही धरतु हैं॥
रग नये राते रसनायक अधिक ताते,
छूटि छूटि पोधन तै छिति ही भरतु हैं।
माधो विन ये ही वन वगरि अनल ऊधो,
फूल न गिरत फूलझरी सी झरतु हैं॥

---

[1] सूरः 'जोग ठगोरी ऊधो व्रज न विकाई है।"

यहा विरह-विलास का पूर्वार्द्ध समाप्त हो जाता है और उत्तरार्द्ध आरम्भ होता है जिसमे ऊधो को लौट कर सदेश देने के लिए कहा जाता है।

ऊधव जाहु जरूर ही, कहियौ इतौ सदेस।
भले धरी[1] दासी व जिय लावत कहा अदेस ॥

कवित्त

केतिक सदेसे कहि कहि के भिजाये तौहु,
आवत न काहे एती विनती सुनाइयौ।
कुविजा घरे की कछू लाज जो करो तो हाहा,
मोहे हूँ हमारी इन गौहे उठि धाइयौ।
कित यौ विपिम्यिान रसनायक परे हैं प्यारे,
प्रान हो हमारे नैंकौ धीरज धराइयौ।
जाहु जू जरूर ऊधौ हमरी तरफ ही मे,
नीक समझाय कान्हैं वाह दैके ल्याइयौ।

अब ऊधव सदेश सुनाता है—

एक रगे रग रावरे वैंही रग लपात।
प्रेम प्रीति लाला करत निसदिन उन्हें विहात ॥

कवित्त

को इक गुवाल जाय मिलवैं वछर लैलैं,
कोऊ देदे हेरी वेनु हेरत विहातु है।
कोऊ मिलि मडली ही वाटि वाटि छाके खात,
कोऊ दूध गोरस हो ढोर भागे जात है।
कोऊ कहै कान्ह रमनायक वुलावैं हरि,
कोऊ कहे वोलि भैंया काहे इतरातु है।
तुम विन विचारे वे विरही विकल नाथ,
ऐसे दिन राति व्रजवासिन विहातु है।

और कृष्ण भी इमी मे अपना स्वर मिलाते हैं—

सुन ऊवो व्रज जनन की मो सुधि विसरत नाहि।
सदा रहत जिय जानिहो निसदिन उनही माहि ॥

कवित्त

कुंजन की छाह चारु जमुना को तीर वह,
ग्वालन की भीर संग गोधन को चारिवो।
वावा नद जू को प्यार मैया को जिमावन त्यो।
वासुरी छिनाय वह राधे कौ निहारिवो ॥

---

[1] "धरेज।" विवाह की यह प्रणाली है जब किमी स्त्री को विना विधिवत् वैवाहिक सस्कार के योही घर मे डाल लिया जाता है।

रस रह केलि रसनायक करभाई जेव,
प्रेम चतुराई वह गोपिन चितारिवौ।
देह नियराई सब भातिन सुहाई सोव,
मोहि क्यो बनत ऊधो ब्रज को बिसारिवो।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ बाते—

१. इस पुस्तक के दो अश हैं—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध मे ऊधव ब्रज मे ही रहते हुए गोपियो की बाते सुनते है और उत्तरार्द्ध में गोपियो का सदेश लेकर कृष्ण के पास जाते है।

२. विरह-विलास में सगुण-निर्गुण के वाद-विवाद का प्रपच नही है और न कवि द्वारा सगुण का प्रतिपादन करने की चेष्टा की गई है। यह तो वियोग से भरी काव्य-प्रतिभा है जो भक्तो का मन मोह लेती है।

३. सम्पूर्ण पुस्तक मे दोहा-कवित्त अथवा दोहा-सवैया का क्रम चलता है। दोहे मे एक बात कही जाती है और इसी बात की व्याख्या या स्पष्टीकरण कवित्त अथवा सवैये द्वारा होता है।

४. कविता उच्चकोटि की है और भाव की दृष्टि से गोपियो की मानसिक अवस्था का हृदयग्राही चित्रण करती है।

रसरासि पचीसी—यह पुस्तक भी भ्रमरगीत से सम्बन्धित है। पुस्तक की समाप्ति पर इसका नाम 'उद्धव पचीसी' लिखा गया है। इसके रचयिता रस-रासि हैं और सम्वत् १९२५ मे ब्रजेन्द्र महाराज के पठनार्थ इस पुस्तक की प्रति-लिपि की गई थी। 'रसरासि' कवि का उपनाम प्रतीत होता है। मूलरूप मे यह पुस्तक अलवर-नरेश के लिए लिखी गई थी। इस पुस्तक मे ८॥ पत्र हैं और २५ कवित्त है। कविता उत्तम कोटि की है। सर्व प्रथम कृष्ण उद्धव को जाने के लिए कहते हैं—

परम पवित्र तुम मित्र हो हमारे ऊधो,
अतरविथा की कथा मेरी सुन लीजिये।
ब्रज की वे बाला जपै मेरी जयमाला वढी,
विरह की ज्वाला तामैं तन मन छीजिये।
मेरो विसवास मेरी आस रसरासि मेरे,
मिलवे की प्यास जानि समाधान कीजिए।
प्रीति सो प्रतीत सो लिपी है रसरीतिन सो,
पत्रिका हमारी प्राण प्यारिन को दीजिए।

पत्र मे लिखा था निर्गुण का उपदेश—

मोहि तुम दीनो तनमनधन प्रान जैसे,
तैसेई समाधि साधि ध्यान धर ध्याओगी।

अलख अरूप घट घट को निवासी मोहि ,
जानि अविनासी जोग जुगति जगाओगी ।।
प्रानायाम आसन असन ध्यान धारना तै ,
ब्रह्म को प्रकास रसरासि दरसाओगी ।
ऐसे चित्त लाओगी तो सुख मे रमाओगी ,
समुक्ति पद पावोगी हमारे पास आओगी ।।

और गोपियाँ ऊधो पर बरस पडी—

कौन लिखी पाती कौन पै पठाए तुम ,
कौन हो कहा ते आये काके मिजवान हो ।।
काकी पहिचानि रसरासि वा निरजन सो ,
कौन सीपे ज्ञान कहा भूले अवसान हो ।।
कौन साधे मौन धरि बैठे मौन कौन काके ,
नैन ओत मए भए अजहू अजान हो ।।
अब हम जानी तुम हो दिवान कूवरी के ,
पच्छ करि आये हो पै मच्छर समान हो ।।

और बताओ तो ऊधो—

ऊधो कहो को है जदुनाथ द्वारिका को नाथ ,
कौन वसुदेव कौन पूत सुखदाई है ।
कौन है निरजन अलख अविनासी कौन ,
ब्रह्म हू कहावे कौन जाकी जोति छाई है ।
इनसो हमारी कहो काकी पहिचानि जानि ,
यातै रसरासि बातै मन मे न भाई है ।
प्रीतम हमारो मोर मुकुट लकुट वारो ,
नंद को दुलारो स्याम सुदर कन्हाई है ।

गोपियो का अनुमान है कि कृष्ण को कुब्जा के कारण आने में सकोच है ।

कौन भाति आइवो बनत ब्रजमडल मे ,
नई प्रानप्यारी वहा अति अकुलावेगी ।
जोपै रसरासि याको संग लिये जैये तो ,
उनके हिये मे कैसे यह धौं समावेगी ।
ऐसे ऐसे अदेसे करत वह कारो कान्ह ,
याही तै न आयो जानि दासी दुख पावेगी ।
कचन की बेली अलवेली कूवरी कों कोऊ ,
गूजरी गमेली उहा नजर लगावेगी ।

किन्तु गोपिया कृष्ण को आश्वासन देते हुए सदेशा भिजवा रही हैं—

एक वेर फेरि व्रजमडल मे आओ कान्ह,
अब सब सूधी भई मान हू न करेंगी।
दान हू मै नेक हू कहूँ न झगरेंगी अरु,
माखन मलाई कू छिपाइ कें न धरेंगी।
नई प्रानप्यारी हू की कान हम मानि लैहैं,
वाकी ह्वै रहैगी रसरासि वासौ डरेंगी।
दोऊ कर जोरि जोरि कोरि कोरि चाइन सौं,
दौरि दौरि कुवरी के पाइन परेंगी।

इससे अधिक विचारी गोपिया और क्या कह सकती थी। और ऊधौजी हमे तो सन्तोष है—

कहा हम गोकुल के गोपी गोप ग्वाल वाल,
वचन चवाई चोर त्यो कठोर ही के हैं।
कहा वे कमल दल नैन कमला के नाथ,
एक साथ चाखे पारे षाटे मीठे फीके हैं।
तीनो लोक माझ धन्य धन्य व्रजवासी भए,
जीवन मुक्ति रसरासि प्रान पीके है।
ऊधौ जी हमारे इहा दोऊ हाथ लाडू आहै,
आवे तऊ नीके न आवे तऊ नीके हैं।

अब तो ऊधौ अपना ज्ञान ध्यान सभी भूल गये और कृष्ण के पास पहुँचे।

राधेकृष्ण राधेकृष्ण एक रटि लागिरह्यो,
रोवत हसत पुलकत छवि छायो है।
छकनि छकायौ वाकौ चित चिकनायो देषि,
कान्ह कौ सुहायो दौरि गरे सौं लगायौ है।

उद्धव सिफारिश करते हुए कहते है—

तुम अरु वे तौ सदा रहत हिलेई मिले,
सो तौ रसरासि कथा रसिकन गाई है।
कहा मन आई यह सामरे कनाई इहा,
आप छिपि रहे उहा राधे को छिपाई हैं।
अतः जाइ सुधि लीजिये कि लीजिये वुलाइ उन्हे,
भरे रसरासि प्यारु आसन सो त्वैरहै।

'राधा' से सम्वन्धित दो स्वतत्र पुस्तके मिली—एक राधामंगल और दूसरी राधिकाशतक। राधिकाशतक एक खण्ड काव्य है और अलवर के कविश्रेष्ठ जयदेवजी का लिखा हुआ है। अलवर दरवार मे जयदेवजी का वहुत मान था और इनकी यह पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। राधामंगल गोसाई रामनारायण द्वारा

लिखित एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें मगलाचरण, भूमिका, गुरुवंदना, आत्म-परिचय आदि हैं। इस पुस्तक मे ११ सर्ग है—

१ प्रस्तावना
२. कृष्ण अलक्ष जन्मोत्सव
३. राधामगल
४ पूतना चरित्र
५ अन्य लीलाए
६ राधे सगाई
७ गोपोत्सव प्रतीत परीक्षा
८ कृष्ण प्रेम परीक्षा
९ रास क्रीडा
१०. राधिका विवाह वर्णन
११. विविध

राधिका विवाह कवि-कल्पना-प्रसूत है क्योकि कहा जाता है कि राधा और कृष्ण का विवाह कभी हुआ ही नही। कवि ने प्रार्थना के उपरान्त अपने वश का वर्णन किया है जिससे प्रतीत होता है कि ये लोग भरतपुर राज्यान्तर्गत बयाना, खोह आदि स्थानो मे रहे थे और फिर राधाकुण्ड जाकर रहने लगे। वहा भीखाराम के पुत्र रूप मे कवि रामनारायण उत्पन्न हुए—

प्रगटें भीखाराम के सुकृत किये सुत एक।
रामनारायण जोतसिन कियो नाम अविशेक॥

पुस्तक-प्रयोजन के सबध मे कवि का कहना है—

मेरे राधाकृष्ण की द्रढ उपासना चित्त।
यातें भाषा मे करू राधामगल मित्र॥

स्थान-स्थान पर काव्य की गति और भाषा की स्वच्छता देखने योग्य हैं। कृष्ण को प्रार्थना—

नील सरोरुह स्याम काम शत कोटि लजावत।
अरुण तरुण वारिज समान दृग अति छवि पावत॥
पीत पटित कटि कसन दसन दामिनी विनिंदित।
आनन अरुण उद्योत ज्योति राका शशि निंदत॥
मन चोरत मुनि मुसक्यात मृदु नेत नेत श्रुति कहत नित।
जन जान गुसाई राम उर करहु वास नित हित सहित॥

यह कवि महोदय महाराज जसवन्तसिह के आश्रित थे।[1] पुस्तक मे सरस्वती प्रार्थना, गणेश प्रार्थना, गुरु प्रार्थना के उपरान्त भूमिका दी गई है। कृष्णावतार के कारण भी बताए गए है और गोकुल की लीलाओ का वर्णन है। साथ ही पूतना आदि के वर्णन यथास्थान दिये गये है। राक्षसो के हनन की कथा भी है। राधाकृष्ण के मिलन की तैयारी का एक चित्र देखिये—

आये आज स्याम वरसाने राधे यह सुधि पाई।
देखन चली सजे पट भूषण अप्ट सखी बुलवाई॥
चन्द्रावली चन्द्रभागा चन्द्रानन चतुर चमेली।
चन्द्रकला चंपा चिराक सम ललित विसाखा हेली॥
ए निज सखी और बहुतेरी तिनके मध्य प्रिया जी।
चली वदन सोभा विलोक त्रिय लोक ऊपमा लाजी॥
कहे गुसाईं रामनारायण यह प्रभु अकथ कहानी।
सादर सुनहि परम सुख पावें होय परम सुज्ञानी॥

अब राधा और कृष्ण के विवाह का भी वर्णन देखिये जो ब्रज मे प्रचलित पद्धति के अनुसार वरसाने मे वृषभानुजी के यहाँ सम्पादित कराया गया है। शादी, बढार आदि सारी बातो का वर्णन कवि ने अपनी कल्पना के आधार पर किया है—

---

[1] ब्रज निकट भरतपुर नाम जासु कौ नृप जसवत कहाये।
गढ़ वज्र समान असक किलो अरि देस नरेस डराये॥

पुस्तक निर्माण का समय भी है—

अब एसु विचारो सुन रीत अक जिमि धारो—
अथतीस बहुरि उन्नीस वामगति जोति सहेत प्रमानो। (१९३३)
यह है प्रमाण श्रुति सार अलौकिक जो सुजान जन जानें॥
सित पक्ष ज्येष्ठ को मास पंचमी अति पुनीत तिथि जानो।
रविवार पुष्य नक्षत्र योग वज्र कौलव करण वखानो।

और अपने सबध मे लिखा है—

हो राधाकुण्ड निवासी।
भो फेर भरतपुर वासी॥

और अन्त मे दिया हुआ है—

"इति श्री राधिकामगल गुसाईं रामनारायण विरीचते समाप्तम्। शुभम्भूयात्। श्रीरस्तु कल्याणमस्तु। अथ शुभ सवत् १९३३ साके १७९८ भाद्रपद मासे शुक्ल पक्षे १३ भृगु वासरे लिखित प० नदकिशोर लिखायत श्री रामनारायण गुसाईं॥ शुभम्॥"

सुर पूजा निज निज पाई।
फिर आचर गांठ जुराई॥
वृषभान राधिका पान लेह वर कन्यादान कराये।
सब नेगी नेग चुकाये॥
द्विज दान गुसाई पाये।
दुलहा दुलहनी समेत चले जनमासे कृष्ण लिवाये॥

इस वर्णन मे निम्न पक्ति 'टेक' के रूप मे मिलती है—

'वर समै जान वृखभान धाम ब्रह्मादि देव सब आये।'

इसके उपरान्त—

जनमासे मे जायकें कियौ वोहौत मे दान।
अब वढार वरनन करू ताय सुनौ दे कान॥

पत्तल बांधने और खोलने की क्रिया पूर्ण रूप से दिखाई गई है और साथ ही वढार का पूरा वर्णन किया गया है। पत्तल खोलने का थोडा सा नमूना देखिये और देखिये कि किस प्रकार गोपिया बाधी जा रही हैं—

छूटी तरकारी पातरि भारी और सुहारी भात घनी।
वाधों अत प्यारी माग तुम्हारी बैंनी कारी जात बनी॥
छूटे दग दौने सेव सलोने नौन अलोने भोग बने।
बधो भोवां के पलकन बाके बिन सर साके काम सने॥
छूटे जो दाने घ्रत के साने और मखाने खाड गरे।
बधौ सब गोती औ नथ मोती सुदर ज्यौती नैन खरे॥
बाधौ जु हुलासो हसो ग्यासो मेदकोरि मतवारी को।
पुन वाध सुपारा रूपा तारा रुनको लक्ष्मी नारी को॥
अब जैंओ भाई कहे गुसाई सबै लुगाई वाध दई।

यह वर्णन इस प्रदेश की प्रचलित प्रणाली के अनुसार सभी विस्तारो सहित मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी वरात मे जाने का सम्पूर्ण दृश्य सामने आ गया हो। वर और वधू गोकुल पहुँचते हैं और यशोदा उनको लिवाती है अर्थात् गृह प्रवेश कराती है। इसके पश्चात् की कथा भी है और लिखा है कि एक बार नद और यशोदा कुरुक्षेत्र गये जहा से वे वसुदेव और देवकी को अपने साथ लिवा कर व्रज लाये। कथा को चित्रित करने मे कवि ने अपनी कल्पना से सभी कमियो को पूरा कर दिया है। कहानी में अनेक बातो के विस्तृत विवरण है और कवि ने सरस प्रणाली में प्रवध काव्य का निर्वाह किया है।

मत्स्य मे शिवजी की भक्ति और पूजा अब भी यथेष्ठ मात्रा मे होती है। शिव चतुर्दशी की रात्रि को आज भी स्थान-स्थान पर जागरण किया जाता है

और जोगी लोग बडे उत्साह और प्रेम के साथ 'व्याहुलौ' गाते है। पार्वती के कन्यादान के अवसर पर भक्तलोग कन्यादान के रूप मे दक्षिणा चढाते है। हमारे प्रसिद्ध कवि सोमनाथ ने भी 'महादेवजी की व्याहुलौ' नाम से एक पुस्तक लिखी है जिसमे ११८ पत्र है तथा ५ उल्लास है। इस पुस्तक की और 'ध्रुव विनोद'[1] की शैली एक-सी है। कवि को ५ उल्लास या ५ सर्गो से कुछ विशेष प्रेम प्रतीत होता है क्योकि उनकी अनेक पुस्तको मे यह सख्या ५ ही मिलती है। इस पुस्तक की कविता कवि की कला के उपयुक्त ही है।

'महादेवजी कौ व्याहुलौ' संवत् १८१३ मे लिखा गया—

> सवत ठारैसै वरस, तेरह पौष सुमास।
> कृष्ण सुदुतिया वुद्ध दिन, भयौ ग्रथ परगास॥

कथा का आरम्भ हिमालय की पुत्री पार्वती के वर्णन के साथ होता है—

> है मैना नाम भावनी, तार्के सुत मेनाक कहायौ।
> अरु हेम रंग उपजी है कन्या, छवि कौ वरनि वनायौ॥

पार्वती के रूप का वर्णन मर्यादा के अन्तर्गत किया गया है और कही भी पूज्य भाव को ठेस नही लगने दी है, साथ ही अलकारो का सुन्दर प्रयोग किया गया है। उत्प्रेक्षा देखिए—

> पुनि भरी माग मुकतनि मो सुन्दर भरि सिंदूर ललाई।
> मनु उडगन पाति गगन मे राजें सजुत सोम सवाई॥
> पुनि मृदु कपोल के निकट लायकें कुटिल अलक छटकाई।
> मनु इदीवर मकरद पान को सुख अवुज ढिंग आई॥

पहले उल्लास मे पार्वती के जन्म का वर्णन है और दूसरे मे 'भवानी शकर-सम्वन्ध वर्नन' है। प्रकृति-वर्णन का एक नमूना देखिए—

> वहु शृगें जाकी मुकट प्रभा की सरद छटा की दुति जीतें।
> शीतल जलवारे श्रवत अपारे झिरना भारे लहरी तें॥
> द्रुम पुजनि वेली जिती सुहेली पुहपनि मेली थिर थहरें।
> मकरद वटोरें पवन झकोरें जह चहु ओरें मृदु फहरें॥
> फहरें सु प्रभजन गरमी गजन षग दुपभजन धुनि बोले।
> अरु शृगनिरूरा नचत मयूरा तषिनि हजूरा मन षोलें॥
> वहु विधि के चहरें मृग छवि छहरें आनद लहरें लाह हिये।
> तपसी तिहि कदर वसि कै अदर वन फल सुदर षाइ जियें॥

---

[1] विवरण अन्यत्र देखें।

शिव के नृत्य का भी एक वर्णन देखे—

सुनि कें सदेम, नाच्यौ महेस, विसरयौ अटूट, सिर जटाजूट।
गगा तरग वाढी उमग, चमचम्यो चद, लहि दुति अमद॥
लगि मुंडमाल, अरु द्विरद पाल, मिलि पडपडात, गति लेत जात।
च्वै अमृत धार, समि तें मुढार, उर परित आनि, मुडनि मिलानि॥
अरु जत्र टूटि, पुनि मुड कूटि, छिति गिरत पुट्टि, हस अट्ट अट्ट।
घुमरीय लेत, डग भूमि देत, फुंकरत सग, उढत भुजग॥
आनद लद्धि, चपि भुजनि मद्धि, फन को हलाइ, नच्चे सुभाइ।
डमरू डमक, सज्जति अतक, सिंगी रमाल, वाजत गाल॥
अनगन विहग, वोलें सुढग, मनु करत गान, ह्वै सुख निधान॥

इस ग्रंथ मे भी कवि की वर्णन-प्रतिभा अति उच्च कोटि की है। पार्वती तथा शिव दोनो के वर्णन बहुत विशद और सुन्दर रूप मे दिए गए है।

तीसरे उल्लास मे लग्न-पत्रिका लिख कर भेजी गई है। इस उल्लास मे पार्वतीजी की प्रार्थना बहुत ही जागरूक है—

तुही ब्रह्म की सिद्धि विद्या सयानी। तुही ज्ञान विज्ञान की वृद्धि सानी।
तुही चद्र मे चन्द्रिका सुद्द जानी। प्रभा भानु मे जो सबै यो बषानी।
तुही वारुनी, शक्ति है लोक मानी। तुही भोग मे इन्द्र की राजधानी।
तुही है सुधा और स्वाहा सयानी। तुही जोग ज्वालामुखी जोगधानी।
तुही रिद्धि औ अष्टहू सिद्धि गानी। तुही सर्वदा राजती ह्वै भवानी।

× × ×

महिष्पासुरे मर्दिनी देवि चडी। जगै जग्ग में जोति जाकी अखंडी।
तुही आसुरी किन्नरी नागकन्या। तुही जच्छनी अच्छनी रूपधन्या॥

चतुर्थ उल्लास मे कन्या-दान किया गया है और साथ ही वरात का आगमन तथा दावत आदि का वर्णन है। कुछ मिठाइयो का स्वाद लीजिए—

वनी असरमी सेर वडी वेरफी अरु पेरा।
मोदक मगद मलूक और मट्ठे पहसेरा॥
फेंनी गूझा गजक भुरभुरे सेव सुहारे।
जोर जलेवी पुज कद सो पगे छुहारे॥
निकुती छोटी छाट मजु मुतिलडू वनाये।
सरस अमृती पुरमा सुदर वेस सजाए॥

और साथ मे—

तिनमे दई मिलाइ भंग की करि कें गोली।

दूलह के रूप मे शिवजी का वर्णन, उनके नादिया का शृंगार और वरात की तैयारी का अच्छा वर्णन मिलता है। पहले तो महादेवजी अपने-असली रूप

मे वैल पर वैठे चले आ रहे थे, परन्तु नगर के निकट आने पर उन्होने भव्य रूप धारण कर लिया, जिसे देख कर सखियो ने पार्वती से कहा—

है धन्य भागि तेरौ या जगमे तिनि अैसौ वर पायौ।
है सोरह वरस प्रमान वेस कौं महादेव सौ छायौ॥
अरु कोटि कोटि कदर्पनि हू कौं दिल कौ दरप दरायौ।
है अैमी औरे को कामिनि जाकौ लषत न चित्त चुरायौ॥
तव भेष दिगवर धारि ईसनै औरनि कौ डरपायौ।
विनु कचन मनि भूषन के अगनि उनही जु लषायौ॥

पाँचवे उल्लास मे विदा और गणेश तथा स्वामिकार्तिकेय के जन्म की कथा है। विवाह की रीति व्रज मे प्रचलित प्रणाली के अनुसार है—

तव दूधाभाती करवाई। दूहू की झूठनि दुहुनि षवाई।
गौने की अव रीति करावौ। गाठ जोरि केर सुष वरसावौ॥

गणेश जन्म—

एक समय मुसिक्याइ, सिव लख्यौ गौरि को रूप।
एक दत परगट भयौ, वालक तवे अनूप॥

स्वामिकार्तिकेय—

अरु सकर के वीज सो, षटमुख भयो प्रसिद्धि।
स्वामिकार्तिक नाम पुनि, तासो कह्यौ सुवुद्धि॥

सवो के वाहन—

ऊंदर वाहन गज वदन, षटमुख वाहन मोर।
शिव कौ वाहन वैल है, देवी कौ हरि जोर॥

और अव शिव का दर्शन कीजिये—

जरद जटानि मे फुहारें जिमि गगाधर,
हार शेष हिरदें त्रिनैन रूप न्यारे कौं।
गरल गरे मे जोर जाहर जलूस वारौ,
आधे अग तरुनी सनेह के पत्यारे कौ।
सोमनाथ एरे उर अतर निहारि भव,
पारावार पारत हकीकत हुस्यारे कौं।
भसम सिगारें जो लिलार पर धारें जोति,
चद्र की कला कौ वा पिनाकी प्रानप्यारे कौ॥

इस पुस्तक के सम्बन्ध मे कुछ बातें—

१. काव्य के सभी उपादानो, जैसे अलकार, प्रकृतिवर्णन, रसप्रसग, आदि से युक्त वर्णन प्राप्त होते है।

२. पार्वती और शिव का शृंगार कही भी मर्यादाहीन नही हुआ है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि शैव था, क्योंकि स्थान-स्थान पर इसके आभास मिलते हैं। नाम तो उनका सोमनाथ था ही, साथ ही 'शशिनाथ' नाम भी उन्हें वहुत प्यारा था।

३ पार्वती की स्तुति, ताडव नृत्य और हिमालय के वर्णन विशेष रूप से अच्छे बन पडे हैं।

४. यह वर्णन 'पार्वती मगल' की शैली पर नही है। आजकल भी जोगी लोग जिस प्रकार 'व्याहुला' गाते हैं उसी प्रकार के वर्णन, वही कथानक इसमे भी मिलते है। यद्यपि जोगियो की तुकबदी वडी विचित्र होती है, परन्तु वर्ण्य-वस्तु लगभग इसी प्रकार है।

५ व्रज मे प्रचलित विवाह-पद्धति ही इस ग्रन्थ मे स्वीकार की गई है। आज भी व्रजभूमि मे इस ग्रथ मे वर्णित अनेक प्रथाएँ प्रचलित है।

खोज मे कुछ शिव-स्तुतिया भी प्राप्त हुईं।

गगाजो से सम्बन्धित दो ग्रन्थ मिले — १ गगा भूतलआगमन कथा, २ गगा भक्ततरगावली।

१ **गगा भूतलआगमन कथा** — यह कृति भरतपुर के प्रसिद्ध कवि रस-आनद को लिखी हुई है। इसमे लगभग ९ पत्रो मे २५ छदो द्वारा गगाजी की कथा कही गई है। इस पुस्तक का निर्माण-काल काव्य के अन्त मे लिखे गये इस वाक्य से मिलता है—

'इति श्री रसआनद विरचिते गगा भूतलआगमन कथा सम्पूर्ण। मिति वैसाख कृष्ण २ सवत् १८९३।'

सभवत यह प्रति स्वय कवि द्वारा ही लिखी गई है क्योकि उनकी लिखी गई कई अन्य हस्तलिखित पुस्तको से इसकी लिखावट बहुत कुछ मेल खाती है। इस पुस्तक का पीछे का कुछ अश किसी दूसरे व्यक्ति ने लिपिबद्ध किया हो ऐसा प्रतीत होता है। पुस्तक का आरम्भ प्रार्थना के नीचे लिखे दोहे से होता है—

विष्णु अंग सीतल सलिल, अज उज्ज्वलता वारि।
उठति जु गग तरग हैं, शिवि शिवि शब्द उचारि॥

कथा का आरम्भ अरिल्ल छन्द से इस प्रकार होता है—

एक समे श्री राग लषन दोऊ वीर हैं।
कौशिक मुनि सग गये सुरसरी तीर हैं॥
जाइ दोऊ कर जोरि वंद पद पान को।
करि सूचोल अस्नान दियो वहु दांन को॥

दैं दान विभिवत अरपि भूसुर पूजि सनमानें सबै।
कर जोरि कौशिक कौं निहोरि बहोरि प्रभु बोले तबै॥
हे नाथ त्रिभुवन पावनी गगा त्रिपथगा है सही।
किहि हेत तजि निज लोक ब्रह्म सरूप द्रवि भूतल वही॥

तब सारी कथा कौशिक मुनि ने सुनाई और अत मे कहा—

क्रीडा करहिं जलजीव नाचत शैल बन अतुराइ कै।
चलि हरद्वार प्रयाग काशी मिली उदधहि जाइ कै॥
तार्यौ सकल रघुवश यह सुष देषि नृप आनद लह्यौ।
निज उद्धरन हित यह पवित्र चरित्र रसआनद कह्यौ॥

इस कथा के अतर्गत सगर के पुत्रो को शाप, भगीरथ की तपस्या, गगा की प्रसन्नता और उनके भूतल पर आने की कथा को सक्षेप मे कहा गया है।

२. दूसरी पुस्तक 'गगा भक्त तरगावली' कवि रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद' की लिखी हुई है। सपूर्ण पुस्तक मे कवि का भक्तिभाव लक्षित होता है। पुस्तक की रचना अलवर राज्य के सेनापति पद्मसिहजी के लिए की गई थी।[1] यह ग्रन्थ अलवर मे सवत् १९३५ मे समाप्त हुआ।[2] ग्रथ को कवि ने स्वय ही लिपि-वद्ध किया था। पुस्तक मे कविता की छटा दर्शनीय है। गणेशजी की प्रार्थना देखिए—

मंगल करन हैं अमगल हरनहार,
दास मनरजन अदासुता दरन हैं।
मुनि मन मधुप लुभाने रहैं रैन दिन,
सुन्दर सरोज हू की सोभा निदरन हैं।
देवन के देव औ अदेव देव सेव करैं,
भेव न लहत को प्रसाद सुवरन हैं।
सेवौ कवि नायक सहायक न और ऐसे।
सर्व सुखदायक विनायक चरन है॥

---

[1] सेनापति सुदर सकल, पदमसिंघ परवीन।
तिन हित रामप्रसाद कवि, लिख्यो ग्रथ रसलीन॥

[2] आनद गुन मगल सकल, कल मल दलन अपार।
अलवर मे श्री गग को, भयो ग्रथ अवतार॥
(५ ३ ९)
संवत बाण प्रमांणियं, लोक सुनिधि उर आन। (१९३५)
(१)
पुनि ससि सजुत जाणिये, लिख्यो सुकवि निज पान॥

और गंगा की प्रार्थना इन पंक्तियों मे देखिए—

येरे नर तेरे ये घनेरे उतपात मिटें,
दूर कटें रोग ऐसो औसर न आवोगे।
जाके नैक नाम ही तें पापन की कोट पोट,
फाट जात नैक ही मे ऐसो ध्यान लावोगे।
दीनन दयाल प्रतिपाल सब काल ही मैं,
सुकवि प्रसाद लोक लोक छवि छावोगे।
देवन के देव होय सुर पुर निवास्य करौ,
गगा नाम कहिकै अभगा पद पावोगे॥

पुस्तक में कवि रामप्रसाद ने अपने आश्रयदाता पद्मसिंह की वहुत प्रशंसा की है—

मोदभरी रैंयत विनोद भरयौ देस सब,
राजकाज साज मे अनंत परवीनो है।
सुकवि चकोरन कौ चद सम सोभा देत,
दीन अरविंदन कौं भानु रूप कीनो है।
फौजदार परम प्रतापी पदमसिंघ वीर,
कीरत प्रताप को निवास जग लीनो है।
वैरिन कौ काल चोर चुगलन कौं ज्वालसम,
दीन प्रतिपाल तू विसाल विध कीनो है॥

गगा-चरित्र मे गगा की महिमा का वर्णन है कि किस प्रकार चित्रगुप्त के भेजे गये यमदूतो को मार कर हटा दिया गया, और गगा मे स्नान करने वाला पापी भी विमान पर चढ कर स्वर्ग पहुँचा—

धाय धाय मार कै हटाय जमदूतन कौं।
ल्याय कै विमाण असमान वीच लै गए॥

यमदूतो ने यमराज के दरवार मे जाकर पुकार की। चित्रगुप्त उनकी फरियाद पेश करते हैं—

जोर कर करत पुकार दरवार वीच,
सोर कर सारे जमराज कौ मुसद्दी है।
हद्दी गई रावरी अषड महि मडल सौं,
रावरो हुकम ताको उठै नाहि अद्दी है।
कहै परसाद सब करत निसक पाप,
गगा को गरूर पाय छाय रही मद्दी है।
ऐसी सुर नद्दी करै वद्दी या तिहारै साथ,
देखो महाराज राजगद्दी भई रद्दी है॥

यमराज ने गगाजी को पत्र लिखा, किन्तु गगा ने उत्तर मे लिख भेजा कि—

"पैज यही पूरन प्रतग्या मन मेरै भई,
पातकी तिराऊगी तौ लोक जस पाऊगी।"

कुपित हो कर यमराज ने विष्णु भगवान को पत्र लिखा। विष्णु ने भी जवाव दे दिया—

तेरिन मेरिन औरन की कहि आछी वुरी नहि कान धरै है।
विष्णु भनै जमराज सुनो नहि गग के सामने पेस परै है॥

और शिवजी ने भी फरियाद किये जाने पर कुछ ऐसा ही उत्तर दिया—

येरे जमराज सुरसरिता के समूह गुन,
कौन कहै तौ सौ तमाम कै अदगा कौ।
वावरौ भयौ है भूल दीरघ गयौ है कैसे,
ससै छयो है सुन कौतुक अभगा कौ॥
कहै परसाद हम सीस धरि राखी ताही,
जैसें सिवराज समुझाय सुरसगा कौ।
पावक परस अति जत्र होत भगा जिमि,
पातिक पतगा होत नाम लेत गगा कौ॥

और इसके उपरान्त अनेक छदो मे गगा की स्तुति और उनका महत्त्व बताया गया है।

मत्स्य प्रदेश मे दुर्गा-उपासना भी अनेक रूपो मे होती रही है और यहा के कई कवियो ने देवी की प्रार्थना विविध छन्दो मे लिखी है। दुर्गा सम्बन्धी कुछ सस्कृत ग्रथो के अनुवाद भी हुए जैसे कवि कलानिधि का किया हुआ दुर्गासप्तशती का अनुवाद जो 'दुर्गामहात्म्य' के नाम से प्रचलित हुआ।[1] अलवर के प्रसिद्ध कवि उमादत 'दत्त'[2] ने कालिकाष्टक नाम से बहुत ही उग्र भाषा मे एक ग्रन्थ लिखा। कहा जाता है कि इस अष्टक के द्वारा कवि 'मारण' योग मे सफलता प्राप्त कर सके थे। दो कवित्त देखें—

तोरि डारु दशन मरोरि डारु ग्रीवा गहि,
फौरि डारु लोचन विलम्व न विचारिये।

---

[1] यह प्रसग अनुवाद नामक अध्याय के अतर्गत लेना उपयुक्त होगा क्योकि 'दुर्गा महात्म्य' एक अनूदित ग्रथ है।

[2] महाराज शिवदानसिहजी के दरवार मे इनका वहुत आदर था। यह रौद्र रस की कविता विशेप रूप से करते थे। यह अष्टक बहुत कोशिश करने पर अलवर नरेश के सग्रहालय मे ही मिल सका था।

फारि डारु उदर विदारि डारु आँतें सब,
पान कर शोणित अनंद उर धारिये।
दत्त कवि कहै पाय पकरि पछारि डारु,
छारि करि डारु वेगि विरद सम्हारिये।
कष्ट हरि दास को अष्ट भुज वारी मात,
दुष्ट महताव ताको नष्ट कर डारिये॥

भेजिये खवीस खिलखिलत खुसीमों खूब,
खैंचि खाल आमिष खुसीसो खोजि खावै री।
प्रवल पिशाच प्रेत डाकिनि चुरैल भूत,
चौप करि चाटि चाटि चरवी चवावै री॥
दत्त कवि कहै निज दास की पुकार सुन,
सिंह पै सवार ह्वै कै तुरत उठि धावै री।
येरी जगदम्ब कविता की अवलम्ब तू है,
मारि वेगि दुष्ट को विलम्ब न लगावै री॥[1]

यह कवित्त मारण प्रयोग के लिए लिखे गए हैं। इनसे सात्विक भक्ति-भाव प्रगट नही होता।

गोवर्द्धन से सम्बन्धित **'गिरवर विलास'** नाम का एक अति उत्तम ग्रथ प्राप्त हुआ। इसके रचयिता कवि उदैराम हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गोवर्द्धन मे निर्मित कुज, महल, मानसी गगा आदि का उद्घाटन करने के समय इस पुस्तक को लिखा गया था। महाराजा सुजानसिंहजी ने इन स्थानो का निर्माण अथवा जीर्णोद्धार कराया था। इन्ही महाराज ने भरतपुर का किला बनवाया और उसके चारो ओर खाई खुदवाई थी जो आज भी 'सुजान गगा' के नाम से विख्यात है। मानसी गगा का पहला रूप कुछ भी रहा हो किन्तु जिस रूप मे यह सरोवर आज विद्यमान है वह महाराज सुजानसिंहजी का प्रयास है। गोवर्धन के महल, तालाव आदि का निर्माण उन्होने ही कराया था, और इन्ही महाभाग के समय में मानसी गगा पर सब से पहला दीपदान हुआ। कवि ने स्पष्ट लिखा है—

मथुरा तें पछिम दिसा दोइ जोजन सौ ठाम।
देवन को दुर्लभ कह्यौ है गोवर्द्धन नाम॥
वृजमडल जदुवस मे अस कला अवतार।
उदित भयो भूपति भवन सूरज हरन अध्यार॥

---

[1] ये कवित्त जिस समय अलवर के वयोवृद्ध श्री रामभद्रजी ओझा ने सर्व प्रथम सुनाये थे तो उनका अस्सी वर्ष का वृद्ध शरीर भी, जो चारपाई पर था, एक विचित्र उग्रता से भर गया था।

मजु महल मदिर किये कुज भवन बनवाय।
अति अवास ऊचे अटा लगे घटासो जाइ।।
गिरि गोवर्धन भुवन की रचना कहिसक कोइ।
लाजत लषि सुरपति सदन मदन मोह मन होइ।।
मानसरोवर मानसी रची गग गभीर,
वहा हस विलसें यहा परमहस हैं तीर।
अब बरनहु गिरिवर गहन करत जतु जह'केलि,
सप्त कोस के फेर मे सघन वृक्ष वन वेलि।

'गिरिवर विलास' मे अनेक बातो का हृदयस्पर्शी वर्णन मिलता है। इस गिरि की महिमा, गोवर्द्धन के प्रति भरतपुर के राजाओ की भक्ति तथा यहा पर मनाये गये प्रथम उत्सव का विवरण इस ग्रथ मे पाया जाता है। इसमे सन्देह नही कि गोवर्द्धन का प्रसिद्ध दीपदान इस समय से ही आरम्भ हुआ—

'नृप सुजान के समे सौ दीपदान दुति भाइ।'

कवि का कहना है कि यह स्थान राधा और कृष्ण की रास-भूमि है, इसी प्रसग मे लिखे गये कुछ छद नीचे दिए गए हैं—

१. रमित रास रस रसिक सिरोमनि, नागर नगधर नदकिसोर।
थिरकत पटल पीतपट अचल, चचल चपल चलत चहु ओर।
बजत बाधबर साधि सकल स्वर, मधुर मधुर मुरली घनघोर।
बजत मृदग सग गिरि गुजत, सुनि सुनि छिन छिन कहुकत मोर।।

२. राधे रमित रास रस मडल, मधुर मधुर नूपुरन ठकोर।
रतन कनिक तन श्रमकन झलकत ललकत अलि अलकन की ओर।।
उघरि जात वर चीर चदमुख, लषि लषि चितवत चकित चकोर।
करत गान कोकल कल कुहकत, चहुतक चातक चारहु ओर।।

३ रमित रास रस रसिक राज अरु, ताता थेई तथेई तत्थेई तात्थेईया।
पटकत पग छुटकत लट वेनी, विलुलत बदन लेत फिरकईया।
हरकत पुछ मनहु पनग सुत, ससिरथ मनहु मदन मृग छईया।
निर्तत नवल लाल बालन सग, राधे राधे राधे राधे कहत कन्हैया।।

४ तोरत तान न मानत तन अति गति उछटति मनहु मदन मृग जोरी,
निर्तत नवल बाल लालन सग कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कहति किसोरी।

गोवर्द्धन परिक्रमा—

गिरि परिकर्मा देत हैं नरनारी बहु भीर।
मनहु मदन-रति की कला कोटिक धरे सरीर।।

वरन विविध भूपन वसन पहरि चलत गिरि पथ ।
मानहु गिरिवर वाग मे फूल्यो वितन वसत ॥
करत गान गजगामिनी गावत गुन गोपाल ।
कोकिल कल केकी लजत गति पर मंजु मराल ॥
नदनदन को सदन यह गिरवर गमन विलास ।
हम को दुर्लभ है अगम इनको सहज सुपास ॥

इस उद्घाटन के अवसर पर जो भारी मेला हुआ कवि ने उसका भी वर्णन किया है—

घावत चारिहु ओर ते, नरनारिन के वृंद ।
सोभा सर सरिता उमगि, मनहु मिली सुपसिंघ ॥
कहु नचत कन्हैया करत ख्याल ।
वाजत्र वजावत देत ताल ॥
कहु वाजीगर वदर वनाइ ।
अति करत ख्याल तिनको नचाइ ॥
कहु निकर नादिया व्याल भाल ।
वहु वरन जाति सुचि पच्छ पाल ॥
कहु कहत कवीस्वर वर कवित्त ।
छवि छदवध वरने विचित्र ॥
कहु रसिक मडली फिरति सग ।
रगमगे अग नदलाल रग ॥

मानसीगंगा पर किए गए सर्व प्रथम दीपदान का वर्णन इस प्रकार है—

गगा के प्रस' 'वृज वाल दीपमाल करे,
घरे तज जोरि कोरि झाल जहरी है ।
अति ही उजास आस पास परकास होत,
झिलमिलात झाई जल माही गहरी है ।
कैसे के वरन हरन मन होत उदै,
देषे छवि कविहू की मति सी हहरी है ।
मानसीगग मानो रूप रस रग भीज,
नगनि की जराय जरी चुनरी पहरी है ।

और पर्वत के ऊपर दीपमाला—

घरें दीपमाल वृजवाल ग्वाल गिरिवर पै,
मानो गिरिराज आज मनि प्रगटाई हैं ।
रभा रति उमा सारदा सची सिद्ध,
सावित्री महित मानौं मन मे ललचाई हैं ।

नगने की नारि आरु पनग कुमारि केती,
निपुन तन धारि बृजनारि बन आई हैं।
सुरन की बाला सग अगना रसाल उदै,
लालन की माला मानो गिरि को पहराई हैं।।

और उदैरामजी का एक विचित्र युद्ध और देख लीजिए—

येक षबरि सुनि कै भई, सब ही के तन त्रास।
मग मे गारन कौ कहैं, समर सूर सन्यास।।

उत ही रितुराज रुप्यौ रन को सुनि कें सजि आवत सत अनी।
इतमे करुणाइ कियौ कपू उत काम की कौपि खडी कपनी।।[1]
तबही सब वीर बुलाइ कही सजहू सबही अब आइ बनी।
गिरिभूमि भई हरद्वार यही जँ चाहत है अपनी अपनी।।

जुवती जन पलटनि पडी, करी जहा जनु मैंन।
जाके बल जीत्यौ जगत, कहा सत लघु सेंन।।

दृग बदूक भरि भरि सकति, अजन रंजक प्याइ।
चितवनि चकमक तक लगी, भ्रकुटी कर्रान चढाइ।।

गान की कमान हासी गासी सधान तामे,
तीषी तान तीरन सो वीर उर बेधे हैं।
कुतल कटारन सो बेनी पैंनी धारन सौं,
तारी तरिवारन सौं मारि मारि षेदे है।
चिवकनि के चक्रनि सो मारे परे मक्रनि से,
भूमि भवसागर मे फेरि न उमेदें हैं।
भोहन चढाइ सर लाइ नैंन नावक मे,
अजन भरि मानि व्यालि छेकि छेकि छेदे है।।

इस प्रकार 'साति-सिंगार' के समर का वर्णन किया है। इसके पश्चात् अन्न-कूट का वर्णन है, जब दानघाटी मे भारी भीड़ हो गई थी। इसी समय महाराज सूरजमल की सवारी भी निकली और इस प्रसग मे कवि कहते हैं—

सूरजमल मुख पर लखी सूरजमुखी महान।
अस्ताचल को जात जनु सध्या समय सुभान।।
दरसन करि हरदेव के हरसि हृदय सुख पाइ।
दिनमनि गत प्रापत भये नृप निज कुजँ जाइ।।[2]

---

[1] कपू, कम्पनी—फौज।

[2] 'हरदेवजी का मदिर' और 'भरतपुर की कुज' आज तक विद्यमान है। कुज तो टूटी-फूटी अवस्था मे है किन्तु नियमित पूजा-सेवा के कारण हरदेवजी का मदिर अच्छी अवस्था मे हैं।

इसी समय मे किये गये भागवत, महाभारत, रामायण, दुर्गासप्तशती आदि के अनुवाद, जो भक्ति-भावना से प्रेरित होकर ही किए गए थे 'अनुवाद' नामक अध्याय के अतर्गत ठीक रहेग, क्योकि वे ग्रथ अविकल अनुवाद नही तो छायानुवाद अवश्य है। प्रह्लाद, ध्रुव आदि की कथाएँ भी लिखी जाती थी। इस स्थान पर सोमनाथ द्वारा लिखित 'ध्रुव विनोद' का कुछ विवरण दिया जा रहा है।

'ध्रुव विनोद' मे ५ उल्लास हैं। इस ग्रथ मे 'हरदेवजी सहाय' लिखा गया है।[1] यह पुस्तक अनेक छदो मे लिखी गई है किन्तु कथानक का अति प्रचलित रूप ही ग्रहण किया गया है। पुस्तक मे मजी हुई भाषा का प्रयोग है। प्रार्थना के कुछ दोहे इस प्रकार हैं—

ध्यावतु चरननि को सुविधि, गावति गुननि मुनीस।
जनवत्सल श्रीवत्स नित, जय जय श्री जगदीस॥
×
मैत्रेय जू उच्चरे, आप विदुर सो बात।
ध्रुव चरित्र को भक्त लषि, अति ही हरषित गात॥
×
कमलनाभि की नाभि तें, भयौ कनक अरविंद।
तामे कमलासन भयौ, सुवरन वरन अनद॥

तदुपरान्त कथा का आरम्भ होता है—

उत्तानपात के जुगल भाम।
जेठी सुनीति लघु सुरुचि नाम॥
ही निपट भावती सुरुचि बाल।
अरु नहि सुनीति सो नृप दयाल॥

ध्रुव का अपमान होने पर माता ने उन्हे भगवान की प्राप्ति करने का उपदेश दिया—

अरुण कमल दल के छवि वारे।
निपट विसाल नैंन अनियारे॥

---

[1] भरतपुर के राजाओ की हरदेवजी के प्रति बहुत श्रद्धा रही है। कहा जाता है कि भरतपुर के महाराज गोवर्द्धन से हरदेवजी के पुजारी को लिवा कर भरतपुर मे लाये थे और एक मदिर भी स्थापित कराया जो अब तक विद्यमान है। पहले तो इस मदिर की जीविका बहुत थी परन्तु धीरे-धीरे कम होती चली गई। हरदेवजी के पश्चात् राजवश मे लक्ष्मणजी की भक्ति-परंपरा चली, ऐसा अनुमान है।

रुचिर नासिका शुक लषि लाजैं।
श्रवन ज्ञान के विवर विराजैं॥
अमल कपोल गोल अति नीके।
ललित अधर सुखदायक जी के॥

जब पुत्र जाने लगा तो माता की अवस्था देखिए—

जानि समीप सुनीति सपूतहिं नैननि बेलि विनोद की बोई।
ए शसिनाथ उदार तिही छिन एकै बार विथा सब छोई॥
आई उमगि तरगनि तूल हुती छतिया जु विछोह बिलोई।
नीकै निहारि पसारि भुजा ध्रुव अक मे धारि पुकारि कै रोई॥

इस पुस्तक के प्रथम उल्लास मे १०३ छद, दूसरे मे ११७, तीसरे और चौथे मे क्रमश ३५ और ३४ छद है। पाचवे उल्लास मे ५७ छद हैं। इस पुस्तक की पत्र सख्या ८७ है। ध्रुव की कथा पौराणिक आधार पर लिखी गई है। इसमे मात्रिक तथा वर्णिक दोनो प्रकार के छद पाये जाते है। इस पुस्तक की रचना-तिथि कवि के शब्दो मे ही इस प्रकार है—

सवत् ठारै से बरस, बारह (१८१२) जेठ सुकास।
कृष्ण त्रोदसी वार भृगु, भयौ ग्रथ परकास॥

कवि ने पुस्तक के अन्त मे ध्रुव तथा उनकी माता दोनो को वैकुण्ठलोक मे प्रतिष्ठित करा दिया है—

बैठि विमान चल्यौ सुरलोक को कचन सी तन जोति विसेषी।
पथ के मध्य अचानक ही पटकी पुनि अब दशा अनलेषी।
सो ससिनाथ सुनद औ नद ने जानि दई दरसाह सुमेषी।
आनद मान्यो तबै ध्रुव नै जब आगे सुमाइ विमान मे देपी॥

कुछ स्फुट कविता प्रार्थना सम्बन्धी भी मिली। जैसे—गगा की स्तुति, शिवजी की स्तुति। इनके अतिरिक्त जुगल कवि का लिखा एक 'करुणापच्चीसा'[1] भी

[1] वैसे इस पुस्तक का नाम 'सत्यनारायण करुण पचीसी' है। 'करुणापच्चीसा' मानने का कारण यह दोहा है—

हृदय आइ कवि जुगल के, उपजी भक्ति सुदेष।
करुणा पच्चीसा लिख्यौ, सत्यनारायण वेस॥

इति श्री सत्यनारायण भक्तिमय करुणापच्चीसा सपूर्णम्।

मिला जिसमे अच्छी कविता प्राप्त होती है। यह पच्चीमा सत्यनारायण की स्तुति मे लिखा गया है। कुल सवैयो की सख्या २५ है जिनमे से पहले सवा तीन गायब है। प्राप्त पुस्तक चौथे सवैये के दूसरे चरण से आरभ होती है।

> जब टेर मुनी गजराज ही की वृजराज ही वाए हे छिप्रकने।
> दुप मव्य सभा के पुकारी ही द्रौपदी रापी प्रभावते लाजपने ॥
> इमि भक्त अनेक के काज सरे त्यो लिहाज की पार जगाऐं बने।
> कृपा रावरी को नहिं पार अवै प्रभु सत्यनारायण तो सरनें ॥
>
> कलिकाल महा विकराल रहै मो विहाल करै को उपाइ ठनें।
> प्रन पाल्यौ है ज्यो प्रहलाद को त्यो मम रक्षा करो अब वात वनें ॥
> इक तेरो भरोसो परो सो रहै प्रन पालिए सकट के हरने।
> मुनिहारि निहाल करो छिन मे प्रभु सत्यनारायण तो सरने ॥

अनुप्रास भी देखिए—

> जनमे जगके जिव जतु जितेक जिने जिय जीवन जे अपने।
> अघ ओघन तें अति आरतवंत अवेही अनंत करो अपने ॥

और अन्त मे इस पच्चीसा का फल भी लिखा है—

> सत्यनरायन वीनती, जुगल कृत्य जनहेत।
> जो याकूं सीपै सुनें, मन वंछित फल देत ॥

इसी युग मे प्रसिद्ध महात्मा चरणदासजी का आविर्भाव हुआ। इनकी दो शिष्याएँ सहजोवाई और दयाबाई अपने गुरु के समान ही काव्य-कला-मर्मज्ञ थी। इन तीनो की कविता मे निर्गुण और सगुण दोनो प्रकार की भक्ति का रूप मिलता है। चरणदासजी की वाणी का 'भक्ति सागर' नाम मे प्रकाशन हो चुका है, और इनको शिष्या सहजोवाई का 'सहजप्रकाश' तथा दयावाई के 'दया-बोध' और 'विनयमालिका' भी प्रकाशित हैं। हमने इनके हस्तलिखित ग्रन्थो को भी देखा और इसी प्रसग मे डेहरा की भी यात्रा की गई। डेहरा चरणदासजी की जन्म-भूमि है और यही इनकी दोनो शिष्याओ का भी निवास था। इस स्थान मे चरणदासजी की कुछ वस्तुएँ, टोपी, खडाऊ आदि अब तक मिलते है। महात्मा चरणदास भार्गव वश में सवत् १७६० के अतर्गत प्रगट हुये। इनके सम्बन्ध मे अनेक चमत्कारपूर्ण कहानियाँ हैं। इनके गुरु शुकमुनि थे और उनकी ही आज्ञा से यह दिल्ली गये, जहा इनका स्थान है। ऐसा भी कहा जाता है—

> दिल्ली मे चलकर गये, वृन्दाविपिन विहार।

और वहा सेवाकुज मे पहुँच कर भगवान का साक्षात् दर्शन किया। इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि वे सगुणवादी थे और भगवान कृष्ण मे उनकी

पूर्ण आस्था थी। उनकी कविताओ मे भी उनकी भक्ति का यही रूप मिलता है। इनका देह-त्याग सवत् १८३९ कहा जाता है। वृन्दावन मे इनकी बहुत श्रद्धा थी—

नन्द के कुमार हौ तो कहौं बार बार,
मोहि लीजिए उबार ओट आपनी मे कीजिए।
काम अरु क्रोध को काटो जम वेडा प्रभु,
मागो एक नाम मोहि भक्तिदान दीजिये।
और को छुटायो साथ संतन को दीजे साथ,
वृन्दावन निवास मोहि फेरिहू पतीजिये।
कहै चरणदास मेरि होय नही हासी श्याम,
कहूं मैं पुकारि मेरी श्रवन सुन लीजिये॥

उन्होने कृष्ण की अनेक लीलाओ का वर्णन भी किया है और सर्वदा यही कहते रहे—

'वशीवारे सो लगन मोरी लाग गई।,

इनके द्वारा लिखा कुछ उर्दू पद्य भी मिलता है—

मुझे श्याम से मिलने की आरजू है,
शबो रोज दिल मे यही जुस्तजू है।
नही भाती हैं मुझको वाने किसी की,
सुनी जबसे उस यार की गुफ्तगू है।
शरावे मुहव्वत पिसी जिमने यारब,
वना दोनो जग मे वही सुर्खरू है।

चरणदासजी ने दानलीला आदि भी लिखी है। साथ ही अष्टागयोग, अष्ट प्रकार के कुभक, हठयोग, सतगुरु, सुमिरन का अग, अनहद शब्द की महिमा, माया आदि का भी वर्णन निर्गुण सतो की तरह किया है। कुछ उदाहरण देखें—

१. भेदबानी—

गुरु दूती विन सखी पीव न देखो जाय।
भावैं तुम जप तप करि देखो भावैं तीरथ न्हाय॥
पाच सखी पच्चीस सहेली अति चातुर अधिकाय।
मोहि अयानी जानि कै मेरो वालम लियो लुकाय॥
वेद पुरान सबै जो ढूढें स्तुति इस्मृति सब धाया।
आनि धर्म औ क्रियाकर्म मे दीन्ह मोहि भरमाया॥

२. करम-भरम का निषेध—

सब जग मर्म भुलाना ऐसे।
ऊट की पूछ से ऊट वध्यो ज्यो भेडचाल है जैसे॥

खर का सोर मूस कूकर की देखा देखी चाली ।
तैसे कलुआ जाहिर भैरो सेढ मसानी काली ॥
दूध-पूत पाथर से मागे जाके मुख नहिं नासा ।
लपसी पपडी ढेर करत हैं वह नहिं खावै मासा ॥
वाकै आगे बकरा मारैं ताहि न हत्या जाने ।
लै लोहू माथे सौं लावै ऐसे मूढ अयाने ॥

३. अनहद शब्द—

नौ नाडी को खैंचि पवन लै उर मे दीजै ।
वज्जर ताला लाय द्वार नौ वद करीजै ॥
तीनो वद लगाय अस्थिर अनहद आराधै ।
सुरति निरति काम राह चल गगन अगाधै ॥
सुन्न सिखर चढ़ि रहै दृढ जहा आसन मारे ।
भव चरनदास ताली लगे राम दरस कलमल हारे ॥

४. सतगुरु शब्द—

सतगुर मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट ।
मारे गोला प्रेम का, ढहै भरम का कोट ॥
मै मिरगा गुरु पारघी, शब्द लगायौ वान ।
चरनदास घायल गिरे, तन मन वीधे प्रान ॥

५ कबीर वाला जल-कुभ प्रकरण—

जैसे जल मे जल कुभ वसै जल भीतर बाहर पूरि रह्यौ है ।
तैसे जल मे जल पाला वध्यौ जब फूटि गयौ जल आय भयौ है ॥
ऐसे वह जग मे व्यापि रह्यौ किनहूँ कर लोचन नाहि गह्यौ है ।
चरणदास कहै दुई दूरि करौ सगरौ जग एकहि डोर गुह्यौ है ॥

६ तीर्थ—

मकर तजै तो मथुरा मन मे, कपट तजै तो कासी ।
और तीर्थ सवही जग नाथा, नाहिं छूटि जम फासी ॥

इनके अतिरिक्त मुद्रा, अष्टकमल, निरंजन, साहब, नाम, शब्द आदि निर्गुण सतो की सभी वाते इनके ग्रथो मे मौजूद है।

सहजोवाई और दयाबाई दोनो सदा गुरुदेव की सेवा करती रही। इनका जन्म १७७५ के आसपास हुआ होगा। इनके ग्रन्थो मे से 'विनय-मालिका' को कुछ लोग चरणदासजी के किसी अन्य शिष्य, दयादास का लिखा मानते है।

सहजोवाई की कविता भी निर्गुण की दृष्टि से उसी प्रकार की है।

१. गुरु—

हरि किरपा जो होय तो, नाही होय तो नाहि ।
पै गुरु किरपा दया विनु, सकल वुद्धि नहिं जाहि ॥

राम तजूं पैं गुरु न बिसारू । गुरु के सम हरि कू न निहारूं ।।
हरि ने जन्म दियौ जग माही । गुरु ने आवागमन छुटाही ।।
चरनदास पर तन मन वारू । गुरु न तजू हरि को तजि डारूं ।।

२ ब्रह्म—

निर्गुण सगुण एक प्रभु, देख्यौ समझ विचारि ।
सतगुरु ने आँखी दई, निस्चै कियौ निहारि ।।

३. काया नगर—

बाबा काया नगर बसाश्रो ।
ज्ञान दृष्टि सू घर मे देखो सुरति निरति लौ लावो ।
पाच मारि मन वस कर अपने तीनो ताप नसावो ।।

४. साथ ही सगुण भी—

मेरे इक सिर गोपाल और नही कोऊ भाई ।
....
जाति हू की कान तजी लोक हू की लाज भजी ।
दोनो कुल माहि की कहा करै सोई ।।
['मेरे तो गिरधर गोपाल' के अनुसार]

दयाबाई ने भी इसी प्रकार की कविता की । गुरु की महिमा इन्होने भी बहुत गाई है—

गुरु बिनु ज्ञान ध्यान नहिं होवै ।
गुरु बिनु चौरासी मन जोवै ।।
गुरु बिनु रामभक्ति नहिं जागै ।
गुरु बिनु असुभ कर्म नहिं त्यागै ।।

साधु वर्णन—

साध साध सब कोउ कहै, दुरलभ साधू सेव ।
जब सगत ह्वै साध की, तब पावै सब भेव ।।

आत्म ज्ञान—

ज्ञान रूप को भयो प्रकास ।
भयो अविद्या तम को नास ।।

दयाबाई का जन्म भी डहरा[1] मे ही हुआ । 'दयाबोध' की रचना १८१८ की बताई जाती है । इनके द्वारा कोमलता, मधुरता, प्रेम आदि की प्रशसा की गई है ।

---

[1] डहरा—अलवर जिले मे एक गाव जो अलवर के राजमहल 'विजय पैलेस' से लगभग एक मील की दूरी पर है । यहा चरनदासजी का आश्रम है, और एक महत उसके अधिकारी हैं ।

दयाबोध मे भी अनेक प्रसग 'अग' नाम से लिखे है, जैसे—गुरु-महिमा का अग, सुमिरन का अग, सूर का अग, प्रेम का अग, वैराग का अग, साध का अग, अजपा का अग।

चरनदासजी ने 'श्री ज्ञान स्वरोदै' भी लिखा है, जिसमे २२७ छद हैं। जिस हस्तलिखित प्रति को मैंने देखा उसमे ३८ पत्र हैं।[1] यह एक आध्यात्मिक तथा दार्शनिक ग्रन्थ है। इसमे स्वरो के भेद भी बतलाये गए है और उनका ज्ञान कराया गया है—

भेद स्वरोदै बहुत हैं, सूक्षम कह्यो बनाय।
ताकू समझ विचार ले, अपनी चित मन लाय।।
धरन टरै गिरवर टरै, ध्रुव टरै पुन मीत।
वचन स्वरोदै ना टरै, मुरली सुत रनजीत।।
इडा पिंगला सुषमना, नाडी कहियें तीन।
सूरज चद विचार कै, रहै स्वास लौ लीन।।
स्वास बाणवै क्रोड की, अरब जान नर लोय।
बीत जाय स्वासा सबै, तब ही मृतग होय।।

इकीस हजार छस्सौ चलै, रात दिना जो स्वास।
तीसा सौ जीवै बरस, होय अघन को नास।।

पावक और अकाम तत, बाम नत्र जो होय।
कछू काज नही कीजिये, इनमे वरजू तोय।।
दहनो स्वर जब चलत है, वहा जाय जो होय।
तीन पाव आगे धरे, सूरज सो दिन होय।।

गर्भवती के गर्भ की, जो कोई पूछे आय।
बालक होय के बालकी, जीवै के मर जाय।।
बावै कहियें छोकरी, दहनें बेटा होय।
वाको आयो स्वर चले, जीवत ही मर जाय।।

उनकी 'बानी' मे यह स्पष्ट है कि वे पंडे पुजारियो द्वारा प्रचलित अवतारो को नही मानते थे किन्तु वैसे 'अवतारवाद' का प्रतिपादन करते थे। कर्म-कांड और मूर्तिपूजा की निंदा स्पष्ट रूप से की गई है। प्रचलित देवी-देवताओ के नाम पर चलाए गए पाखण्ड से भी जनता को आगाह किया गया है। परन्तु कबीर, दादू आदि सतो की बातें भी इन चरनदासियो मे उसी तरह से पाई जाती है। दार्शनिक दृष्टि से चरनदासी निर्गुणी कहे जा सकते है, परन्तु व्याव-

[1] इस ग्रथ का बहुत प्रचार था। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान में ही इसकी तीन (ह० लि०) प्रतिया हैं।

हारिक दृष्टि से वे सगुण को ही मानते है। ये सगुणमार्गी होते हुए भी योग और साधना को ग्रहण करते है। सब कुछ मिला कर इनका झुकाव सगुण की ओर अधिक है किन्तु इनके सगुण मे आडवर की मात्रा कम है।

इस प्रदेश मे और बाहर भी महात्मा चरणदासजी के पदो का बहुत प्रचार था और उस ममय की प्रचलित पद्धति के अनुसार जो पद-सग्रह किए जाते थे उनमे इनके पद स्थान-स्थान पर मिलते है। राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान मे उपलब्ध दो सग्रहो मे इनके कुछ पद मिले। ये सग्रह दो सौ वर्ष पुराने हैं[1] और तुलसी, सूर, नददास, अग्रदास आदि के पदो के साथ चरनदासजी के पद भी मिलते हैं। उनमे से दो तीन पद नीचे दिए जा रहे है—भाषा का जो रूप इन हस्तलेखों मे मिलता है, वही दिया जा रहा है।

ऊधो के प्रति गोपियो की कथन —

ऊधो का जानै हमारै जीव की।
चाअग वूंद चकोर चद कू, अैसे हमको पीव की ॥
नेह के मानवी धर करि खैंची, मार गये हरि ति[ती]र की।
भाल वियोग हीये वीच खडको, सुव न लहे या जीव की ॥
चरनदास सखि निसदिन तरफै, जो मछरी बीन नि[नी]र की।
कहै कछु ओर करै कछु ओर, आखर जात अहीर की ॥

अहीर जाति के होकर कृष्ण की 'कथनी' और 'करनी' मे अतर होना ही चाहिए।

एक और पद देखिए जिसमे चरणदासजी का सन्तमतानुगमन स्पष्टत परिलक्षित होता है। यह पहले हो कहा जा चुका है कि चरणदासजी के काव्य में निर्गुण और सगुण दोनो दिखाई देते हैं।

अबै जम का करेगा रे।
अनहद सुरती रगीलो लागी, जिह चद पवन नहीं ॥
... ... पानी जहा जाय घर छाया।
जामै आवागमन नेरा ज्ञान का कलप लगाया ॥
पुरन ब्रह्म सकल विधि पुरा जिहा किया हम वेरा।
सील सुरत दा[2] घरचा अरावा इसट आवै नेरा ॥

---

[1] क्र० स० १८८२ और १८९० पर ये सग्रह-ग्रथ मिले। इनमे से पहले का संग्रह सवत् १८१९ है और दूसरे का १८२७। इसका अभिप्राय यह हुआ कि चरणदासजी के जीवन काल मे ही ये पद-सग्रह किए गए थे और उनकी ख्याति दूर-दूर फैल चुकी थी।

[2] 'दा'—सवधसूचक यह प्रयोग सोमनाथ के 'प्रेम पचीसा' मे भी मिलता है, यथा—'दिल अदर दा परदा'।

जहा सकल जग मर मर जोहै, जहा हम जीवत जाई ।
वलिहारी सतगुर आपकी, ग्रैसी ठोर वताई ।।
जो कोही वसै आगमन जाकी, येकमयेक कहा होई ।
चरनदास हर कृष्ण सखी का, दूजा रूप न होई ।।

अव चरणदासजी के 'स्याम' का दर्शन भी कर लीजिए जो कभी 'इजार', 'पटुका' और 'वागो' पहन कर और कभी 'पाग', 'उपरैना' और 'धोवती' मे आपको कृत्कृत्य कर रहे हैं। मैंने कृष्ण के कई मदिरो मे देखा कि अक्षय तृतीया के दिन भगवान का शृंगार चदन से ही होता है। सभवत उसी दिन का दर्शन इस पद मे वर्णित है—

[राग सारग]

स्याम अंग वन्यो चदन को वागो ।
चदन इजार चदन को, पटुका चदन को सिर पागो । टेक
रायवेलि की माला पहरै, वीचि नुरग रग लागो ।।

[राग सारग]

चदन पहिरै राजत श्री गोपाल ।
हरष भरे मुख वरष महा सुषमा, धुरी मूरति रसाल ।। टेक
सेत पाग सेत उपरैना, सेत धोवती[1] उज्जल मोतिन माल ।
चरनदास प्रभु ए छवि निरषत, व्रज जीवनि नंदलाल ।।

चरणदासजी का व्यक्तित्व वडा प्रभावशाली प्रतीत होता है। एक ओर जहाँ उन्हे सन्तमत का पूरा ज्ञान है वहाँ उनकी भक्ति-भावना भी उच्च कोटि की है पर साथ ही वाह्याडम्बर से उनकी वुद्धि मेल नही खाती । उनकी कृतियो से उनकी काव्य-प्रतिभा उच्च कोटि की सिद्ध होती है, उन्हे रागो का ज्ञान है, साथ ही सुन्दर पद-लालित्य का भी । व्यगमय उक्तिया कहने मे भी वे नही चूकते। उनकी भाषा वैसे तो व्रजभाषा है किन्तु खडी वोली का पुट भी स्थान-स्थान पर मिलता है, संभवत. दिल्ली प्रवास के कारण ।

कुछ समय पूर्व इस प्रात मे एक प्रसिद्ध महात्मा लालदास ने भी निर्गुण की वाते कही थी। इनके शिष्य लालदासी कहलाते है। अहमद नाम के एक अन्य कवि की कुछ कविताएँ मिली जिनसे उनकी विचारधारा भी निर्गुण के अन्तर्गत मालूम होती है—

काहे भरमता डोलै रे योगी, तू काहे भरमता डोलै ।
देह धोय माजे क्या पावे, मन को क्यो ना धो लै ।।
ज्ञान की हाथ तराजू तेरे, फिर क्यो कमती तोलै ।
अहमद होय कहा पछितावे, अव क्यो काकर रोलै ।।

---

[1] 'धोती' के स्थान मे व्रजमंडल और राजस्थान मे आज भी 'धोवती' का प्रयोग होता है ।

क्या पडि सोवै उठ अलबेली ।
आज रच्यौ तेरो व्याह नवेली ॥
सब सखिया तोहि दुलहन बनावें ।
मिलजुल के तोहि बिदा करावे ॥
द्वार बरात खडी धन प्यारी ।
तू सोई सुख नीद अनारी ॥

इस प्रकार के अनेक कवि हुए जिन्होने इस ससार की असारता तथा उस संसार को जाने की तैयारी पर जोर दिया । खोज मे दास नाम के एक निर्गुण संत का 'गोपीचन्दजी कौ वैराग' भी मिला—

'करै बदगी धरणि अकास'
'पीर पन्न बर सिधि अरु साध'
'नाम कबीर जपै रैदास'
'दास कह्यौ वैराग बोध'

प्रेममार्गी शाखा के अतर्गत गुलाम मोहम्मद द्वारा लिखे **'प्रेमरसाल'** की बात कही जाती है । यह ग्रन्थ सूफी प्रेममार्गियो के अनुकरण पर है । इन प्रेम-मार्गी कवि के पिता का नाम अब्दालखा कहा जाता है और इनके आश्रयदाता भरतपुर के महाराज रणधीरसिंह कहे जाते हैं । यह पुस्तक काफी खोज करने पर भी प्राप्त नही हो सकी । एक अन्य पुस्तक 'मधुमालती' है जिसके रचयिता चतुर्भुजदास निगम कायस्थ है । इस पुस्तक की कई प्रतिया हमे उप-लब्ध हुई जिनमे दो प्रतिया सचित्र भी थी । यह ग्रथ मत्स्य प्रात से अधिक सम्बन्ध नही रखता, अत इसका विशेष विवरण इस स्थान पर उपयुक्त प्रतीत नही होता ।

मत्स्य के भक्ति-काव्य को देखने पर हमे इस प्रदेश की भक्ति-परम्परा मे कुछ विशेष बाते दिखाई देती है—

१. निर्गुण की अपेक्षा मत्स्य प्रदेश मे सगुण का अधिक प्रचार रहा । निर्गुण की प्रवृत्ति हमे चरणदासियो के साहित्य मे मिलती है और सिद्धात रूप से उनका उस ओर झुकाव भी मालूम पडता है । व्यवहार मे ये लोग भी सगुण को अधिक मानते थे ।

२ राम और कृष्ण दोनो अवतारो की उपासना हुई । साहित्य की दृष्टि से कृष्ण-साहित्य की रचनाएँ अधिकता से मिलती हैं । वैसे तो हमे विचित्र रामायण जैसे सुन्दर प्रबध काव्य भी मिले है किन्तु राम सम्बन्धी साहित्य की ओर लोग कम आकर्षित हुए । सयोग और वियोग दोनो की दृष्टि से कृष्ण सबधी साहित्य की ओर कवियो का ध्यान अधिक गया है । राम और कृष्ण सबधी साहित्य मे शृगार बहुत ही सयत रूप मे मिलता है ।

३ प्राप्त पुस्तको मे प्रबध काव्य भी मिलते है—जैसे विचित्र रामायण, राधामगल आदि, परन्तु उपलब्ध ग्रथो मे अधिक रचनाएँ मुक्तक है। अनूदित पुस्तको मे महाभारत, रामायण, भागवत आदि सम्मिलित है।

४ प्राप्त साहित्य मे मत्स्य प्रदेश की परम्परा और प्रचलित पद्धति का विशेष ध्यान रखा है जिसके सुन्दर उदाहरण—महादेवजी को व्याहुलो, राधामगल आदि है। लीलाओ मे भी प्रचलित प्रणाली का अनुगमन किया गया है और उन्हे जन-साधारण के निकट की वस्तु बनाया गया है।

५. भक्ति-सम्प्रदाय से सम्बन्धित कुछ मुसलमान भक्त भी है, जैसे लालदास, अलीबख्श, अहमद आदि। पुरुषो के अतिरिक्त स्त्रियो की कविता भी प्राप्त हुई जिनमे दयाबाई और सहजोबाई के नाम विशेष उल्लखनीय हैं।

६ गिरवर विलास, राधामंगल और व्याहुलो इस प्रदेश की विशेषताएँ हैं। इनका सम्बन्ध इसी प्रान्त से है, किसी अन्य प्रान्त मे सम्भवत इनका इतना अधिक महत्त्व न हो। किन्तु इन ग्रन्थो मे जो उत्कृष्ट कोटि का प्रकृति-वर्णन मिलता है, उसका आनन्द सभी प्राप्त कर सकते है।

यह कहा जा सकता है कि मत्स्य प्रदेश के कवियो द्वारा भक्ति के अनेक अगो का प्रतिपादन किया गया और उनकी रचनाएँ काव्य तथा भावुकता की दृष्टि से सम्मानपूर्ण स्थान की अधिकारिणी है।



अध्याय ५

नीति, युद्ध, इतिहास सम्बन्धी तथा अन्य

मत्स्य प्रदेश मे नीति सबधी अनेक दोहो का प्रचलन रहा जिनका मौखिक रूप तो उपलब्ध होता है किन्तु यहा के साहित्य में कोई अच्छा सग्रह नही मिल सका। हा, हितोपदेश, नीतिशतक आदि के अनुवाद अवश्य मिले, और आईने अकबरी के आधार पर लिखी कुछ राजनीति। इन नीति-पुस्तको का प्रणयन राजपुत्रो को पढाने के लिये किया गया था। नीति-सबधी कुछ कहानिया भी प्रचलित थी जैसे विक्रमादित्य से सबधित वत्तीस पुतलियो की बत्तीस कहानिया। सामान्य ज्ञान और नीति के लिए अकलनामे भी बनाये गए जिनमे सामान्य व्यावहारिक बातो का अच्छा वर्णन किया गया। इन अकलनामोमे बहुत सी ऐसी बाते भी हैं जिनका जानना न केवल राजपुत्रो को ही वरन् सभ्य समाज मे सभी को आवश्यक होता है।

नीति के अतिरिक्त युद्ध-सबधी साहित्य भी उपलब्ध हुआ है जो उस समय के राज्यो के उपयुक्त ही है। वह समय घोर सघर्ष का था। मुसलमान, मरहठे, जाट, अग्रेज, मुगल आदि शक्तिया अपने-अपने उत्थान मे लगी हुई थी और अपनी स्थिति को दृढ बनाने की चेष्टा कर रही थी। कभी-कभी दो या अधिक शक्तियो के गठबन्धन भी हो जाते थे। मत्स्य के अतर्गत चारो राज्यो मे कभी-कभी आपसी लडाइयाँ भी हुआ करती थी। उदाहरण के लिये प्रतापसिंह भरतपुर राज्य मे जवाहरसिंहजी के आश्रित रह चुके थे परन्तु उन्ही के राज्य से अलवर का दुर्ग प्रतापसिंहजी ने झपट लिया। और भी कई बार इस प्रकार के सघर्ष हुए। जाट राजाओ का मुसलमानो के साथ घनघोर युद्ध हुआ और मुगल भी भरतपुर का लोहा मानते थे। दिल्ली मे जाटो की धाक बैठ गई थी और उन्होने मुगलो की इस राजधानी को खूब लूटा। एक समय तो जाटो के राज्य का विस्तार अत्यधिक हो गया था। आगरा, मथुरा, दिल्ली तथा आस-पास का बहुत सा हिस्सा भरतपुर राज्य का अग बन गया। करौली और धौलपुर के वर्तमान नव-निर्मित राज्य अग्रेजो से दानस्वरूप प्राप्त हुये थे, यद्यपि इन राज्यो की परम्परा अलवर और भरतपुर से पुरानी है। भरतपुर और अलवर के राजाओ मे युद्ध की दृष्टि से दो राजाओ के नाम बहुत प्रख्यात है। एक सुजानसिंह (सूरजमल) जिनकी वीरता का जो वर्णन 'सुजान चरित्र' मे

किया गया है उसकी समानता का अन्य ग्रथ प्राप्त करना हिन्दी मे कठिन है। दूसरे अलवर के प्रतापसिंहजी जिनके यश और पराक्रम तथा साहसिक कार्यो का वर्णन करते हुये जाचीक जीवण ने 'प्रतापरासो'[1] नाम से एक पुस्तक लिखी। इनके अतिरिक्त मत्स्य के राज्यो मे समय-समय पर छोटे-बडे बखेडे भी हो जाया करते थे। भरतपुर मे सिनसिनी पर लडाई हुई थी, और अलवर के एक राजा ने भी एक बार अपने सभी सरदारो से जागीरे छीनने का निश्चय किया था। उस समय की एक रचना 'यमन विध्वंस प्रकास' है। भरतपुर राज्य से सबधित वीर-साहित्य प्रचुर मात्रा मे मिलता है। यहा की वीरता का क्रम बहुत समय तक चला। सुजानसिंह और जवाहरसिंह की वीरता भारतीय इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे अकित है। एक छोटे से राज्य का अधिपति दिल्ली के सुलतान को भयभीत कर दे और मनमानी लूट मचा कर सम्पूर्ण दिल्ली मे अपना आतक जमा दे, इससे अधिक वीरता का और क्या प्रमाण हो सकता है? कहने को भरतपुर के इन जाट राजाओ को कुछ लोग डाकू कहते है और इनके पूर्वपुरुष चूरामण को तो डाकुओ के सरदार से कुछ भी अधिक नही कहा गया है। शिवाजी को भी लोग पहाडी चूहा कहते थे किन्तु उनकी वीरता का साक्षी भारतीय इतिहास है। इन डाकू कहे जाने वाले जाट राजाओ ने भी मुल्क जीतने के पश्चात् राज्य-शासन सभाला, बिखरी हुई शक्ति को सगठित किया, महल, मंदिर, तालाब और किले बनवाये तथा कवि और विद्वानो का सत्कार किया। सूरजमल को ही लीजिए। डीग के भवन स्थापत्य-कला के सुदर नमूने है। इनमे मुगल कला का प्राधान्य है। गोपाल-भवन बहुत ही सुदर है। और यहां के फव्वारे तो देखते ही बनते हैं। कोई समय था जब, कहा जाता है, रगीन फव्वारे चलते थे। मैसूर के वृन्दावन उद्यान मे चालित रगीन फव्वारे तो विद्युत् प्रकाश का परिणाम है, किन्तु यहा डीग में रगीन पानी की ही व्यवस्था की जाती थी। थोडी मात्रा मे मामूली पानी के फव्वारे आज भी चलते हुए देखे जा सकते हैं। डीग के भवनो का शिलान्यास, डीग और भरतपुर के किलो का निर्माण, गोवर्द्धन को उसका वर्तमान वैभव प्रदान करना, उदयराम, शिवराम और अखैराम जैसे काव्य-मर्मज्ञो का सत्कार करना, दिल्ली पर सफल आक्रमण करना आदि किसी भी प्रतिभाशील राजा के लिये गौरव की बात है।

---

[1] प्रताप रासो एक उत्तम काव्य ग्रथ है जिसका ऐतिहासिक एव साहित्यिक महत्व अत्यन्त मूल्यवान है। प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा इस पुस्तक को प्रकाशित करने का प्रयत्न हो रहा है। पुस्तक 'अलवर म्यूजियम' मे मिली थी।

युद्ध सबधी साहित्य के अतिरिक्त दो तीन प्रकार की सामग्री और मिलती है, जैसे अकलनामे, राजाओ के मनोविनोद सबधी वर्णन, इतिहास, विवाह आदि के वर्णन। उस समय अकलनामे लिखने की परम्परा-सी प्रतीत होती है। हमारी खोज मे दो तीन अकलनामे मिले। इनमे अनेक प्रकार की सामान्य ज्ञान-सबंधी सामग्री होती थी। इन पुस्तको को यदि सामान्य ज्ञान का कोष भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। किन्तु अध्ययन करने पर पता लगता है कि इन अकलनामो मे सुनी सुनाई बातो का ही उल्लेख किया जाता था—अनुभूत सामग्री की कमी रहती थी। वैसे इनमे ऐतिहासिक, भौगोलिक, सास्कृतिक तथा जीवन संबधी बहुत सी सामग्री उपलब्ध होती है।

कथा-साहित्य के अन्तर्गत दो प्रकार का साहित्य मिलता है—एक तो पौराणिक कथाओ से सबधित जिसमे राम, कृष्ण, शिव, गगा आदि के आख्यान हैं। इनके साथ ही कुछ भक्तो की कथाएँ भी मिलती हैं जैसे ध्रुव, प्रह्लाद आदि। दूसरे प्रकार के कथा साहित्य मे हितोपदेश की कहानिया ली जा सकती हैं। उस समय सिंहासनबत्तीसी का बहुत प्रचार था और मत्स्य के कई कवियो ने इस ओर भी ध्यान दिया। ये कहानिया गद्य और पद्य दोनो मे मिलती है। हमारी खोज मे हिन्दी-गद्य के अतिरिक्त नागरी लिपि मे लिखी उर्दू-गद्य की भी एक पुस्तक प्राप्त हुई।

हस्तलिखित पुस्तको मे वैद्यक और ज्योतिष के बहुत से ग्रन्थ मिलते हैं। इनका एक अच्छा सग्रह हिन्दी साहित्य समिति भरतपुर मे है। इन विषयो को, साहित्य से दूर होने के कारण, हमने छोड दिया है। अधिकाश हिन्दी पुस्तके तो प्रसिद्ध सस्कृत ग्रथो के अनुवाद मात्र ही हैं।

राजाओ के मनोविनोद से सबधित कुछ पुस्तके प्रत्येक दरबार मे पाई गईं। इन पुस्तको को राजाओ के व्यक्तिगत जीवन का प्रत्यक्षीकरण कह सकते है। इन पुस्तको की विशेषता वर्णन की उत्कृष्टता है जो राजाओ द्वारा शेर आदि की शिकार का वर्णन, होली के दरबार का वर्णन, लाल लडाने के अवसरो का वर्णन, यात्राओ का वर्णन आदि प्रसगो मे देखी जा सकती है। दो 'विवाह-विनोद' भी मिले। इनमे एक लडके की शादी और दूसरे मे लडकी की शादी के वर्णन हैं।

इतिहास नाम से केवल एक ही हस्तलिखित पुस्तक मिली जो अलवर के बारहट शिवबख्श दान गूजू की लिखी हुई 'अलवर राज्य का इतिहास' नाम से प्रसिद्ध हुई। इसमे अलवर राज्य की कुछ ऐसी बातें भी लिखी हुई है जिनसे

इतिहासकार का पक्षपातपूर्ण होना लक्षित होता है। वैसे मत्स्य के युद्ध साहित्य मे ऐतिहासिक तथ्यो का ही प्रतिपादन किया गया है और उस समय की प्रचलित प्रवृत्ति अतिशयोक्तिपूर्ण कथन से बचाया गया है। सूदन का लिखा 'सुजान चरित्र' उस समय के इतिहास के लिये सुन्दर सामग्री प्रदान करता है और इसी प्रकार जाचीक जीवण का लिखा 'प्रतापरासो'। इन ग्रन्थो की यह विशेषता है कि वर्णन करते समय सैनिक, घोडे आदि की सख्याओ को भी जैसा का तैसा बताया गया है।

अकबर की राजनीति बहुत प्रसिद्ध और सफल रही है। उनके 'आईन' का कई भाषाओ मे अनुवाद हो गया है। मत्स्य मे भी इस ओर कुछ प्रयास किये गये। **'अकबर कृत राजनीति'** नाम से एक पुस्तक अलवर राजभवन पुस्तक-शाला मे मिली। यह पुस्तक ब्रजभाषा से प्रभावित गद्य मे लिखी गई है। इसमे राजाओ के उपयोग की बहुत सी बाते बताई गई हैं। उदाहरण के लिए इस पुस्तक मे कहा गया है कि जब कोई फरियादी आवे तो उसका 'केस' नोट कर लेना चाहिये और उन केसो को नम्बर से निबटना चाहिये ताकि पहले पीछे होने की स्थिति न होने पाये। दंड के भी दर्जे बताये गए हैं। जैसे पहले १–उपदेश और तरकीब से काम लेना, २–दंड देना, ३–अगभग करना, और ४–मृत्यु दड, जब कोई भी अन्य उपाय काम न दे सके। राजाओ के लिए अनेक उपयोगी बातो का सकेत किया गया है, जैसे १–किसान के साथ बहुत रियायत करनी चाहिये, २–हसी-मजाक अधिक नही करना चाहिये, ३–किसी की बुराई करने से दूर रहना चाहिये, और ४–जो काम करना हो सोच-विचार कर करना चाहिये। इस पुस्तक मे बताया गया है कि न्याय किस प्रकार किया जाय, राजा की चर्चा किस तरह की होनी चाहिये, राज-नियम कैसे होने चाहिये, आदि। इसका अधिक वर्णन इसी पुस्तक के अनुवाद तथा गद्य प्रकरण मे मिल सकेगा।

राजनीति की एक पुस्तक देवीदास ने भी लिखी है। ये कविराज करौली के आश्रित थे। इनका निवास-स्थान तो आगरा था किन्तु ये अक्सर रियासतो मे चक्कर लगाते रहते थे। **'राजनीति'** नाम होने पर भी इस पुस्तक मे सामान्य नीति का ही वर्णन है।

कवि ने 'नीति' (सामान्य नीति) की बड़ी प्रशसा लिखी है—

नीति ही तें धरम धरम ही तें सकल सिद्धि,
नीत ही तें आदर समाज बीच पाईये।
नीत तें अनीत छूटें नीत ही तें सुख लूटैं,
नीत लिये बोलैं भलो बकता कहाईये॥

नीत ही ते राजा राजैं नीत ही तें पातसाही,
नीत ही को जस नवखड माहि गाईये।
छोटेनि को बडे करैं बडे महाबडे करैं,
तातें सबही कौं राजनीति ही सुनाईये।।

कवि द्वारा वर्णित यह नीति उनके व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित है। इसका एक उदाहरण और देखिए जिसमे कुछ बातो के उत्कर्ष का वर्णन किया गया है—

सूम की उदारताई दाता की कृपनताई,
क्रोध की तपन ताह कहो को वखानि है।
मागन की हलुकाई गुन की सुभगताई,
घोडा की तुताई ताहि कैसे उर आनि है।।
मीत मिले की सिलाई अरु मान की रषाई,
और बोल की मिठाई देवीदास सुषदानि है।
कुच की कठोरताई अधर की मधुराई,
कविता की सरसाई जानि है सु जानि है।।

और देखिए 'क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये'—

(अ)—आरभत जाय वहु लोकनु सौं वैरु होय,
दूसरें करत जाहि धर्म्मं ठहरे नही।
करत करत जाहि उपजैं कलेस बहु,
फलु असो लागे जासौं पेट हू भरे नही।।
अति पोटो काम जैसौ कुल मे कियो न होय,
अति ही दुरत कै तु पूरो ऊपरैं नही।
देवीदास जामे लाभ परच बराबरि है,
वुद्धिमान ह्वै कै असो कारजु करैं नही।।

(आ)—जासो अति प्रीति सब जगत मे विदित होय,
जासो पुनि वैरु होय दसैं दाम दीजिये।
देवीदास कहै जो जिहाज को बनिजु करें,
धूरतु कहावैं ताकी बातें नही कीजिये।।
जिन कहूं पहलें कदापि चोरी करी होय,
कुल सील रहित विचारु कर लीजिये।
सुष चाहे आपको तो सब को सदा को सीष,
इतने मनुष्यन सौं सगति न कीजिये।।

'संपदा' की सार्थकता—

ऊजरे महल नाहि पालिकी बहल नांहि,
चहल पहल नाहि होम की ध्वनि सी।

मति गजराज नाहि मागने की लाज नाहि,
कवि को समाज नाहि दीसै अरवन सी ॥
देह नाहि पाह नाहि जोरत अघाय नाहि,
देवीदास कहै वह वसु है वमनसी।
घने दुख जोरी घने दुपनि सो राषतु है,
यह जो पै सपदा तो वह जोक वनसी ॥

इस पुस्तक का नाम **'राजनीति'** अवश्य है किन्तु वास्तव मे इस पुस्तक की सामग्री जनसाधारण के लिये नीति का सुन्दर उपदेश है। कवि के अनुभव पर आधारित यह सामग्री बहुत ही मूल्यवान है। काव्य और वर्ण्य-विषय की दृष्टि से यह एक उत्तम पुस्तक है। इसमे राजा-प्रजा, धनी-निर्धन सभी के काम की बातें सुगम रीति से वर्णित हैं। दु:ख इस बात का है कि मत्स्य प्रदेश में लिखी इतनी अनुभवपूर्ण पुस्तक का भी प्रचार नही हो पाया, जैसे गिरधर कविराय या घाघ का। यह पुस्तक अनेक प्रकार की सामग्री से सुसज्जित है और इसमे प्रत्येक व्यक्ति के लिये कुछ न कुछ उपयोगी बात मिल सकती है।

हितोपदेश के कई अनुवाद प्राप्त हुए। यह बात निर्विवाद है कि हितोपदेश नीति-शास्त्र का एक अत्यन्त उत्कृष्ट ग्रन्थ है। मत्स्य मे इस पुस्तक का अनुवाद करने वालो मे देविया खवास और रामकवि के नाम उल्लेखनीय हैं। यद्यपि नीति की दृष्टि से यह पुस्तक जगत्-प्रसिद्ध है किन्तु मत्स्य प्रदेश के साहित्यकारो ने इसके अनुवाद किये है अत: इस प्रसंग को अनुवाद के अतर्गत लेना अधिक युक्तिसगत होगा।

नीति सबंधी एक अन्य ग्रन्थ **'विनयविलास'** है जो महाराज विनयसिंह के राजकवि हरिनाथ का लिखा हुआ है। पुस्तक का समय, नाम, कविनाम, आश्रय-दाता के नाम इस प्रकार हैं—

सवत सर(५) मुनि(७) वसु(८) ससि(१)। (१८७५)
पौप शुक्ल दसइनि समुझायौ ॥
सादर कवि हरिनाथ बनायौ।
विनैसिंह को सुजस सुहायौ ॥
परम कृपा कर यह फुरमाई।[1]
कहिये राजनीति सुपदाई ॥

---

[1] 'फरमाइये' के लिये आज तक 'फुरमाओ' का प्रयोग होता है। सवासौ, डेढसौ वर्ष बीतने पर भी यह प्रयोग अभी तक उसी प्रकार है। 'फरमाइये' से तो आओ, जाओ, खाओ, गाओ, आदि के सादृश्य पर 'फरमाओ' बन गया परन्तु 'फुरमाओ' मे 'फ' उकारान्त कैसे हो गया। क्या 'सुनाओ' आदि से प्रभावित होकर?

इस ग्रन्थ का प्रयोजन इस प्रकार लिखा गया है—

कीनौ बिनैविलास मे सपति सुषमा घाम ।
राजनीति या ग्रथ को पूषन भूषन नाम ।।

यह पुस्तक उस राजनीति से सबधित है जिस राजनीति की व्यवस्था श्री रामचन्द्र तथा वशिष्ठ के बीच हुई थी और जो रामराज की सुन्दर भूमिका प्रस्तुत करती है । इससे स्पष्ट है कि राजाओ तथा उनके आश्रित कवियो का ध्यान राज्य की सुन्दर व्यवस्था की ओर भी रहता था—

राम-वशिष्ठ प्रबोध मे वरनी मति अनुमार ।

और इसी प्रकार पुस्तक के अत मे भी—

'इति श्री महाराव राजा बहादुर विनैसिंह बलवत विरचिताया कवि हरिनाथ कृते श्री रामचन्द्र वसिष्ठ सवादे विनैविलासे राज श्री दूषन भूषन वर्ननं सपूर्ण । संवत १८७५ माघ शुक्ला १० गुरुवार ।'

स्पष्ट है कि यह पुस्तक मौलिक नही है किन्तु इस उपयोगी प्रसंग को भाषा मे प्रस्तुत किये जाने का सपूर्ण श्रेय कवि को ही है ।

नीति-सवधी बहुत सी बाते अक्लनामों मे भी मिलती हैं । उनका प्रधान उद्देश्य बहुत सी जानने योग्य बातो का एक स्थान पर सग्रह करना प्रतीत होता है । हम यहां केवल दो अकलनामो की चर्चा कर रहे हैं—

१– अलवर के सग्रहालय में प्राप्त **'अकलनामा'** एक 'बादशाही किस्सा' समझिये जैसा ग्रन्थ के आरभ मे लिखा हुआ है—

'श्री गणेशाय नम । अथ अकलनामा पातसाही षिस्सा लिष्यते । वात'

इस पुस्तक में पत्र सख्या ५१ है किन्तु प्रति अपूर्ण है । बहुत कुछ देखभाल करने पर भी रचयिता का नाम नही जाना जा सका, किन्तु इसमे सदेह नही कि यह पुस्तक अलवर में ही लिखी गई, जैसा कि इसकी भाषा से स्पष्ट विदित हो रहा है । इसमे अकल की बाते, कहानी और बीरबल की कहानियो के रूप मे 'बात' शीर्षक से लिखी गई हैं । बात—

पातस्याह तहमुर साह समरकद की फतह करी । तहा येक लुगाई अधी कैद मे आई । जदी पातसाह नें कही तेरो नाव क्या है ? तब लुगाई ने कही, मेरा नाव दौलत है । तब पातसाह नें कही, क्या दौलत अधी होती है ? तब लुगाई ने कही, अंधी थी जब लगडे के घर आई । और षिसा-पातसाह अकबर बीरबल सु कही—

'षिसा', 'षीसा', 'कीसा' तीनो रूप मिलते हैं। अनेक स्थानो से उपयुक्त किस्से इकट्ठे किए गए हैं जिनमे अनेक वीरवल से सबधित हैं। अकबर, जहागीर, नूरजहां, शाहजहा आदि के भी किस्से हैं। इस पुस्तक में 'रामकिसन और उसकी लुगाई' का किस्सा काफी विस्तार से दिया गया है। इसको 'अकलनामा' इसी दृष्टि से कहा जा सकता है कि इसमें ऐसी कथाएँ है जिनसे हम दुनिया की वहुत सी वाते जान कर शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

दूसरी पुस्तक है 'अक्कलनामा'। इसके लेखक (लिपिकार) महाराज वलवतसिहजी के प्रसिद्ध लिपिकार जीवाराम हैं। पुस्तक की समाप्ति सवत् १८६६ मे हुई।[1]

इस पुस्तक के दो भाग हैं— (१) वार्ता प्रसग (२) सामान्य ज्ञान प्रसग। वार्ता प्रसग मे १६३ वार्ताएँ हैं और लगभग ६६ पत्रो मे लिखी गई हैं। इसके उपरान्त निम्न प्रकरण लिए गए हैं—

(१) सूवा प्रमान— वगाल, आसाम, विहार, इलाहाबाद, अवध, आगरा, मालवा, पानदेस, वैराट्ठ, गुजरात, अजमेर, दिल्ली, लाहौर।

(२) मनोरथ की सिद्धि— (i) उद्योग (ii) भवतव्यता

(३) फिर 'सब्द समुदाय' हैं— (i) दो दो के— निरपेक्ष, विचार—दो काम राजाओ के, राज्य के मूल दो—नीति, सौर्य।

(ii) तीन तीन के— राज्य के सहायक—सघ, सुभट, दक्ष अधिकारी, उनत्तर होते दुख—माता, पिता, गुरु

---

[1] पुस्तक के अ मे इस प्रकार लिखा है—

"इति श्री अक्कलनामा सपूर्ण शुभ।"

दोहा— दसरथ सुत रघुवस मनि, व्यंकटेस तिहि नाम।
श्री वृजेन्द्र वलवत के, करौ सदा मन काम॥

श्री जी नदा सहाइ सवत १८६६। लिखित चौवे जीवाराम। लेपक सरकार कौ वासी ताल फरे षो। लिपि सुभस्थान भरथपुर मध्य किले में श्री श्री राधाकृष्णाभ्यां नम.॥ १

(iii) चार के जोडे आदर के पात्र-विद्वान्, हाकिम, वृद्ध, तपस्वी। चार प्रकार के मनुष्य—विरक्त, चोर, सतुष्ट, मूर्ष ।

(४) वस्त्रो के भेद ।
(५) आभूषणो के भेद ।
(६) सोलह शृगार ।
(७) कुछ रहस्य प्रभात ही उठना, इष्टदेव का सुमरन, देहचिंता मिटाउना. दातनि करनी आदि ।
(८) राजन कू विचार करने योग—जमा, जमी, जालिम, जिहान, जिम्मीदार, जमीयत, जमान ।
(९) नवरस ।
(१०) छदो के लक्षण ।
(११) मासो के नाम ।
(१२) राग-रागनो ।

इस प्रकार इस पुस्तक मे ऐसी बहुत सी सामग्री एकत्रित कर दी गई है जिसका जानना सबके लिये उपयोगी हो सकता है किन्तु उस सामग्री मे भी बहुत से वृत्तान्त सुनी-सुनाई बातो पर हैं। 'बगाल के वर्णन' का कुछ अवतरण यहा दिया जा रहा है—

मुलक कामरु याही सूबा मे है। तहा रूप अरु मत्र विद्या बहुत है। कोई रूप आदमी बराबर होय। सो फल सुन्दर देता है। बास [के] घर हैं। और आम की बेलि होती है। ··· सब एक जाति है। हिंदू मुसलमान बहनि कू परनै हैं। एक माता से नाता है। ··· मरद लुगाई स्याह रग होते है। लुगाई कैई भरतार रषै और गगा जमुना सरस्वती तीन्यो ही समुद्र मे जाइ मिलती हैं। मरद लुगाई नगे बहुत रहते है। लुगी पहनते हैं। केती स्त्री रूप के पात पहरती है······मृगराज जनावर स्याह रग है। लाल आप का है। गज-गज की पर है। सब जानवर की बानी बोलै ।

इस ग्रथ मे खड़ी बोली के भी अनेक प्रयोग आये है, विशेष रूप से क्रियाओ के। इस वृत्तान्त मे कही गई बातो की सत्यता पर हर कोई सहज ही अपना मत दे सकता है ।

वीर-काव्य

मत्स्य प्रान्त के राजाओ द्वारा किये गये युद्ध, आक्रमण तथा अन्य साहसिक कार्यों के अनेक विवरण मिले जिनमे से कुछ उत्कृष्ट पुस्तके तथा कवित्त-संग्रह

निम्नलिखित हैं—

(१) प्रताप रागो [सो]- जाचीक जीवणकृत ।

(२) सुजान चरित्र— सूदन कृत ।

(३) यमन विध्वस प्रकास— दत्त कृत ।

(४) विजय सग्राम— पुसाल कृत ।

(५) फुटकर कवित्त— सोमनाथ, परसिद्ध, जसराम आदि द्वारा ।

(१) प्रताप राशो [सो]

प्राप्त प्रति अलवर नरेश विनयसिंहजी के शासन काल मे लिपिवद्ध कराई गई थी। इसमे उनके पूर्वज तथा अलवर राज्य के संस्थापक प्रतापसिंहजी के साहसिक कार्यो और युद्धो का सुन्दर एव प्रामाणिक वर्णन है। इस पुस्तक की पत्र सख्या ४४।। है और इसमे ९ प्रभाव हैं।

प्रथम प्रभाव	– वंश वर्णन
२	– आमेर पहुंचना
३	– मावडाजुध वर्णन
४	– युद्ध वर्णन
५	– नजभखा का वर्णन
६	– सेना का वर्णन
७, ८, ९	– युद्ध वर्णन ।

यह पुस्तक पौप कृष्णा ६ स० १९०४ मे लिपिवद्ध हुई। पुस्तक के अन्त मे लिखा है—

'इति प्रताप रासो जाचीक जीवण कृत नमो प्रभाव पूर्णम् मोति फुस वदी ६ समत् १९०४ ।'

इस पुस्तक के अन्त मे 'वषतैस' (वख्तावरसिंहजी) के राजतिलक का वर्णन है। वख्तावरसिंहजी का शासन-काल सवत् १८४७ से १८७१ वि० है। पुस्तक निर्माण का समय इस प्रकार है—

अठारसै सैंतीस साप सवत् सो ह्वै यत।
पोष मास वदि तीज वार विसपत गुरु कहियत ॥

प्रतिलिपि सवत् १९०४ मे की गई थी। पुस्तक की समाप्ति राजतिलक वषतेस' के साथ होती है—

वषतेस रावराजा नरेस । तप बडो राज राजन देस ॥
नर नम्र पाटपति कुलनिधान । किरवान दान दुधी प्रवाण ॥

इसमें वख्तावरसिंहजी के राज्य का वर्णन वर्तमानकाल मे किया गया है

अतएव इसमे संदेह नही रह जाता कि इसकी समाप्ति इन्ही के समय मे हुई।

कवि का नाम, छद-रचना आदि के सबध मे निम्न कथन देखने योग्य है—

चौपैई छद दोहा छपै कवि जाचिक जीवन नाम है।
जुगम जोय वरनन करूं जो कूरमकुल ठाम हैं॥

राजा के वश का वर्णन करते समय कवि ने उनका संबध 'राम' से स्थापित करने का प्रयास किया है। राम द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ का वर्णन इस प्रकार दिया हुआ है—

सुनत राम रिष के वचन, सावकरण सजकीन।
गयो वाज बनवास मे, ते लव कर गह कीन॥

और वश की यह परम्परा मुहव्वतसिंहजी के पुत्र तक चलाई गई है—

धज वधी ध्रम धारिये, जोरावर जग जाप।
उपजे मोबतसिंह सुत, तप पूरण परताप॥

प्रथम प्रभाव मे राजवश का वर्णन करने के उपरान्त कवि ने प्रतापसिंहजी का 'थाना'* छोडना वताया है—

तज थान चले ततकाल ही।

इसके पश्चात् प्रतापसिंहजी भरतपुर के महाराज की राजधानी मे पहुचे—

मुकाम दो मझ कीन। व्रज निकट डेरा दीन॥
घर पवर पहौंची जाय। को भूप उतरे आय॥

ये डीग[1] पहुचे जहा राजा सूरजमल निवास करते थे। प्रताप के साथ इनके मत्री छाजूराम[2] थे।

---

* अलवर राज्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। राजा के पुत्र न होने पर इसी ठिकाने से उत्तराधिकारी लिए जाते रहे हैं। वर्तमान महाराज भी यही के है।

[1] डीग का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

तहा इन्द्रपुर सो ठाव। तननगर दीघ सुनाम॥

[2] छाजूराम खण्डेलवाल वैश्य थे। इनका जन्म हल्दिया परिवार मे हुआ था। हल्दियावश का अलवर तथा जयपुर दोनो राज्यो में बडा मान-सम्मान था। किसी समय जयपुर राज्य के मत्री और सेनापति जैसे महत्त्वपूर्ण पदो पर हल्दिया ही थे। छाजूराम हल्दिया इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति हैं और सरकार आदि इतिहासकारो ने भी इनका उल्लेख किया है। बनारस निवासी श्री दामोदरदास खडेलवाल ने 'खडेलवाल जाति का इतिहास' (अप्रकाशित) लिखते समय छाजूराम हल्दिया के व्यक्तित्व का प्रामाणिक चित्रण किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने भी इस विषय से सबन्धित सामग्री 'खडेलवाल जागृति' के 'जाति का इतिहास' नामक विशेषाक मे प्रकाशित कराई थी। 'हल्दिया वश' के प्रमुख व्यक्तियों पर हाथरस से प्रकाशित 'खडेलवाल हितैषी' मे एक लेखमाला प्रकाशित हुई थी—लेखक का नाम है श्री नरसिंहदास हल्दिया, जिनका कहना है कि उनके पास प्रकाशित सभी बातो के प्रमाण उपलब्ध हैं।

मत्री छाजूराम सो, बूझत बोलै वैन।
मुनि अवाज वृजराज ही आये पातिल लैन।

राजा ने प्रतापसिंहजी को सिरोपाव दिया और—

नगर सु डहरा[1] नाम ठाम कहियत अति भारिय।
महल वाग बाजार ताल तर सुगढ सुढारिय।।

प्रतापसिंहजी कुछ दिनो तक भरतपुर के राजा के यहा रहे, अत मे जवाहरसिंहजी से अनबन हो जाने के कारण ये भरतपुर छोड कर आमेर चले गये। वहा जयपुर-नरेश के साथ मावडे के युद्ध मे प्रतापसिंहजी ने अपने आश्रयदाता जवाहरसिंहजी का सामना किया। इस युद्ध मे जवाहरसिंहजी की हार हुई। कवि के शब्दो मे युद्ध का वर्णन देखिये—

उर उर सो नर सोह उछारु। नर नर नेम लियो पग वारु।।
मर मर माचि रही दल दोय। रार सर सेल पडै झड होय।।
कर कर कायर रोम सुकप। पर पर म र लई सिर चपि।।
छर छर होय छडाल सपार। जर जर जोय वहे पगधारि।।
रण रण रुचिर होइ रण जंग। तर तर तोग[2] वहत अभग।।

इसी प्रकार घर घर, फर फर, थक थक, पर पर आदि की आवृत्ति के साथ युद्ध का वर्णन है। एक और वर्णन—

थके सूर सोही भरै छोरु छोह। परै रुड मुड गरकैस लोह।।
वहै तेग वानै कमाने वरछी। वहै गोल गोला लगै तोव अछी।।
फूटै कटै सीस होय टूक टूक। गिरे लोथ लोथ परे पेत कूक।।

डीग पर नजफखां द्वारा की गई चढाई का वर्णन 'नजव' नाम से किया है। महाराव प्रतापसिंह के युद्ध, साहसिक कार्य, आक्रमण आदि का विस्तृत विवरण दिया गया है। सूदन के सुजान चरित्र के सदृश ही इस पुस्तक का भी ऐतिहासिक महत्त्व है। इसमे दी गई बातो की पुष्टि अलवर तथा भरतपुर के इतिहास भी करते है। 'सुजान चरित्र' तथा 'प्रताप रासो' के वर्णनो को मिलाने से उस समय का एक प्रामाणिक तथा ऐतिहासिक चित्र उपलब्ध हो सकता है।

---

[1] यह डेहरा अलवर के डहरा से अलग है। भरतपुर का डेहरा डीग के पास है और अलवर का डहरा अलवर से पाच मील दूर। अलवर वाले डहरा मे ही श्री स्वामी चरणदासजी का जन्म हुआ था और वहां अब तक भादो शुक्ला तीज को चरणदासजी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। यहां के वर्तमान महन्त का नाम पूर्णदासजी है। भरतपुर का डेहरा सामरिक महत्त्व लिए हुए था। आज तक कहावत मशहूर है—'डहरे की डाइन'।

[2] 'तेग' का राजस्थानी प्रयोग।

सूदन का 'सुजान चरित्र' तो प्रसिद्धि पा सका, किन्तु 'प्रतापरासो' का नाम अलवर मे भी नही सुना जाता। मैने जब इस वीर-काव्य का वर्णन अलवर के विद्वानो तथा ठिकानेदारो से किया तो उन्हे बडा आश्चर्य सा लगा कि इस प्रकार का कोई युद्ध-काव्य भी कभी लिखा गया था। इसमे सदेह नही कि सूदन की कविता के सामने जाचीक जीवन की कविता हल्की पडती है, किन्तु एक प्रामाणिक वीर-काव्य का इस तरह नितान्त लुप्त हो जाना नि सदेह खेद की बात है।

इस पुस्तक मे वर्णित डीग के वृतान्त से भरतपुर राज्य के इतिहास पर भी बहुत प्रकाश पडता है क्योकि कवि ने डीग की अनेक बातो का वर्णन बहुत विस्तार के साथ किया है। नजफखा के लिये लिखा है—

दिल्ली दल आमेरि दल, अरु दिखणी दल सग।
लै चढिय वल नजब नर, गज वाजि सुचग॥

एक प्रभाव मे प्रतापसिहजी द्वारा अलवर ग्रहण करने का वृतान्त दिया गया है। लिखा है—

पत वचत चलिए कटक, लिये वादि क्यौ राज।
उतरे जा अलवर किलै, मिल मत्री वधु समाज॥

इस पुस्तक मे प्रतापसिहजी के जीवन का पूरा विवरण मिलता है, यहा तक कि नायक का स्वर्गारोहण भी दिखाया गया है—

रावराज यौ वचन कह, धर्यौ चरन निज ध्यान।
पहर प्रात वैकुठ घर, पातिल कियो पयान॥

इसके उपरान्त वख्तावरसिहजी का राजतिलक हुआ। यहा तक की कथा इस ग्रन्थ मे दी गई है। इस सवध मे निम्नाकित बाते उल्लेखनीय हैं—

१ इस पुस्तक मे सूदन की शैली का अनुगमन किया गया है। निश्चय ही सुजान चरित्र, प्रताप रासो से पहले लिखी गई पुस्तक है, और बहुत कुछ सभव है कि प्रतापरासोकार को सुजान चरित्र से कुछ प्रेरणा मिली हो। हो सकता है उस समय वीर-काव्यो को लिखने की यही प्रणाली हो। उस घोर शृगारी युग मे ऐसे काव्यो द्वारा ही वीर-काव्य का वाछनीय स्रोत प्रवाहित होता रहा।

२ प्रताप रासो मे प्रतापसिह के लगभग सभी साहसिक कार्यों का वर्णन है जिनके आधार पर उनकी एक प्रामाणिक जीवनी तैयार हो सकती है।

३ इस पुस्तक से उस समय की अनेक ऐतिहासिक घटनाओ की पुष्टि होती है।

४ भाषा और छद की अनेक त्रुटिया हैं। इसका एक कारण लिपिकार की अज्ञता कही जा सकती है।

५ पुस्तक मे प्रतापसिहजी के जीवन से मरण तक का पूरा विवरण होने के कारण इसे वीर-काव्य के अतिरिक्त एक प्रवध-काव्य भी कहा जा सकता है क्योकि इसमे प्रतापसिहजी के सघर्षमय जीवन का आद्योपान्त वर्णन है।

६. इस ग्रन्थ मे केवल ४४॥ पत्र हैं और काव्य-गुण स्थान-स्थान पर दिखाई देते हैं।

७. पुस्तक का नाम बहुत उपयुक्त है। यह उस समय की याद दिलाता है जब हिन्दी का वीरगाथाकाल था और जब हिन्दी मे अनेक 'रासौ' लिखे गए थे।

८ हिंदी मे 'वीर गाथा' कहे जाने वाले काल की लगभग सपूर्ण पुस्तके सदिग्ध हैं, उनकी रचना कब हुई, किन कवियो ने की, कितनी सामग्री ऐतिहासिक है, कौनसे अश प्रक्षिप्त है—इन बातो का भी कोई ठीक पता नही चलता। कुछ लोग तो इन पुस्तको मे से अनेक को दो-तीन सौ वर्ष पहले की ही कृतियाँ बताते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' नामक वीर-काव्य का आज तक भी कुछ निर्णय नही हो सका है—न कोई प्रामाणिक प्रति है, न कवि का निर्णय और न उसमे वर्णित घटनाओ की ऐतिहासिकता। इस दृष्टि से मत्स्य का वीर-काव्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है—

(i) उनके रचयिता का पता है।
(ii) सामग्री इतिहास से प्रमाणित होती है।
(iii) एक ही कवि को लिखी पूरी पुस्तक है।
(iv) प्रक्षिप्त अश नही हैं।
(v) भाषा से भी रचनाकाल की पुष्टि होती है।
(vi) नाम, तिथियाँ, सेना की सख्या और युद्धो के वर्णन सभी इतिहास-समत है।

९ कवि के जीवन से संबध रखने वालो सामग्री बहुत कम मिलती है। अपनी 'अज्ञता' का वर्णन कवि ने अवश्य किया है जो कवि के आर्जव

तथा शील का परिचायक है—

मैं सिष हौं तुम चरन कौ, आठौ जाम अधीन।
परू पाय परनाम करि, कवि पडित परवीन ॥
वरन-हीन कुल-हीन जाति आधीन लीन अति।
उर विचार यो धारि अक ये किए जोर वित ॥

१०. पुस्तक का विभाजन 'प्रभाव' नाम से किया है।

(२) सुजान-चरित्र

सूदन[1] कृत। सूदन भरतपुर के एक उत्कृष्ट कवि है। इनका लिखा यह ग्रथ हिन्दी साहित्य मे काफी प्रसिद्ध है। 'सुजान चरित्र' एक प्रबध काव्य के रूप मे है और इसमे सवत् १८०२ से १८१० तक की घटनाओं का वर्णन है। यह ग्रथ ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इसमे दिए गए सवत् और घटनाओ का अनुमोदन इतिहास द्वारा होता है। इस ग्रन्थ के सबध मे शुक्लजी ने कुछ आक्षेप किये है—

१. वस्तुओ की गिनती गिनाने की प्रवृत्ति बहुत है।

२. भिन्न-भिन्न भाषाओ और बोलियो के साथ खिलवाड किया है—भाषा के साथ मनमानी की है।

३ चरित्र-चित्रण मे गाभीर्य नही है।

उस समय का ध्यान रखते हुए इनमे से एक भी आक्षेप गभीर नही है। वस्तुओ की गिनती गिनाना उस समय की एक प्रथा थी जिसका तात्पर्य केवल विविधता से था। यदि घोडो की गिनती गिनाई है तो उसका यही अभिप्राय है कि युद्ध मे विविध प्रकार के घोडे थे। इसी प्रकार शस्त्रो तथा सैनिको के बारे मे भी कहा जा सकता है। साथ ही पंडित-प्रवृत्ति तो चलती ही थी। भाषा को अच्छी तरह देखने पर पता लगता है कि भाषा के साथ इतना खिलवाड नही है जितना आचार्य शुक्ल समझते हैं। मुसलमानो से खडी बोली का प्रयोग कराना कोई बुरी बात नही है, और ग्रन्थो मे भी यह बात मिलती है और उनकी बोली हिन्दुओ से बराबर भिन्न रही है—आज भी है। वर्णन को वास्तविकता प्रदान करने हेतु, विशेषत युद्ध-वर्णनो को, शब्द की तोड-

[1] मथुरा निवासी चौबे। ये भी महाराज सूरजमलजी के आश्रित थे। कुछ लोग सोमनाथ और सूदन के माथुर चौबे तथा सूरजमल के आश्रित होने से इस बात की कल्पना करते है कि दोनो व्यक्ति एक थे।

मरोड मिलती है जो अनुकरण वृत्ति को ध्यान मे रखते हुए क्षम्य है। चरित्र-चित्रण के गाभीर्य का प्रश्न तो आता ही नही। ये तो लडाई और मुठभेड को बाते है जिनमे विजय ही एकमात्र लक्ष्य रहता था। फिर भी पुस्तक के नायक सूरजमल के चरित्र की उत्कृष्टता स्थान-स्थान पर लक्षित होती है। एक प्रकार से तो पुस्तक का ध्येय चरित्र-चित्रण न होकर युद्ध-वर्णन है।

इसमे विभागो का वर्गीकरण "जग" नाम से हुआ है। पुस्तक की कई हस्तलिखित प्रतिया मिलती हैं।

१ मिरजा सफदरअली के सफदरी छापाखाना भरतपुर मे छपी हुई प्रति।

२ राधाकृष्णदासजी के सम्पादकत्व मे 'इडियन प्रेस' द्वारा मुद्रित। पहली पुस्तक काफी प्रामाणिक है जैसा कि प्रकाशक की टिप्पणी से ज्ञात होता है –

'जानो चाहिए कि चतर सुजान परतापवान अतसुभट वडे धीर रड जीत महावीर महेंद्र वलदेव नल व्रजराज श्री महाराज आध्राज व्रजेंद्र सवाई वलवंतसिंह बहादुर बहादुरजग वैकुठ वासी ने वडी चाहना और वहुत अवलाप से यह पोथी पवत्र सुजान चरित्र छपानी करी थी और विशेप करके इसके छपाने मे यह अवलाषा थी कि हमारे बाप दादा और पुरषाओ की बहादरी और साखे मुल्कगीरा का हाल सब छोटो और बड़ो पर जश प्रकाशत होइ.........।'

इस पुस्तक पर राज्य के प्रमुख व्यक्तियो के हस्ताक्षर भी हैं जिससे इसकी प्रामाणिकता घोषित होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'सुजान-चरित्र' के अनेक पाठ मिलते होगे, अथवा वर्णनो मे कही भ्रामक बातें रही होगी। उन सब की छान-बीन की गई और सफरदजग छापेखाने से जो मुद्रित प्रति मिली उसे प्रामाणिक मानना चाहिए। किन्तु प्रस्तावना की भाषा पढने से विदित हो गया होगा कि प्रचलित पुस्तक मे लिपि सम्बन्धी अनेक अशुद्धिया थी, साथ ही यह भी मालूम होता है कि इसमे पुस्तक का मूल रूप सभवत सफरदजग वाली प्रति से ही तैयार किया गया है, क्योकि दोनो प्रतियो मे पाठ भेद बहुत कम हैं।

इस पुस्तक मे ८ जग (विभाग) हैं।[1] प्रत्येक जग के अतर्गत कुछ अक भी

[1] पडित शुक्ल ने ७ जंग लिखे हैं। पुस्तक मे आठवा जग भी है जो प्रारम्भ तो हो जाता है समाप्त नहीं होता।

है। प्रत्येक अक के अत मे एक छद है, जिसकी तीन पक्तिया तो सब मे एक सी है जो नीचे दी जा रही है, चौथी पक्ति अक विशेप के विषय से सम्बन्ध रखती है—

भूपाल पालक भूमिपति वदनेस नद सुजान है।
जाने दिली दल दप्खिनी कीने महा कलकान है ॥
ताको चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छद वनाइ कै।[1]

कवि की इस रचना से उसके वृहद् ज्ञान का पता लगता है। कविवर सूदन काव्य एव सांसारिक ज्ञान दोनो मे ही प्रतिभाशील थे। इनका शब्दकोष आश्चर्यजनक है। जब वे शस्त्र, अनाज, मसाले, पेड, फल, मिठाई, वर्तन, आभूषण आदि गिनाने लगते हैं तो वस्तुओ की पूरी सूची समाप्त कर देते हैं, और वह भी वडे काव्यमय ढग मे। यह ठीक है कि इस प्रकार की वस्तुओ को गिनाने की प्रणाली उच्च काव्यत्व से नीचे की चीज है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय वस्तुओ को गिनाने की प्रणाली पद्धति विशेप वन गई थी। और कवि समुदाय भी अपनी वहुज्ञता का प्रदर्शन काव्य-कला के अतर्गत ही समझता था।

युद्ध का वर्णन वहुत ही उत्तम रीति से किया गया है।

ध्वन्यात्मक शब्दो की आवृत्ति पुन· पुन· हुई है। एक अवतरण देखें—

घडघद्धर घडघद्धर भडभब्भरं भडभब्भर।
तडतत्तर तडतत्तर कडकक्कर कडकक्कर ॥
घडघग्घरं घडघग्घर झडझज्झर झडझज्झर।
अररर्रर अररर्रर सररर्रर सररर्रर ॥

घनननननन, सनननननन आदि शब्दो की आवृत्तिया भी पाई जाती हैं। अस्त्र-शस्त्रो, गोला-वदूको के शब्द को शब्दो की ध्वनि द्वारा प्रदर्शित करने की चेष्टा की गई है। कवि ने युद्ध मे भाग लेने वाले दोनो दलो के साथ न्याय किया है। अतिशयोक्ति द्वारा वर्णनो को काल्पनिक बनाने की चेष्टा नही की है। सेना आदि की सख्या बताते समय वास्तविकता की ओर ध्यान दिया गया है। ऐसा मालूम होता है कि कवि को सेना सवधी वास्तविक सख्याओ का पूरा पता रहता था। उसने निश्चय के साथ वताया है कि किसी युद्ध विशेष मे कितने घुड-सवार थे, कितने पैदल, कितना तोपखाना आदि थे। साथ ही इस पुस्तक मे जितने भी नाम आये है वे सब सच्चे है, निश्चय रूप से इन लोगो ने राजा के साथ युद्ध मे भाग लिया था। सूदन के वर्णन मे ऐतिहासिक महत्त्व का गौरव है—

१ युद्धो की जो तिथिया दी गई हैं उन्हे इतिहास मे दी गई तिथियो

[1] इसके पश्चात् चौथी पक्ति मे वर्णित विषय का उल्लेख होता है।

से मिलान करने पर ठीक पाया गया है जैसे अठारह सौ चार (१८०४) मे मरहठो को हटाना, १८०५ मे सलावतखा को परास्त करना, १८०६ मे पठानो पर चढाई करना, दिल्ली लूटना आदि ।

२. युद्ध मे भाग लेने वाली हर प्रकार की सेनाओं की सख्या ठीक दी गई है ।

३. पुस्तक मे दिए गए नाम सब ऐतिहासिक है । जिन मुसलमान मरहठा, जाट आदि ने युद्धो मे भाग लिया उनके नाम इतिहास द्वारा प्रमाणित हो चुके है ।

४. पुस्तक में पाए हुए नगरो के नाम जैसे डीग, कामा, पथैना, नोह सभी उन्ही स्थानो पर आज भी है जिन स्थानो का वर्णन सुजान-चरित्र मे मिलता है । उनमे वताए गए किले भी मौजूद हैं, यद्यपि आज वे खण्डहर हुए जा रहे है ।

५ ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने युद्धो को स्वय देखा था । पुस्तक मे दिए गए वर्णन एक प्रत्यक्षदर्शी की कृति जैसे विदित होते है । कुछ लोगो का अनुमान है कि यह पुस्तक इन युद्धो के दस-बारह वर्ष बाद लिखी गई होगी किन्तु पुस्तक पढने पर ऐसा आभास मिलता है जैसे घटनाओ को प्रत्यक्ष देखने के उपरान्त उन्हे शीघ्र ही वर्णित किया गया हो ।

६ अपनी इस रचना मे सूदन ने कुछ कवियो की नामावली दी है जिसकी संख्या लगभग १७५ है । यद्यपि यह तो नही कहा जा सकता कि नामावली कालक्रमानुसार ही है किन्तु यह मानने मे कोई आपत्ति नही हो सकती कि इसमे उन्ही कवियो के नाम है जो सूदन के पूर्ववर्ती है । इन्ही नामो मे एक नाम सोमनाथ भी आता है । यदि यह सोमनाथ वही है जो सूरजमल के दरबार मे था तो सोमनाथ और सूदन को एक मानना कैसे सम्भव हो सकता है । इसके अतिरिक्त यह भी समझ मे नही आता कि जव सोमनाथ ने अपने सभी ग्रन्थो में अपना नाम सोमनाथ ही रखा है तो फिर केवल 'सुजानचरित्र' मे ही सूदन नाम क्यो ग्रहण कर लिया । इन बातो को देखते हुए इन दोनो कवियो को एक मानना युक्तिसगत नही ।

७ पुस्तक मे कवि अपना, अपने राजा का तथा अन्य व्यक्तियो का वर्णन भी देता है ।

८ इस पुस्तक मे मुसलमानो की वार्ता खडी वोली मे लिखी गई

है, वह भी बहुत साफ और चलती हुई—

'इस वास्ते तुम से अरज बहु भाति कीजत है वली।
अब हाथ उम पर रक्खिये तब लेइ जग फतेअली ।।'

खडी बोली और व्रजभाषा का साथ-साथ प्रयोग ही कुछ आलोचको की भाषा की गडबडो के रूप मे अखर सकता है।

पडित शुकदेव विहारी मिश्र ने पटना विश्वविद्यालय मे 'हिन्दी साहित्य का इतिहास पर प्रभाव' नामक एक भाषणमाला दी थी जो पुस्तक रूप मे प्रकाशित है। इसमे सूदनकृत 'सुजानचरित्र' द्वारा प्रस्तुत जो १८०२ से १८१० वि० तक का विवरण है, उस पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। अपने भाषण के उपसहार मे मिश्रजी का कहना है—

'सूदन का वर्णन १७४५—१७५३ ई० का है और है बडा सजीव। इनका साहित्य बुरा नही है, परन्तु ग्रन्थ का ऐतिहासिक मूल्य बहुत बढिया है, क्योकि कवि ने उस काल का सजीव चित्र सामने उपस्थित किया है। १७३९ मे नादिरशाह ने दिल्ली पर अधिकार कर के लूट एव कत्लेआम किया था। बादशाह दिल्ली का बल १७१७ से ही मृतप्राय था, और नादिरशाह के आक्रमण से और भी ध्वस्त हो गया। प्लासी का युद्ध १७५७ मे हुआ और पानीपत का तीसरा युद्ध १७६१ मे। अतएव उस काल तक अग्रेजो की शक्ति नही चढी थी, न महाराष्ट्रो की घटी थी। ऐसे समय का सजीव चित्र उपस्थित करने से सूदन कवि धन्यवादार्थ है। सूदन तथा ऐसे अन्य कवियो ने हिन्दू शूर-वीरो का सजीव वर्णन कर के उस काल के हिन्दू समाज में सामरिक शक्ति एव उत्साह-वर्द्धन किया। इस प्रकार भारतीय इतिहास के एक अग का इन लोगो ने न केवल चित्र खीचा, वरन् हिन्दू शक्ति अथच् उत्साहवर्द्धन द्वारा इतिहास पर भी भारी प्रभाव डाला।'

यह पुस्तक पूर्ण नही है। हो सकता है सूदन का शरीर न रहा हो, अथवा वे भरतपुर को छोड कर कही अन्यत्र चले गए हो। पुस्तक अवश्य ही अधूरी रह गई। इस पुस्तक मे निम्नलिखित प्रकरण है—

१ असदखान हतनो नाम प्रथम जग।
२ मगलडूगरी-युद्ध-विजय नाम द्वितीय जग।
३ सलावतखा समर विजय।
४. पठान युद्ध उभय वर्णन।
५. अन्य युद्ध।
६ घासहरो विजय।
७ दिल्ली विध्वसिनो नाम।
८ यह जंग अधूरी रह गई है।

यदि यह ग्रन्थ बराबर चलता तो निश्चय रूप से हमे सूरजमल के समय का पूरा हाल मिल जाता। सूरजमल सन् १७६३ ई०, (१८२० वि०) तक रहे।[1]

१. **विजय सग्राम**–षुमाल कवि। इस पुस्तक को पत्र सख्या २२ है। पुस्तक का प्रणयन काल सवत् १८८१ है—

१ ८ ८ १
सवत ससि वसु अप्ट विधु पूरन जय सग्राम।
माघ वदी दममी सुतिथि सुक्रवार विश्राम ॥[2]

आरम्भ मे गणेश स्तुति है—

सु पुसाल हिय नाम (सरस) धरि अति अनूप सोभा सहित।
वर विनय सिंह कूरम कलस करौं सदा सुषसार नित ॥

सर्व प्रथम राजवश का वर्णन सूर्य, मनु, इक्ष्वाकु से किया है। इसी प्रकार आगे वढते वढते—

तिनसुत जोगवर भये राजकाज सिरताज।
मुहवतसिह तिनके भये करो जगत सुभराज ॥
प्रगट भये परताप सुत फैलो जगत प्रताप।
राज करो वह देस लै वीर रूप धरि आप ॥
वषतावर तिनके भये · · ·· · · ·[3]
वषतावर कें सुत भयो विनयसिंह महाराज।
सूरवीर रन धीरधर सब राजनि सिरताज ॥

विनयसिंह की कीर्ति का वर्णन—

चहचही चद ऐसी चरचि चारु चादिनीसी,
चदन सी चवर सी चारु छवि धारी है।
छीर के सील हरि छहरि गई छिति छोर,
छोरनिधि छीहर हू की छकि छवि हारी है ॥

---

[1] इस प्रकार का प्रयास कवि उदयराम द्वारा 'सुजान सवत' नामक पुस्तक मे किया गया है। यह पुस्तक १८२० वि० तक चलती है।

[2] इसी प्रकार पुस्तक के अत मे लिखा है—

'इति श्री श्री महाराव राजा श्री सवाई विनयसिंहजी वहादुर विजयसग्राम सपूर्णम्। श्रीरस्तू। सवत् १८८१ माघ शुक्ला तिथयौ १३ भौमवासरे लिपित भगवान। श्रीरस्तू। शुभभूयात्।

[3] 'तिनके भये' का अर्थ यही लगाना चाहिये कि उनके पश्चात राजा हुए–चाहे दत्तक हो अथवा औरस पुत्र।

वह वही वास वेस वनक वनाय वनी,
वरनत पुसाल वलीपुर हू विहारी है।
धाई सुरलोकन सुहाई ओक ओक चहू।
राजा विनैसिह छाई कीरति तुम्हारी है॥

और भी—

कपत दुर्जन दूरत सिंह सिंहनि सग छुट्टिय।
वृक वराह विकराल बाघिनी छन तरु तुट्टिय॥
मद गयद दलमलत सेस सीसन फन फुकत।
कहत पुसाल दिगपाल धरा भूधर हलि हुकत॥
चढते तुरग वर पग्ग कर धौसा होत धुकार तव।
वषतेम-नद अवतस मनि साजत सहज सिकार तव॥

पुस्तक रचने का कारण—

विनैसिह महाराज नै अग्या करी वुलाइ।
कवि पुसाल रासो सुधरि करियै मन चित लाइ॥

सग्राम का हेतु इस प्रकार दिया है—

बहुत प्रपच रच्यो सवनि बली प्रभू करि हेत।
मिलि जयकिसन नवाव अरु टामी फाटन नेत॥
टामी फाटन नेत कियो सुष दीरघ धरिकै।
राज विगारन काज लाज नेकी कहि करिकै॥
पौरुष वल वहु करै ठौर ठौर मत्रै रहत।
रातद्यौस दुग्गि दुरि फिरत वकत पूछत बहुत॥
वलवत सिह[1] कौ दोस नहि, इन सवहुन को जानु।
वुद्धि कौन की थिर रहत, सगति दोस प्रमान॥

इस युद्ध मे कुछ मुसलमानो ने भी भाग लिया था। इस लड़ाई का वर्णन

---

[1] वख्तावरसिहजी ने थाना ठिकाने के विनयसिंहजी को अपना उत्तराधिकारी चुना। उधर उनकी प्रेमिका से उत्पन्न वलवन्तसिंह अपने को राज्य का अधिकारी वताता था। बहुत झगडा हुआ और उसी का वर्णन इस 'विजय सग्राम' मे दिया हुआ है। इस झगडे का अन्त सवत् १८८३ मे अग्रेजो द्वारा कराया गया। जव राज्य का उत्तरी भाग वलवन्त-सिंह को दे दिया गया तो उन्होने तिजारे को अपनी राजधानी वनाया। १९ वर्ष राज्य करने के उपरान्त वे निस्सन्तान देवलोक सिधारे और तिजारा का राज्य फिर अलवर राज्य मे मिला लिया गया। कवि ने इस सारे वखेडे मे वलवन्तसिंह को दोषी न मान कर उनके साथियो का दोष वताया है।

वहुत वढाचढा कर किया गया है—

मुसल्ला जुरे सब हल्ला ददै ग्रौरल्ला को वहु गल्ला वजाइकै।
यहल्ला की दाढी ग्रौ छल्ला करै सुपल्ला सवारै मुकल्ला उठाइकै।।
विनैसिंह प्रताप के तेजही सो मुल्ला नवाव भये ग्रकुलाइकै।
ग्रल्ला करै वहु भल्ला वचैत ग्ररल्ला दये सब मल्ला घुढाइकै।।

फरकि फरकि गिरि परत घाइ। कुइ चलत भाजि ग्ररु लटपटाइ।।
कुइ चलत धार स्रोणित ग्रनत। कुइ दुहमि परे वोलत नवत।।

गोला गोली परत हैं, जो वर्षा के मेह।
मानस की कह वात है, पक्षी पपन देत।।

दोऊ ग्रोर ग्रनि वनी फौजन की जुरी जहा,
छुटत ग्रराविन कै गोला मय भीत के।
उमडि उमडि ग्राये घुमडि चहू ते वीर,
छत्रिय सरूप धारि जानत सुभीत के।।
कहत पुसाल कवि विनयसिंह महाराज,
ग्रागे लरे सुभट सुहाये नित नीत के।
वडे वडे दाढीवारे सामुहे न ठाढे भये,
गाढे लरे वीर मन वाढे जय जीत के।।

इनकी कविता सामान्य श्रेणी की समझिये। इतिहास से पता लगता है कि यह एक छोटा सा मामला था जिसमे वलवर्तसिंह ने इधर-उधर से सहायता प्राप्त कर राज्य पाने के लिए झगडा किया था। थोड़ी वहुत लडाई भी हुई ग्रौर ग्रन्त को ग्रग्रेजो ने वीच-वचाव करा कर राज्य का वटवारा करा दिया था। कवि इस घटना को सधि हुग्रा कहते हैं ग्रौर इसे विनयसिंहजी की विजय के रूप मे मानते हैं—

मोहत वैठ ममद पर, विनयसिंह महाराज।
जैसे सुरपुर लोक मे, राजतु है सुरराज।।

इस युद्ध मे रामू षवास, ठाकुर ग्रभयसिंह, वलदेव दीवान ग्रौर कुवरमल्लजी ने राजा का साथ दिया था। युद्ध के समाप्त होने पर राजा की ग्रोर से इन्हे सिरोपाव दिए गए—

सिरोपाव वहु देत ग्राज। यह विनयसिंह सुभ राजु साजु।।
मव सिरोपाव ले कै पवास। पहुचि ग्राय ग्रलवर मवास।।

यद्यपि एक छोटा सा ही प्रसग था किन्तु कवि ने इसे वढा कर एक वडा युद्ध खडा कर दिया है। परिणाम भी राजा के विपरीत ही था किन्तु कवि ने उसे एक 'विजय' माना है। इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्त्व

कम ही मानना चाहिए। सुजानसिंह और प्रतापसिंह से सम्बन्धित ग्रथ—'सुजान चरित्र' और 'प्रतापरासो' अपेक्षाकृत कही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और मत्स्य-प्रदेश की ऐतिहासिक काव्य-परम्परा के वास्तविक प्रतीक है। इसी प्रकार एक अन्य ऐतिहासिक काव्य 'यमन विध्वस प्रकाश' भी इतना उत्कृष्ट नही ठहरता।

४. यमन विध्वस प्रकास– इसके रचयिता है उमादत्त 'दत्त'। ये महाराज शिवदानसिंहजी के समय मे थे। इस पुस्तक के पढने से पता लगता है कि एक बार शिवदानसिंहजी ने यह विचार किया कि सभी राजपूतो को उनकी जागीरो से हटा दिया जाय और उन्हे राज्य मे मिला कर अपने काबू मे कर लिया जाय। मन्त्रियो ने ऐसा न करने की बार-बार प्रार्थना की किन्तु राजा न माना। अन्त मे सारा मामला पोलिटिकल एजेट के पास गया और केडल[1] साहब को भेजा गया। कवि ने लिखा है—

जाते छाये तुरक तमाम अलवर बीच,
ठौर ठौर अधिक अनीति अनुसरते।
छूट जाते करम धरम नेम आचरण,
वरन विवेक कोउ धीरज न धरते॥
दत्त कवि कहै प्रजा पोडित विकल ह्वै कै,
सत्ति होडि पातक पयोधि बीच परते।
साहब सुजान वली कैंडल अजट वीर,
या विधि सपूती मजबूती जो न करते॥[2]

इसके पहले शिवदानसिंहजी ने कहा था—

जेते गढ जगी जगी गव्वर गनीम जेते,
जुद्ध करि मारो सवै जेर करि राखो मे।
भूमिया जितेक छीन लेहू सब ही की भूमि,
छार करि छिन मे सुजस अभिलाखो मे॥
दत्त कवि कहै यों कहत सिवदान भूप,
सभु की दुहाई वैन सत्य करि भाषो मै।
छोटे बडे वीर धीर साहसी जागीरदार,
जाति रजपूत नरु खड मे न राखो मै॥[3]

---

[1] केडल साहब के नाम पर स्थापित अलवर का केडलगंज विख्यात है।

[2] केडल साहब सवत् १६२७ मे अलवर आए।

[3] कहा जाता है यह सारा झगडा मुशी अम्मुजान के कारण हुआ। इनके बहकाने पर ही राजा ने ऐसी नीति की घोषणा की। राजा के भाई, बेटे, जागीरदार आदि सभी ने उनका विरोध किया और 'रामदल' नाम से अपना सगठन किया। विशेष वर्णन अन्यत्र देखें।

केडल साहब ने अच्छी नीति से काम किया और राजा को तथा रामदल के लोगों को काफी समझाया। अन्त में राज्य का सारा कार्य अपने जिम्मे ले लिया। कवि ने साहब के शब्दों को खड़ी बोली में लिखा है—

साहब का वचन

कौन बिगार महीप कीयो केहि कारन फौज घनी भरते हौ।
हद मच्यौ सब देस विवे सब सेन कलेसन क्यों करते हौ॥
आप कहौ सो करें हम न्याय, निमक सुधीरन क्यौं धरते हौ।
बंधु विरोध बढाय वृथा अब जुद्ध कहौ तुम क्यों करते हौ॥

वास्तव में शिवदानसिंह बहुत जिद्दी था और इसी कारण उसके भाई-बेटे सब उसके खिलाफ हो गए थे। उसकी 'हठ' के बारे में कवि ने लिखा है—

मानस अधिक अध्यार चन्द्रमा चार प्रकाशै।
उलटि गंग बर बहै कामरितु प्रीति बिनाशै॥
तजै गवरि अर्धंग अचल ध्रुव आपन चल्लै।
शंकर फन फुक्करैं काल हूकरैं उतल्लै॥
मर्जाद छोड सातों समद दौरे दसहू दिसान को।
छूटे न तदपि कविदत्त कहि हठ महीप शिवदान को॥[1]

---

[1] दत्त के कुछ अन्य कवित्त देखिए जिनसे इनकी उग्रता दिखाई देती है—

१ खाट खटूल भई महँगी अति फाल कुदाल तमाम भईंगो।
मेख बिदूक सिदूक किवाड सो दातरी बाकरी दाम हईंगो॥
हे करुणानिधि कीनी कहा यहि सोचे बिना नहिं पूरी पडैंगो।
खाती लुहार भये मुनशी अब मादरी फादरी कौन घडैंगो॥

२ गूजरमल स्वामी भये, भगिन के सिरदार।
करें सफाई शहर की, भ्प्टा खाय अपार॥
भिप्टा खाय अपार मूत मौरिन को पीवैं।
भये जात ते भ्रप्ट विप्र तिनको नहिं दीवैं॥
कहै दत्त कविराय भये भूतल तें ऊजर।
कुपढ कलकी कूर कुटिल ये स्वामी गूजर॥

३ जाट जुलाहे जुरे दरजी मरजी मैंचक और चमारौ।
दीनन की सुधि दीनी बिसार सो येकहु बार न लेत बुहारौ॥
को शिवलाल की बातें कहै दिनरात रहै इनही को अखारौ।
ये ते बडे करुनानिधि को इन पाजिन नैं दरबार बिगारौ॥

[शेष पृष्ठ १९३ पर देखिए]

[शेष पृष्ठ १९२ का]

४. भीर भरी रहै भाडन की नित आवै घनी गनिका गुनवारी।
चारन भाट कलावत टोली मचावत द्वारै कोलाहल भारी॥
मागन वारै षराव करै कवि दत्त बडे जस के अदिकारी।
दारी वड़ो दुख तदे अजी हमे च्यार दिना ते मिली सिरदारी॥

इस कवि मे उग्रता, व्यग्य, भाषा-पटुता, साथ ही अवसरवादिता आदि बाते पाई जाती हैं। अवसर को देख कर शिवदानसिंह, महताबसिंह, कायस्थ आदि की प्रशसा भी करते रहते थे। इनकी कविता सुन्दर और सशक्त है तथा भाषा स्वच्छ और अलकृत। दो एक उदाहरण देखिए—

हीरा—

षानि ते कढ्यो है परसान पै चढ्यौ है फेरि,
कचन मढ्यो है त्यौं अनूप ज्योति जाग्यो तै।
कीमत वढ्यो चढ्यो कर मे प्रवीनन के,
आदर अपार पाय प्रेम रस पाग्यौ तै।
दत्त कवि कहै लग्यो मुकट महीपन के,
हार वनि कामनि हिये मे अनुराग्यौ तै।
यें हो सुन हीरा भयो जगत जहीरा मूढ,
ताहू पै नेक ना कठोरपन त्याग्यो तै॥

तगादगीर—

थर थर कापे देह देखत तगादगीर,
सिथिल सरीर, बुद्धि धीर न गहत है।
कामनी कलेश करै घर मे हमेशा हाय,
सेवा करियै कौं चित नेक न चहत है॥
दत्त कवि कहै जाके सिर पै करज होत,
कस कर छाती निसिवासर दहत है।
चोरन मे गनती करत सब लोग, ताही
सौं साहूकारन मे साखी ना रहत है॥

झाली महारानी की मृत्यु—

प्यारी भूप भारी दुलारी भूप भारे की सु,
भारी गुन मडित दुनी के ओक ओकन मे।
भारी सनमान सान सीतलता सुजानपनो,
भारी दान दोलति लुटावति अरोक मे।
दत्त कवि कहै धन्य झाली महारानी जग,
जाकी प्रभुताई सौं समाने शत्रु शोक मे।
छाजी छवि सुमति दराजी कलि कीरति कै,
राजी करि राजहि विराजी देवलोक मे॥

घमासान लडाई—

चली चारु वदूम चारौं दिशा तें।
परे वीर ह्वै वीरता की निशा तें॥
कढी सूत्र समसेर है दामिनी सी।
लखी खेत में काल की कामिनि सी॥
कटे केतकी केतकौं धीर तज्जै।
धरा छोडि पाजी मुसलमान भज्जै॥[1]

इस युद्ध में तोपखाना छीन लिया गया, और आग लग जाने के कारण बहुत से लोग मारे गए। वर्णन की उत्कृष्टता और युद्ध की भयानकता स्थान-स्थान पर लक्षित है।

५ **वीरता सबधी कुछ स्फुट छंद**— अनेक कवियो के युद्ध सम्बन्धी छद स्थान-स्थान पर विखरे हुए पाए गए। इनमे जहा राजाओ की वीरता का वर्णन है वहा उस समय के सघर्षमय वातावरण का भी एक चित्र मिलता है। उदाहरण-स्वरूप कुछ छन्द दिए जा रहे हैं—

१ कवित्त वत्तीसा असदखा की जग कौ—

उद्धत असदखा युद्ध को निधान जान,
लैन उनमान फतेअली ने पठायो हूत।
कहियो नवाव सो सलाम मे भी हाजर हो,
जानत न थोल दर पुस्त इह मेरा कूत।
इधर न आवो तो महर फुरमावो मुझे,
वदे हम साहि के हमेसा हमे तुम्हें सूत।
पातर न आवै तौ सु वाही वंदा वदगी मे,
मौला जिसे देहिगा रहैगा षेत मजवूत॥

---

[1] इस युद्ध मे राजा ने मुसलमानो से सहायता ली, किन्तु यह सहायता मिलने पर भी राजा को हार खानी पडी। चारो ओर वदअमनी फैली और राजा ने राज-काज छोड दिया। उसी के परिणामस्वरूप केडल साहव आये। इस झझट को वढाने वाले मुशी अम्मूजान की हवेली अभी तक राजगढ मे मौजद है। इन मुन्शीजी के सम्वन्ध मे एक जनोक्ति प्रसिद्ध है—

अम्मूजान की वाकरी, चर गई सारौ खेत।
लखजी के पाले परी, खाग्यौ खाल समेत॥

'लखजी' रामादल के एक प्रसिद्ध वीर थे

२. दिल्ली की लूट के कवित्त—

लाल दरवाजे पर सूरज सुभट गाजे,
ताते ताते वीर हथ्थ आयुध दराजे हैं।
भाजे पुर लोगन कपाट दरवाजे दीने,
अरघ भुमडिनु के उद्धत अवाजे हैं॥
यहू सरवाजे छरवाजे लम छर वाजे,
वाजे वाजे भाठिन सौं फोरै सिरसाज हैं।
जग के लराजे उमराजे लहि छाजे ओट,
केते लोट पोट मिले आजे पर आजे है॥

वरनो कहा लौं भुवलोक मे जहा लौं भई,
दिल्ली मे तहा लौं वानी सूरज-प्रताप ते।
मुगल मलूकजादे सेष वे सलूक प्यारे,
सैयद पठान अवसान भूलें लापते॥
आया रोज कामत मलामत सें पाक हुवे
रहेंगे सलामत पुदाई आप आप ते।
जार जार रोती क्यो वजार मीरजादी यारौं
जिनका छिपाउ महताव आफताव ते॥

३. महाराज रणजीतसिह और फिरगी—

(अ) सुरपुर भवन भरथपुर देवन को,
काहे काज आये हो फिरगी सूरछत्ता मे।
धरि कै नसैनी चढ्यौ कुरसी तमूर लियौ,
कीये मन मोरे गोरे सुरत चकत्ता मे।
उठे वृजलाला हकारि हाथ हाथर लै,
हिम्मत करस लोह लगर लरत्ता मे।
कहत परसिद्ध महाराज रणजीतसिह,
धाय धाय धामे पग आगे ही धरत्ता मे॥

'परसिद्ध' द्वारा लिखे ऐसे अनेक छद मिले। इन छदो मे निम्नलिखित एक पांचवी पंक्ति और पाई जाती है—

भेजी फोरि पटक पछार खाती षमन सौं,
रेजी अगरेजन की रोवें कलकत्ता मे।

(आ) षेलत फुलता मता जोर जसमत्ता के,
पिनारे निदारि कलकत्ता रौर पारेंगे।
सुजार मीरषान से पठान जठे तुम्हारे प्रान,
लैन कौं कृपान वान मारेंगे॥

कपि कपि कपिनी पुकारत अगरेजन पै,
अग अग अग सौं त्रिभग करि डारेंगे।
हल्ला मे हारेंगे फिरगी हजार भाति,
जालम जटा के कटा करि डारेंगे॥

(इ) धायौ कलकत्ता ते भरत्ता भारी फौजन कौं,
पूरव को दानौ आय वज मे भलूकरा।
चौंके द्रगपाल छत्रधारी महि मंडल के,
जैपुर उदैपुर उठाय आयौ लूगरा॥
माचोरी कौ राव[1] सो तो जग मे जनानौं भेप,
करि पहिरै कर चूरौ अनवट घूघरा।
कहत परसिद्ध महाराज रनजीतसिंघ,
सत्रै हजार दल मारे भट भूगरा॥

इसके वाद पांचवी पंक्ति यह है—

तेगनते तोड डारे मूड अंगरेजन के,
परे रहे पेत में भिखारी के से कूनरा॥

(ई) माचौ घमसान कोस तीन लो लोथि परी,
झरि गये सूर माचे मुहरा अगार तें।
वाई यो भुजा ते मार कीनी जसवत राव,
परे रहे रुंड मुंड लगि वे मलाहि ते[2]॥
कहत जसराम अगरेज जग हारि गए,
जीते जदुवसी सूर लरत उछाह ते।
दोऊ दीन जानौ म्हाराज रनजीतसिंह,
हारि मे फिरगी फन पट क्यो मिलावते॥

(उ) अरे फिरंगी अयान, यहा ते उठि जा रे गुलाम,
ह्या फने नही पावेगा।
ये है गढ भारा, जैसा दूसरा सितारा,
या का राम रखवारा, गोदी हाथ नही आवैगा।
ये हैं जदुवस, इनमे राजन कौ अंस,
इन मारयौ मथुरापति कंस, गोदी तोहू कू नवावेगा।
यो मति जानै जट्ट है थोरे इनके,
घु दछिन वुलाय तेरे डेरे लुटवावेगा।

---

[1] भरतपुर के महाराज रणजीतसिंहजी का शासनकाल सवत् १८३४ से १८६२ वि० है। इस समय अलवर मे विनयसिंहजी का शासन था।

[2] 'मलाह' नाम का एक छोटा गांव भरतपुर नगर से विलकुल लगा हुआ है।

(ऊ) गोरेन की बीबी डकराय के पुकार करे,
भागो हो कथ जसमत चढि मारेगा।
आनि परे वृजभूमि भोरे काहू और ही के,
वही वृजवारा तेरी भुजा कू उखारैगा॥
अडे सूरवीर तेरे गोलान कू गिनत नाहि,
लै के सम्सेर जोधा जोधन कू पछारैगा।
उरक तिलगी चपरासी सब हारि गए,
जसमत औतार कलकत्ता लौ रौर पारैगा॥

४ दिल्ली-दुलहन—

आगे ते सरस साजे सबल जडाऊ साज,
बाजै दीह दुदभी अवाजै जीति वासे कौ।
तेज मुप मरवट से हटौ परताप पुज,
ओज कर ककन है पग्ग रग रासे कौ।
लगन बसत-पाचे उलझत दौनो दिसा,
नृपति बराती सर्व सहर तमासे कौं।
दुलहन दिल्ली पौर तोरन कौ मार,
वृजदूलह बलवत आये डेरा जनवासे कौं॥

इन कवित्तो मे रणजीतसिहजी के समय मे अग्रेजो द्वारा भरतपुर का किला जीतने के लिए किए गए युद्धो से सम्बन्धित प्रसग है। इतिहास मे सुविख्यात है कि भरतपुर किले का घेरा अग्रेजो को बहुत मँहगा पडा। चार-चार बार आक्रमण करने पर भी जब किला किसी प्रकार सर नही हुआ तो कूटनीति और छलबल से इस किले को लिया गया।

युद्ध-साहित्य मे कुछ पुस्तके वास्तव मे उत्कृष्ट है इनमे सूदन का लिखा 'सुजान चरित्र' तथा जाचीक जीवन का 'प्रतापरासो' विशेप उल्लेखनीय है। इन दोनो का ही ऐतिहासिक महत्त्व है और इनमे वर्णन-विविधता भी मिलती है। इस युग मे कुछ साहित्य ऐसा भी रचा गया जिसमे अतिशयोक्ति है, इनमे 'विजयसग्राम' और 'यमनविध्वसप्रकास' के नाम लिए जा सकते है। स्फुट छदो मे जाटो के आतक का वर्णन है। जाट और अग्रेजो की लडाई न केवल इतिहास मे एक महत्वपूर्ण पृष्ठ है वरन् साहित्य मे भी उस समय की वीर तथा रौद्र रस पूर्ण कविताए अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

मत्स्य प्रदेश मे कुछ कथा-साहित्य भी उपलब्ध होता है। भक्ति से सबधित कथा-साहित्य का वर्णन अन्यत्र हो चुका है तथा हितोपदेश आदि की कथाओ का वर्णन अनुवाद के प्रसग मे होगा। महाराजा विक्रमादित्य से सम्बन्धित बहुत

सी कथाए प्रचलित थी जिनमे सिंहासन बत्तीसी तथा पंचदण्ड कथा बहुत ही प्रसिद्ध है। अनेक कवियो ने इस दिशा मे प्रयास किया। इन कहानियो द्वारा नीति और वीरता दोनो का ही प्रतिपादन हुआ जिनके लिए विक्रमादित्य का नाम विश्व मे विख्यात है। एक प्रकार से विक्रम-साहित्य विश्व-साहित्य मे नीति और न्याय का प्रतिनिधित्व करता है।

प्राप्त सामग्री मे से कुछ का उल्लेख यहां किया जा रहा है—

१ सिंहासन बत्तीसी — अखैराम कृत
२ विक्रम चरित्र — वैद्यनाथ कृत
३ विक्रम विलास — अखैराम कृत
४. विक्रम विलास — गणेश (विक्रम-बेताल) कृत
५. सुजान विलास — सोमनाथ कृत

सिंहासन बत्तीसी— विक्रम-विलास और सिंहासन-बत्तीसी लगभग एक सी कृतिया है। सिंहासन बत्तीसी मे अखैराम ने अपना परिचय आदि नही दिया है किन्तु 'विक्रम-विलास' के नाम से इन्ही की लिखी जो हस्तलिखित प्रति मिली उसमे कवि के जीवन से सम्बन्धित कुछ बातो का पता लगता है। अखैराम द्वारा लिखी सिंहासन बत्तीसी की अनेक प्रतिया पाई गई जिनमे पाठ भेद के अतिरिक्त और भी कुछ घटा-बढी मिलती है। सिंहासन बत्तीसी मे कवि ने अपने सम्बन्ध मे कम लिखा है—

गणपति सुमिरो सारदा, श्री वल्लभ सिर नाय,
राधा मोहन ध्यान करि, विक्रम यसहि बनाय।
श्री विक्रम नरनाह की, सुजस कथा बत्तीस,
भाषा करी बरनो तिनहि, कृष्ण चरण धरि सीस॥

यह काव्य 'दीर्घ' (डीग) में लिखा गया था—

मथुरा मडल देश मे, निज बृज मध्य सुथान।
अति ही दीर्घ सुहावनो, अमरपुरी अनुमान॥

डीग (दीर्घ) का विस्तृत वर्णन किया गया है—

चहु ओर सघन सुवास। जगमगत जोति प्रकास॥
अति ही ललाम सुग्राम। चहुधा विचित्रित धाम॥
झलकें अमद अवास। जुत चन्द्र लाज प्रकास॥

डीग के बाग का सुन्दर वर्णन मिलता है। भवनो के पास का यह बाग काफी अच्छा था। अब उसके स्थान पर पेड़ो को कटवा कर लॉन लगवा दिया

गया है। इस बाग मे पहले फल-फूल वाले अनेक प्रकार के पेड थे और कवि ने भी लता, वेलि, फूल, फल, वृक्षो आदि का वर्णन किया है। वर्णन करते समय कवि को ऋतु-कुऋतु का ध्यान नही रहता। यह उस समय की प्रचलित प्रणाली थो जिसका आभास कभी-कभी अब भी मिल जाता है, जैसे—अयोध्यासिंहजी के 'प्रिय प्रवास' मे। एक वर्णन देखिये—

तिंहि नगर कूल । वह बाग फूल ॥
केतकि गुलाब । चमेलि दाब ॥
करुना तुही सु । करवीर ही सु ॥
सौगध राय । गुलपँस जाय ॥
गुल्लाल जाल । रविमुप नाल ॥
गुड़हर सुचेत । सत गर्व षेत ॥
नरगस नवीन । करना सु कीन ॥
झुकि रामनेलि । चम्पा सुहेलि ॥
नागेस चारि । फूली निवारी ॥
हरिचक्र भूप । मजरिय रूप ॥
नारिंग नार । कटहर सुठार ॥
श्रीफल करौंद । जह नूत गौद ॥
पुगी फलानि । लीची इलानि ॥
वल्ली सुनाग । लौगनि सुहाग ॥
जामिनि रसाल । इमली विसाल ॥
अश्वत्थ कूल । वट वृक्ष मूल ॥

डीग के 'तालाब' का भी अच्छा वर्णन है। यह तालाव आज भी उसी तरह पूरे साल पानी से भरा रहता है और डीग-निवासियो के स्नान का सुन्दर साधन है।

मकरद वरषत जैन। घुमडें अवीर सुफ़ैन ॥
वहु मीन तरल तरग। रवि किरनि परसि परग ॥
चहु ओर बाग विसाल [विळास]। कृत कोकिला कलहास ॥
तिंहि देपि कें सुष होत। उपजै सु आनद स्रोत ॥[1]

नगर-वर्णन के उपरान्त राजवश का वर्णन है और भगवान विष्णु से भरतपुर के राजाओ की वशावलो आरभ की गई है—

नारायन की नाभि ते, चतुरानन अवरेषि।
अत्रि भयौ ता दृगन तें, ता द्रग चद विसेषि।

---

[1] डीग के भवन, तालाव आदि की सुन्दरता सर्वदा से रमणीय रही है। वर्तमान सरकार का ध्यान भी इस ओर गया है और इसे पर्यटको का विश्राम केन्द्र बनाने की दिशा मे प्रयत्न जारी है।

ताही जदुकुल बस मे, विविक साप के अंत ।
प्रगट भये जदुबस मे, श्रीपति श्री भगवत ।।

उसके उपरान्त प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि—

ताके कुल मे भूपति, किते भये, गए सुरलोक ।
ब्रज भगवत ता वस मे, उपजे सुष के नोक ।
ता ब्रजराज के सुत प्रगट, भावसिह नरनाह ।
ताके भए बदनेस सुत, अनगन गुननि अथाह ।।
× × × ×
ज्यो बदनेस पवित्र घर सूरजसिह कुमार ।।

इस पुस्तक मे सूरजमलजी की बहुत कुछ प्रशसा लिखी गई है । इनकी प्रशसा में कवि ने एक अन्य पुस्तक 'सुजान विलास' भी लिखी है जिसकी ओर कवि ने इस पुस्तक मे सकेत किया है—

प्रथम सु ताहि असीस करि, उपज्यौ हियें हुलास ।
सूरजमल के नाम कौ, रच्यौं सुजान विलास ।।

इसके पश्चात् कथा का आरभ होता है ।[1] पुस्तक समाप्त होने का समय १८१२ वि० है—

ठारह से बारह गनौ, सवत्सर घर सूर ।
सावण वदि की तीज कौ, कियौ ग्रथ परिपूर ।।

प्रत्येक कहानी के पश्चात् निम्न चार पक्तिया दी गई है—

बदनेस श्री जदुवस भूपति सकल गुणनिधि जानियै ।
जिहि अरिन के बल पड कीने कृष्णभक्ति वषानियै ।
जिहि सुवन लाल सुजानसिंघ विलास कीरति छाइयै ।
कवि अर्पराम सनेह सौ पुतरी सिघासन गाइयै ।।

इस प्रकार के बत्तीस अध्याय है । पुस्तक के अन्त मे लिखा है—

'इति श्री सिंघासन बत्तीसी कवि अर्पराम कृते नाम द्वात्रिंशतमो ध्याय: ३२ मिती फागुन वदी १० मे समाप्त भयौ ।।'

जो हस्तलिखित प्रतिया मिली वे अनेक व्यक्तियो के लिए लिखी गई हैं । उदाहरण के लिए एक के अन्त मे लिखा है—

'पुस्तक लिखी चिरंजीव लालाजी श्री कलूरामजी के पठानार्थम् सुभचितक गुसाई बालगोविंद के हस्ताक्षर शुभ भूयात । श्री श्लोक सख्या २००० पत्र सख्या २५० ।'

---

[1] इस स्थान पर किसी ने हाशिये पर लिखा है 'अन्य प्रतियों मे कवि परिचय भी है'। इसका विवरण 'विक्रम विलास' के अन्तर्गत दिया जावेगा ।

'श्लोक' का अर्थ 'छद' ग्रहण करना उचित होगा ।

सिंहासन की मूर्तियो ने बत्तीस कहानिया कही—

पुतरी बत्तीसो कही, प्रगट कथा बत्तीस ।
जो तू ग्रैसौ भोज नृप, करै कृपा जगदीस ।।
कहि के कथा प्रगट भई सिगरी ।
सजि सजि देव लोक को डगरी ।।
धनि धनि भूप हमे सुख दयौ ।
तुम परताप साप मिटि गयौ ।।
भूपति वचन उचार्यौ ग्रैसै ।
को तुम साथ भयो है कैसै ?

यह एक ऋषि के शापवश हुआ था, क्योकि ये पुतलियाँ उसके ऊपर हँस गई थी ।

यह हस्तलिखित प्रति बहुत पुरानी है परन्तु अक्षर बडे सुन्दर हैं । डीग और वैर के दरबारो मे कवियो का बडा सत्कार होता था और राजा के ज्ञान तथा मनोविनोद की वृद्धि करते हुए ये कवि साहित्य-सृजन मे लगे रहते थे । कवि का ज्ञान बहुत विस्तृत है, साथ ही उसको सख्या गिनाने का भी शौक है । मिठाई, पकवान, वृक्ष, फल आदि के वर्णन बहुत विस्तार के साथ किये गये है । इस ग्रन्थ से अखैराम की बहुत प्रसिद्धि हुई ।

प्रत्येक अध्याय के बाद सुजानसिंहजी की प्रशंसा लिखने की वही प्रणाली इस पुस्तक मे भी है जो सूदन रचित सुजानचरित्र मे मिलती है । अन्तर केवल इतना ही है कि सुजानचरित्र मे उस छद की चतुर्थ पंक्ति मे वर्ण्य-वस्तु का वर्णन होता है और सिंहासन बत्तीसी मे ये चार पक्तिया ज्यो की त्यो दी गई है ।

३. **विक्रम विलास**—मे कवि ने अपने सबध मे भी कुछ बाते लिखी है—

भोज नगर जमुना निकट, मथुरा मडल माझ ।
तहां भए भीषम सुकवि, कृष्ण भक्ति दिन साझ ।।
ताकें मिश्र मलूक पुनि, श्रुति सुन्दर सब अग ।
खोजत वेद पुरान सब, कियौ नही चित भग ।।

उनके गोविंद, पुन क्रमश· दामोदर, नाथूराम, जगतमणि और उनके—

अर्षैराम ताके भयै, सहिस कविन अनुसार ।
जो कछु चूक्यौ होइ तो, लीजै सुकवि सुधार ।।

अपने आश्रयदाता के बारे मे भी लिखा है—

जदुकुल भार धरिबे को भयौ सेस जैसे ,
प्रबल प्रहार करिबे को द्विजराज सो ।

रामकुल दीपक सौ असुर विहडवे को,
दुष्ट अरि षडिवे को गरुड समाज सो।
दानगुन गायवे को, दिनकरनद जैसो,
अरि गज राजनि को सिहन की गाज सो।
वदनेस-नदन सुजान 'अपैराम' कहै,
कविन-रिझायवे को भोज भयो लाज सो॥

अपैरामजी की आशीर्वाद देने की प्रणाली देखिए—

चित धरि अष्ट सु अक ताह वत्तीस गुनीजै।
दुगुन करौ पुनि ताह त्रगुन पुनि ताह भनीजै॥
अरध अक कर हीन शेष सो त्रगुन फलावहु।
वेद अंक सग धरहु भाग अष्टम चितवावहु॥
ऊपर अंक जो चित रहत, कविता गुन सो तिनहि घर।
आठो सिद्ध वसो तहा, फिर सुजान निज तुव घर॥

इन अंको को यदि कवि के कहे अनुसार रखते हैं तो इस प्रकार आता है—

$$\frac{\overset{८}{८\times३२\times२\times३}}{२\times३\times४\times८}$$ इसको हल करने से ८ आता है।

'आठो सिद्ध' वसाने की यह एक वडी ही विचित्र प्रणाली है।

अव एक वर्णन भी देखिए—

कोल के पाछे लग्यो नरनाथ, गयो वोह कोल सुवेल वटावें।
कदर अंदर द्वारे के वार, उहाई धस्यो सु अध्यारी घटावें॥
हानन सों वृक टोइ नरेस, क्यो पुनि ओर ई लोक छुटावें।
ऊचे अवास परे झनकें, ललके मनि मोतीन लाल अटावें॥

पुतलियो की कहानी मे मूहूर्त सोधने की वात वार-वार आती है—

ओर महूरत सोधिके, पुनि पग धरत भुवाल।
जैसे नाइक पूतरी, वोली वचन रसाल॥
जो तू विक्रम की सम आहि। वैठि सिहासन पै अवगाहि॥
कैसो विक्रम भयो नरेस। असनि मध्य जानो असरेस॥

ओर फिर कहानी शुरू हो जाती है—

एक समै इक जोगी आयो

इत्यादि।

इसी पुस्तक की एक अन्य प्रति तुह[ल]सीरामजी[1] के लिये लिखी हुई और पाई गई। अलवर मे भी इसकी कई प्रतियां मिली। डीग के बारे मे लिखा है—

रजधानी जदुवस की, व्रजमडल सरसाति।
इदुपुरी अमरावती, तिहि सम कही न जाति॥

अपने सवध मे कवि लिखते हैं—

श्री विक्रम नरनाह की, सुजस कथा वत्तीस।
भाषा करि वरनो तिन्हें, कृष्ण चरण धरि सीस॥
जितियक मेरी वुद्धि है, तिहि सम कही वनाइ।
छिमित होउ कविराज सव, चूक्यौ लेउ वनाइ॥

३. एक अन्य **विक्रम विलास** मिला है जिसके रचयिता 'गगेस' हैं। यह ग्रन्थ बहुत पहले लिखा गया था, इसका निर्माणकाल सवत् १७३६ है—

सवत सत्रह सै वरस, बीते उनतालीस।
माघ वदी कुज सप्तमी, कीनो ग्रन्थ नदीस॥

और अन्त मे लिखा है—

'विक्रम विलास गगेस कृत, तव लग या जग थिर रहै।'

इसमे 'विक्रम-वैताल' की कथाओ का उल्लेख है। यह पुस्तक अलवर राज्य की स्थापना से पहले लिखी गई है और इसे श्री वलवतसिंहजी के पठनार्थ माचाडी मे लिखा गया था।[2]

४. **विक्रम चरित्र पचदड**—कथा को सोमनाथ के वशज वैद्यनाथ ने लिखा। इस पुस्तक का समय लेखक ने इस प्रकार दिया है—

ठारह सै चोरासिया, भादा शुक्ल सुपक्ष।
मगलवार चतुर्दसी, भयौ ग्रथ प्रत्यक्ष॥

श्रीमाथुर-कुल-मुकुट-मणि सोमनाथ कवि-वस वैद्यनाथ कवि विरचितो विक्रम दड प्रसग॥

इस पुस्तक के प्रथम चार पत्र नही है। २१वे छद से पुस्तक का आरम्भ होता है। इसमे उन पचदडो की कथा है जो विक्रम की सास दमनी के कहे अनुसार विक्रम द्वारा प्राप्त किए गए थे—

१. विजै दंड, २ सिद्ध दड, ३. तमहरन दड, ४. काम दड, तथा ५ विषहर दड।

---

[1] पुस्तक लिषायतं लालाजी श्री धर्ममूर्ति धर्मावतार हरि गुरु सेवा परायण श्री तुहसीरामजी ने। सवत् १६११।

[2] 'श्री श्री श्री श्री श्री वलवतसिहजी लिषत शुभस्थाने माचाडी अलवर मध्य देवा वागवान माली।' इस माली ने अनेक पुस्तकें लिपिवद्ध की।

दमनी अपनी पुत्री का विवाह विक्रमादित्य के साथ उसी अवस्था मे करने को तैयार थी जब पाचो दड जीत लिये जाये। दमनी के प्रोत्साहन पर विक्रम ने ऐसा ही किया और दमनी को सन्तुष्ट किया। अन्त मे—

दमनी ने कियो है तिलक सीस विक्रम के,
दीनी है असीस यो अनेक साल जीजिये।
पढि कै विरद कह्यौ अति ही प्रताप होउ,
सूरज तपै ज्यो तपो आनद मे भीजिये।।

नृपति विक्रमादित्य कौं, जयमाला लै साथ।
विषहरदड समेत पुनि, रत्न-डबा लै हाथ।।
अपनी दमनी सास ढिग, ठाडौ भयौ सु आय।
कृपा तुम्हारी तै इहा, पाचो दड मिलाय।।

इस पर दमनी ने विक्रम को उपदेश दिया था—

"बडी वह छोटी यह दोउ एकसीनि धरि।
इनपे कृपालु ह्वै घनेरी कृपा कीजिये।।"

इन दडो के जीतने मे विक्रमादित्य को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा था। सिद्ध दड की कठिनाई देखिये—

तौ महाराज सुनौ षमाइत देस माहि इक नगर वरन मे।
सौ पारापुर नगर सिंघु के पार तहा नृप सोमपाल है।
ता पुर माहि सोमसर्मा इक द्विजवर सौ अति बुधि विसाल है।।
तिहि ग्रहणी को नाम उमादे तेके त्रेसठि शिष्य पढत है।
औरहु एक सिष्य की इच्छा तनके चितमे भाव चढत है।।
तहा होय चौसठवे सिष्यों तुम करो सिद्ध कारन संपूरन।
राजा कही भले यौ करियौ दमनी निज ग्रह गमनी तुरपुर।।

प्रत्येक दड के प्राप्त करने मे ऐसी ही कठिनाइयां थी, किन्तु विक्रम ने अपनी चतुराई से पाचो दडों को प्राप्त किया। इन दडो को प्राप्त कराने मे दमनी का बहुत योगदान रहा, उसी ने विक्रम को उपयुक्त स्थानो मे जाकर दड प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया। पाचो दड प्राप्त करने पर ही दमनी प्रसन्न हुई और अपने हाथो से विक्रम के सिर पर टीका किया।

प्रत्येक दड को प्राप्त करने पर विक्रम दमनी को बुलाता और अगले दड को प्राप्त करने का उपाय पूछता।

जवै नृप जीतिय चारिहु दड । उजैंन पुरी मधि आय प्रचंड ।।
सभा रचि बैठि सिहासन मध्य । उछाह भयौ हिय मे हित सध्य ।।

बुलाय तवै दमनी निज सास । जुहार कियौ कहि वेंन प्रकास ।।
जहो दमनी तु कृपा तुव पाय । विजै किय चारिहु दड जु आय ।।
अवै जिमि जीतहु पचम दड । उपाव जु मोहि वतावहु चंड ।।

तवै दमनी नृप को वहु भाँति । दई वहु आसिष ही हुलसाति ।।
तवै दमनी जु कहै समुझाय । वतावहु पचम दंड उपाय ।।
है समुद्र पार मे, एक षमाइच देस ।
तामे नगरी एक है, पाच नाम तिहि वेस ।।

और उसके पाच नाम—

चपावती नगरी कहे सीलवती कहियै अही ।
अमरवती पुष्पावती भोगावती कहियै सही ।।
इहि भाति ताके नाम पाचहु तहा आप पधारियै ।
जैकर्न नाम सुभूप ताको करत राज निहारियै ।।
ता नृपति के सिदूषचा इक भरयौ रत्ननि कौं लसै ।
ता माहि विपहर दड है तिहि लेहु तुम लहि कै जसे ।।

नृपति को अग्याहि दै दमनी गई निज धाम कौ ।

५. सुजान विलास—सोमनाथ कृत ।

ग्रन्थ कारण— सभा मध्य इक दिन कही, श्री सुजान सुसिवयाइ ।
सौंमनाथ या ग्रथ की, भाषा देहु वनाइ ।।
हुकुम पाइ ससिनाथ हर, चतुर सुजान विलास ।
जामैं विक्रम गुन कथ, हैं बत्तीस (३२) प्रकास ।।

अथ कथा प्रारभ लिष्यते—

गुरु गनपति गोपाल के, पग अरविंदन ध्याइ ।
रचतु सुजान विलास कौं, सौंमनाथ सुख पाइ ।।
वसति वसुमति मध्य है, धारा नगरी नाम ।
प्रगट मालुवे देस मे, सुष सपति को धाम ।।

सुजान विलास एक बृहद् ग्रन्थ है जिसमे बत्तीस प्रकाश है । अखैराम की तरह उन्होने भी प्रत्येक अध्याय के बाद चार पक्तियां लिखी है । चौथी पंक्ति बदलती रहती है । प्रथम प्रकाश के बाद की ये चार पक्तिया इस प्रकार हैं —

श्री बदनसिंघ भुवाल जदुकुल मुकट गुनन विशाल है।
तिहि कुमर सिंघ सुजान सुदर हिंद भाल दयाल है।।
तिहि हेत कवि शशिनाथ ने रचिय सुजान विलास है।
पुतरी सिंघासन की कथा किय प्रथम भइय प्रकास है।।

यह पुस्तक अपने पूर्ण रूप मे विद्यमान है। इसके अन्त मे लिखा है—

सनमान दै वरदान दै इमि आन पै अति पाइकै।
सुर नागरी गुन आगरी सब गई स्वर्ग लुभाइकै।।

कवि ने अपने सबध मे भी कुछ जानकारी दी है—

मिश्र नरोतम नरोतम, भये छिरौरा बस।
रामसिंघ के मत्र गुरु, माथुर कुल अवतस।।

सोमनाथ के पिता 'नीलकठ' मिश्र भी अच्छे कवि थे। सोमनाथ तीन भाई थे—अनदनिधि, गगाधर और ये स्वय। ग्रन्थ-समाप्ति का समय इस प्रकार है—

तानै सूरजमल्ल को, हुक्म पाइ परकास।
रच्यौ कथा बत्तीस मय, ग्रथ सुजानि विलास।।
सहस गुनी शशिनाथ की, विनती उर मैं धार।
चूक भई कछु होइ तौ, लीजौ सुकवि सुधार।।
सवत् विक्रम भूप को, अट्ठारह सै सात।
जेठ शुक्ल तृतिया रवौ, भयौ ग्रंथ अपरात।।

इस समय सूरजमल युवराज थे—

'व्रजराज यह जुवराज सूरजमल्ल राजहु नित्य ही।'

विवाह सबधी दो पुस्तके मिली—१ विनयसिंहजी की पुत्री का विवाह: रामलाल कृत, २ बलवतसिहजी का विवाह . गणेश कृत।

१ विवाह विनोद—कवि रामलाल कहते हैं—

बदि भवानी पदकमल, भूपसुता को ब्याह।
बरणो मति मेरी जिती, तिह कौ चरित अथाह।।

रामलाल सुकवि समस्त गय हय पाय,
अति हरपाय गाय कीरति कहावनी।
जाके जन्म लेत भूप विनय निकेत आई,
इदरा समेत अति परम सुहावनी।।

पुस्तक से पता लगता है कि राजा अपने सरदारो से परामर्श करते थे। जैसे दशरथजी ने राम को युवराज बनाने के लिये पांच आदमियों से परामर्श चाहा था। उसी प्रकार—

जुरे सकल सिरदार, तब भूपति ग्रैसे कही।
कहो सुमंत्र विचार, वाई के सनमध की ॥

ग्रौर निश्चय हुग्रा कि—

राठ्यौर सिंह सरदार[1] नाम। वाकौ गढ़ बीकानेर धाम ॥

राजा ने सबध निश्चय कर दिया ग्रौर विवाह की तैयारियाँ होने लगी। 'विवाह विनोद' की कविता साधारण कोटि की है—

ग्रैसो सुभ साजिके समाज श्री विनेस भूप,
उपमा ग्रनूप कविराजन जताई है।
वसु है सुवासव है विस्त्रदेव की विभूति,
विश्वपति परम प्रवीन नै बनाई है॥

उमगि समद्द सरहद्द ग्रापनी पै जाय,
सुजन समाज सनमाने सिध्य पाई है।
मिलि सिरदारसिंघ जु कौ सग लाए भए,
वाछित सफल देस देस मे बडाई है॥

विनय बाग मे बरात ठहराई गई ग्रौर बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया—

'श्री सिरदार कौ फौज-विषै छिन एक मे वाटी सुधारस भीनी।'

इस विवाह मे नेग ग्रादि मे काफी दान-दक्षिणा दिए गए। बारहठ गोपाल को एक नेग मे एक हाथी मिला था—

सिंह गज पै ग्रसवार है, श्री सरदार उदार।
सो वारैठ गुपाल को, दियो सुनेग मझार॥

विवाह वेदविधि से सम्पन्न हुआ-

वेदन मे विधि जो वरणी सग लै तिय कूरम नै वह कीनी।
जेवर लाषन के धरणीधर धेनु धराधिप कोटि नवीनी॥
ले जलु ग्रजुली मे हर कौ धर ध्यान सौं साषानुचारि प्रवीनी।
श्री सरदार महीपति कौ ग्रति हर्षित ह्वै तनया निज दीनी॥

२. दूसरे विवाह-विनोद मे गणेस कवि लिखते हैं—

'श्री वृजेंद्र वलवत को वरनत व्याह-विनोद।'

बलवंतसिंहजी का यह विवाह विछोह निवासी सरूपसिंहजी की लड़की के साथ हुग्रा था। विवाह सपन्न कराने के लिये सरूपसिंहजी को डीग के 'कटारे वारे महल' बता दिए गए थे—

---

[1] सरदारसिंहजी के नाम पर ही 'सरदारशहर' नाम का नगर बसाया गया।

कीनौ श्री दिमान सनमान लै हुकम कही,
दीघ मे कटारे वारे महल वताए हैं।
मदति मरमति कराय कें तयारी लाय,
भूपति सरुप सकुटुवित वुलाए हैं।
आए दीघ नृपति विछोह के सरूपसिंह,
वधुन समेत हेत हियै सरसाए हैं॥

विवाह की तिथि १८८९ वि० वैसाप सुदि १० थी—

आई पीतपत्री छत्री वस अवतस श्री,
वृर्जेद्र छत्रपति महा उत्साह है।
सवत् १८८९ मे वैसाप सुदि,
दसैं वुधवार कौ भली तिथि विवाह है॥

काम करने वाले अफसरो के नाम भी दिए गए हैं—

तहा कारषाने नाना पतिराम हैं। वकसी वालमुकद निहारे काम हैं॥
दयाचद सुत जैन लाल दीवान है। मुतसद्दी मुपिया लाल हरध्यान हैं॥

नगर मे फैला हुआ आनद देखिए—

सकल सहर मे वटे हैं गुड गाडा भरे,
गलिन गिरारे चौक जैसो जहा त्रहिये।
जो है वा महल मे सु चहल पहल मे ही,
फूले फले भले मनमानी मौज लहिये॥
नित्य वटे विरहा[1] अनेक झोरी भर भर,
जैसे ई सुहार वरवाई[2] जेती कहियें।
व्याह श्री व्रजेंद्र महाराज वलवत केमे,
ठौर ठौर आनद समूह माह रहियें॥

साथ मे धाऊ ग्यासीराम, दीवान भोलानाथ, नंदलाल आदि सभी सरदारों को लेकर मोरछल लगाये हुए महाराज की सवारी चली जा रही है। भरतपुर के राजाओ मे आज भी यह प्रथा है कि जब कोई पुनीत अवसर होता है तो पहले विहारीजी की और उसके उपरान्त वेकटेश महाराज की 'झाँकी' करते हैं। दशहरा पूजन के अवसर पर जब महाराज की सवारी फौज पलटन के साथ निकलती थी तो धाऊ, दीवान आदि राज्य के विशेष अधिकारी भी मोरछल लगा कर साथ में होते थे। उस समय भी किले मे स्थित विहारीजी की झाँकी पहले करते थे और उसके उपरान्त वेकटेश महाराज की।

---

[1] भीगे चने।
[2] दाल की वनी।

करी है प्रथम श्री बिहारीजी की झाकी।
वेस पूजे व्यकटेश महाराज भले भाय के॥

बरात के पहुचने पर फव्वारे चला दिये गये—[1]

छुटत फुहारे न्यारे न्यारे सब भौनन मे।

गुलाल का वर्णन

किस्ती हैं अनेक सग रोरी औ गुलाल लाल,
ललकि ललकि लेत हेत सो उडाते हैं।
लाल लाल भई अवनी अकास आस पास,
लाल लाल है दिवाल रग घुमडाते हैं॥
लाल ही लाल हाथी लाल ही सकल साथी,
लाल ही बराती लाल रग उमडाते है।
लसटीन साहब को लाल मुष लाल भयो,
लाल लाल बादल की छवि कौं छुड़ाते हैं॥

'लसटीन साहब' विशेष रूप से शामिल हुए थे। विवाह के समय महाराजा के दोनो मथुरा-पुरोहित भी थे—

'रसिक लाल जी स्यामजी अति आनदत चित्त।'

और कवि गणेश के दो पुत्र भी उपस्थित थे—

कवि गणेश-सुत दोइ हैं, हाजर ताई ठाम।
लक्ष्मीनारायन जु इक, दूजो सालिगराम॥

स्त्रियो का समारोह—

आछी आछी नवल वधूटी ते झरोका लागी,
देषि श्री ब्रजेंद्र को आनद बरसाती हैं।
नामे लेत गारी देत हेत सो हंसावें सबै,
सकल बरात की सिरात जात छाती है॥
गाती हैं गुमानभरी गोरी गोरी गोरी सबै,
सीठना सुनाती देषि दूल्है मुसकाती हैं।
रग बरसाती हैं अनंग सरसाती है,
नैंन षजन नचाती मीठे बचन सुनाती हैं॥

इस कवित्त मे खडी बोली के प्रयोग देखने योग्य हैं। अन्तिम पक्ति तो एकदम खडी बोली है। भरतपुर के कवियो मे इस प्रकार यदा-कदा खडी बोली का

---

[1] डीग के भवनो मे लगे हुए 'फव्वारे' बहुत प्रसिद्ध हैं। इनको विशेष अवसरो पर अब भी चलाया जाता है। यह फव्वारे रग-बिरगे भी हो सकते हैं। महाराजा के समय मे यह छटा देखने योग्य होती थी।

दर्शन भी मिल जाता है। इस विवाह मे बलवतसिहजी ने बहुत दान दिया। कवि-समुदाय के ऊपर तो विशेष कृपा की—

कारे कारे कारी के से वारे मतवारे प्यारे,
जोरदार मारे घूमे नृप के निकेत हैं।
नद्दत द्विरद नभ गज्जत जलद्द मानो,
थल्ल थल थलकत भूतल सचेत हैं॥
जिनके चलत मद छल छन्न छननकत,
झल झल झलकत सुड मुष लेत हैं।
श्रीमत व्रजेंद्र बलवत के अनद होन,
ऐसे गजराज कविराजन को देत हैं॥

और इसी प्रकार के घोड़े भी दिए।

यह बलवतसिहजी के प्रथम विवाह का वर्णन है—

महामोद बरसे विविध, दीर्घ दुग्ग के माह।
श्री वृजेन्द्र बलवत को, भयो सुप्रथम विवाह॥

कवि का आशीर्वाद—

सपति देस विदेसन की सबै आय बसी बलवत के गेह मे।
सुदरता सुष राज दराज गनेस कहैं विलसो नित देह मे॥

और अत मे लिखा है—

'बलदेव नद श्री वृजेन्द्र बलवतसिह चिरजीव होउ मारकडे की उमर के।'

इस पुस्तक की पत्र-सख्या ७७ है और इसमे विविध प्रकार के २२४ छद हैं। यह पुस्तक विलायती कागज पर लिखी हुई है जिसमे वाटरमार्क है

'जी विलमौट मेड इन १८३४ ए. डी.।'

इतिहास-सबधी दो पुस्तके और मिली—१ सुजानसंवत, जो यद्यपि पद्य मे है किन्तु उसका महत्त्व ऐतिहासिक है। २ अलवर राज्य का इतिहास। यह पहले कहा जा चुका है कि मत्स्य प्रदेश में लिखे वीर-काव्यो मे भी बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। यह देखा गया था कि प्रतापरासो प्रतापसिहजी के सपूर्ण जीवन का एक प्रामाणिक वर्णन उपस्थित करता है और इसी प्रकार यद्यपि सुजानचरित्र प्रधान रूप से युद्ध-काव्य है फिर भी उसमे अनेक ऐतिहासिक बातो का उल्लेख है जो सूरजमलजी के समय में घटित हुईं। सुजान-सवत् में सूरजमलजी के शासनकाल का पूर्ण विवरण है और शिवबख्शदान के बनाये हुए 'अलवर राज्य का इतिहास' में मगलसिहजी के समय तक का इतिहास

है। इसीलिये ये दोनों पुस्तके इतिहास-प्रकरण मे ली गई हैं।

१ सुजान सवत--उदयराम[1] कृत। कवि ने अपना नाम एक विचित्र प्रकार से दिया है--

प्रात सूर सो होत है, ताके आगे राम।
द्वै जुग अच्छिर चारि करि, सो कविता कौ नाम॥

इससे पता लगता है कि 'उदैराम' कवि का 'कविता कौ नाम' अथवा उपनाम है। उनका असली नाम कुछ और रहा होगा जो बहुत खोजने पर भी मालूम नही हो सका। उपर्युक्त दोहे के उपरान्त लिखा है--

यह बरनन जाने कीयौ, नाम धर्यौ निज नाहि।
जानि लेहु नर वर चतुर, पिछले दोहा माहि॥

पिछले दोहे मे सूर का 'उदै' होना बताया गया है और उसके आगे 'राम' रखने को कहा गया है। इन 'द्वै जुग' अर्थात् दो जोडो के चार अक्षरो से कवि का कविता नाम 'उदैराम' बनता है। आरभ मे भी कवि के नाम का कुछ आभास मिलता है, जब वे स्तुति करते है—

वाक्य विनाइक नाइ सिर, सुमरि विप्र सुर संत।
गुर-पद प्रेम प्रताप बल, बानी विमल फुरत॥
सुंदरि प्रवीन रूप जोवन नवीन सो है,
लीये कर वीन 'उदै' अषिल अवगाहनी।
चदन चढायें तन कुंदन सुगधन सो,
सोधे वर चीर चारु चचल दृग चाहिनी॥
सोहत सुकुमार उर फूलन के हार वार,
वेनि सो सुढार मोती जोती हस वाहिनी।
बसौ उर आइ मेरे कठ सुष पाइ सदा,
सहाय रहै कविन कुल दाहिनी॥

पुस्तक-निर्माण का समय इस प्रकार दियो गया है—

षास [पौस] मास एकादसी, सवत ठाहरु वीस,
नृप लीला करि लै भये, कान सुजान नहीस॥
मनमति कौं सवाद यह, सवत् स्याम सुजान।
कवि यासे उरधार कछु, कीयौ कवित वखान॥

---

[1] उदयराम (उदैराम)--भक्ति-काव्यो मे इसके तीन नाटको का उल्लेख हो चुका है।

संवत् १८२० सूरजमलजी का निधन-सवत् है। इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि इस पुस्तक मे सूरजमलजी के शासनकाल का पूर्ण विवरण है।

इस पुस्तक मे बारह विलास हैं और इस काव्य को वीर-काव्य तथा इतिहास का मिश्रण समझना चाहिए। इसमे सुजान-चरित्र से आगे की घटनाओ का भी वर्णन किया गया है। सरस्वती की वन्दना के उपरान्त कवि अपने इस काव्य का आरम्भ करता है—

> भारती भमानी जगरानी वाक बैनी बैठि,
> कविन के कंठनि कमलासन बिछाइये।
> लैके कवीन सो प्रवीन सुर तान मान,
> करिकै सयान पै सुजान गुन गाइये॥[1]

पुस्तक के १२ विलास इस प्रकार हैं—

१. सुजानसंवत वरननो नाम प्रथमो विलास,
२. जदुवस-वर्नन,
३. जगमोहन वर्णन। सूरजमलजी के जन्मोत्सव का वर्णन,
४ परताप वीर वरनन,
५. सुराज वर्नन,
६. विविध,
७ गिरिवर लीला,
८. गढवर वरनन,
९. छह रितु-राज-वर्नन,
१०. वृज वृन्दावन फाग,
११ विजै विवाह वरनन (युद्धो के वर्णन सहित),
१२ उपसहार (मृत्यु)।

सुजान संवत् की जो प्रति हमें प्राप्त हुई वह सवत् १८७६ की लिखी हुई है—

'मीति चैत्र सुदि १४ भृगुवासरे सवत् १८७६ सा० १७१७ लीपतं दहामन तुहीरान पारासर। लीपीयतं फौदार हरदे फौदार। पत्र

---

[1] [illegible] एक दुखद प्रसग है कि आज के कवि इन पूर्ववर्ती कवियों की रचना को अपनी मौलिक [illegible] को भ्रम से गाते हैं। यह कवित्त मैंने स्वयं एक अच्छे कवि से [illegible] रचना के रूप मे सुना था।

संख्या १२४ भरतपुर मध्य राजस्थान[1] मध्ये । श्रीरामजी ।।'

इस पुस्तक को आरम्भ करने की आज्ञा स्वय 'मति' ने 'मन' को दी थी। इसीलिए यह मन-मति का सवाद कहा गया है।[2]

येक समै सुष सोवतें, सुमन रैंनि अवसेस।
अकस्मात् काहू कही, अहै सुजान नरेस।।

और फिर मति एक साधु के रूप मे आकर बोली—

'मधुर मंद बोले बिहसि, करि जदुवंस बखान।'

इसी प्रसग ने कवि को लिखने की प्रेरणा दी। कवि ने अपना यह विचार अपने गुरु से भी निवेदन किया था और गुरुजी ने इस विचार को श्रेयस्कर बताया—

नृपति सुजान सुजान समाना। और न कोई नृप नर नाना।।

और कहा—

तिनमे जो यह बदन कुमारा। केवल कान्ह कला अवतारा।।

इस पुस्तक मे सुजानसिंहजी के सपूर्ण जीवन और उनके शासनकाल का वर्णन है। पहले दो विलासों मे वश का वर्णन है और तीसरे मे जन्मोत्सव का। इसके पश्चात् अगले दो विलासो मे सूरजमलजी के प्रताप, वीरता और राज्य का वर्णन किया गया है। फिर गिरिवर (गोवर्द्धन) तथा किले आदि बनवाने का प्रकरण है। 'छह रितु', व्रज आदि के वर्णनोपरान्त विजय और विवाह का वर्णन किया गया है। यह विलास बहुत बडा और महत्त्वपूर्ण है क्योकि सूरजमलजी के लगभग सभी युद्धो का प्रसग इसमे आ जाता है। अन्तिम विलास मे कवि सुजानसिंहजी के स्वर्ग पधारने तक का वर्णन कर देता है। इस प्रकार यह 'सुजान सवत्' सुजानसिंहजी के जीवन का पूरा वृतान्त है और उनके जीवन से सम्बन्धित लगभग सभी बातें आ गई हैं।

सुजानसिंहजी का दिल्ली, जयपुर आदि सभी जगह बहुत 'रौब' और 'दबदबा' था। इनके बल और प्रताप को सभी मानते थे—

येक समे आमेर-पति, दिल्ली-पति के पास।
सुधि कर सूरजमल्ल की, उर मे अधिक हुलास।।

---

[1] आज से १५० वर्ष पूर्व तुहीरामजी ने भरतपुर को 'राजस्थान मध्ये' लिख कर एक विचित्र भविष्यवाणी की। राजस्थान शब्द भी पुराना है।

[2] प्रत्येक विलास के अन्त मे लिखा है—'सुमन सुकवि रचितायां'

बुलवायो जैंसिंग जब, सिंहसुजान कुमार।
त्यारी करि तवही गयौ, जैंपुरपति-दरवार ॥

इस पुस्तक मे सुजानसिंहजी के साहसिक कार्य, युद्ध, शासन, धार्मिक उत्सव, त्यौहार आदि के वर्णन है। इस ग्रन्थ से उस समय की राजनैतिक तथा सास्कृतिक परिस्थिति का सुन्दर विवरण मिलता है। इसमे अलवर वाले प्रतापसिंहजी का भी वर्णन मिलता है जब उन्हे डीग के पास ठहराया गया था। डीग के लिए लिखा है—

अति दुर्घट बंका निकट, निपट कठिन कमठान।
दीरघपुर गढ गढनि मे, सबके गढ़त गुमान ॥

इतना कहने मे कोई भी अत्युक्ति नही कि यह पुस्तक उस समय का इतिहास है। सिनसिनी का निकास इस प्रकार बताया है—

'तीन जाति जादवन की, अंधक, विस्नी, भोज।
तीन भाति तेई भये, ते फिर तिनही पेज ॥

पूर्व जन्म जे जादव विस्नी। तेई प्रगटे आइ सिनसिनी ॥

दूसरी इतिहास सम्बन्धी पुस्तक बारहठ शिवबख्शदान गूजू की[1] लिखी अलवर राज्य का इतिहास है। यह इतिहास छन्दोबद्ध है पुस्तक दो भागो मे है। इस पुस्तक के सम्बन्ध मे शायद ही कुछ लोग जानते हो। मैंने इसे अलवर-नरेश की व्यक्तिगत लाइब्रेरी मे खोज कर निकाला था। पुस्तक प्रामाणिक मालूम होती है किन्तु पुस्तक मे ही कुछ ऐसे कारण हैं जिससे यह ग्रन्थ प्रकाश मे नही लाया गया। यह पुस्तक अनेक प्रकार के छदो मे है—छद-सख्या १४१६ है। कुछ फारसी के छद भी हैं। एक सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार इस पुस्तक के प्रथम भाग मे अलवर के राजाओ की वंश परम्परा महाराज रघु से दिखाई गई है और प्रथम भाग के अन्तिम अग मे—

'राजगढ के राव प्रतापसिंघजी'

---

[1] बारहठ कवि शिवबख्श (१९०१–५६ वि०) डिंगल के भी कवि थे। इन्होने व्रजभाषा में वन्दावन शतक, और 'षड ऋतु' भी लिखे हैं। ये महाराज मगलसिंहजी के साथ रहते थे। कहते हैं निम्न दो सोरठो पर महाराज ने इन्हें ५००) रु० का पारितोषिक दिया था—

लड़वैं लथ दत्थाह, झड़वें चख आतस झळाह।
हाम्लि नव हत्थाह, मारे निज हत्था मगल ॥
रोसायल जम रूप, अजकायल साम्हा उडे ॥
भन्ने विलाला भूप, मारै सिंह डाला यथा।

का वर्णन आता है। दूसरे भाग मे प्रतापसिंहजी तथा उनसे आगे होने वाले राजाओ का वर्णन है। पुस्तक के प्रथम भाग में व्रजभाषा प्रयुक्त हुई है, किन्तु दूसरे भाग मे खड़ी बोली और साथ ही उर्दू के छद, जैसे—

> अवल इष्ठ अपने का धरि चित्त ध्यान।
> करू मसनवी मुख्तसिर मे बयान।
> दिया हुक्म कप्तान पौलिट सहाब।
> बहादुर वो पीडिल्लु[1] जिनका खिताब॥
> दिया हुक्म मुझ पै यह होके खुशहाल।
> करो मुख्तसिर राज अलवर का हाल॥

तात्पर्य यह है कि पुस्तक एक अग्रेज अफसर के कहने पर उन्नीसवी सदी के अंत में लिखी गई। इसमे सन् १८६४ ई० तक का वर्णन मिलता है। महाराज मगलसिंहजी का देहान्त सन् १८६२ मे हुआ था और उनके उपरान्त जयसिंहजी गद्दी पर बैठे। प्रथम भाग के कुछ अवतरण—

> लसत बाल विधु भाल मे, मुडमाल विष व्याल।
> या छबि सो मो मन बसो, पशुपति परम कृपाल॥

कवित्त—

> असन धतूरा भाग वसन बघबर के,
> भूषन भुजग प्रभा पूरिय अपारा है।
> ओढे गजखाल कर कलित कपाल मूल,
> धरें मुड माल उर उदित उदारा है॥
> कवि शिवदत्त पुडरीक से बदन पाच,
> शभु को रुचिर रूप तीनो पुर तारा है।
> लोचन विशाल भाल चन्द्रमा विराजै चारु,
> चन्द्रमा के निकट विराजी गगधारा है॥

इस पुस्तक में प्रमुख घटनाओ की वास्तविक तिथियां दी गई हैं। यथा—

'राजा सोरठदेव गद्दी विराजै। मिती कातिक वदी १० साल १०२३ के।'

'बीजलदेवजी देवलोक हुआ मिती सावण सुदी ४ सवत् १३०६।'

पुस्तक मे स्थान-स्थान पर गद्य भी है—

---

[1] कवि का संकेत Captain P.W Powlett की ओर है जो १८७४ ई० मे अलवर के स्थानापन्न पोलिटिकल एजेण्ट थे। इन्होने अलवर, करौली और बीकानेर के गजेटियर लिखे थे।

'जब ते रावराजा प्रतापसिंघ जन्म पायौ। तब ते राजगढ में आनंद अधिकायो। समत सत्रासै पूरन समय सवाई जयसिंह सुरगवासी भये। उर इनके पीछे महाराज इसुरीस्यघजी वरजोर जैपुर गद्दी आज गये। ता कारन इनते छोटे बधु महाराज माधोस्यघ पिता के लेप प्रमान राज्य को दावा करि आमेर पै आए........'

काव्य की दृष्टि से इस पुस्तक को बहुत अच्छा नही कहा जा सकता, परतु इसमें सन्देह नही कि इसमे दी हुई घटनाए ऐतिहासिक हैं। अलवर का ऐसा अच्छा इतिहास शायद ही कोई और हो। कवि अपने सम्बन्ध मे लिखता है—

इलाकै जो अलवर के गूजूकी गाम।
कि है बारहठ कौम शिवबख्श नाम॥

प्रतापसिंहजी के बारे मे लिखा है—

दिया उसको ईश्वर ने खुद अख्तियार।
किये मौजे ढाई सै ढाई हजार॥[1]

अलवर, भरतपुर प्रकरण मे जब प्रतापसिंह सूरजमल के यहा पहुचे, तो लिखा है—

कहा कौन इरशाद आये यहा।
कहा के हैं सरदार जाते कहा॥
इन्होंने कहा राव परताप नाम।
कि है राजगढ माचहेडी मुकाम॥
दिया भेज के हलदिया छाजूराम।[2]
किया जाट से[3] जाके इसने सलाम॥
हुआ जब कि जव्हार[4] मसनद नशीन।
बमूजिब हुकुम फौज थी लाख तीन॥[5]

जब प्रतापसिंह के बाद बख्तावरसिंह को गद्दी मिली तो लेखक ने लिखा है—

बख्तावर पाट परताप के विराजै।
बाजन किलों के बीच बादियाने बाजे॥

बख्तावरसिंहजी के विषय में बारहठजी का कथन है—

हुस्न जहा ही होसला, है व्हां ही भगवान।
खल्क टटोलत खाक मे, बखत टटोलत जान॥

उनके साथ में भी हलदियावंशोत्पन्न नन्दरामजी रहते थे। शिवबख्शजी

---

[1] ढाई गाव इस प्रकार थे—१ माचेडी, २ राजगढ, ३ आधा राजपुर—कुल ढाई गाव।
[2] छाजूराम हलदिया प्रतापसिंहजी का मंत्री था।
[3] सूरजमल जाट—भरतपुराधीश।
[4] जव्हार—जवाहरसिंह।
[5] जवाहरसिंहजी की तीन लाख फौज इतिहास-प्रसिद्ध बात है।

को जो उनके दो सोरठे लिखने पर ५०० रु० इनाम मिला उसका वर्णन भी अपने इस इतिहास में किया है—

शेर की शिकार शौक करनी दिल धारी।
की गढ खुशाल सरिसके की तयारी ॥[1]
करिकै वह हमला उडि फील पै ज्यूं आया।
मारि मंगलेश भूप बीचि ही गिराया ॥
बारहठ शिवबख्श दोय दोहरा सुनाया।
अता रुपया पन्ज सद इनाम फरमाया ॥[2]

पुस्तक में एक जगह जहाज का वर्णन भी आया है, जब अलवर नरेश कलकत्ता से पानी के रास्ते से मद्रास गये थे—

देखी विलायत की एक उसमे गाय ऐसी।
वह थी हकीकत मे कामधेनु जैसी ॥
खली खोपरे की खास खाने को देते।
दिल चाहा उसी वक्त दूध काढ़ लेते ॥
कितने उसमे भरे मुर्ग और भेडी।
चारसद करीब अग्रेज मैम लेडी ॥

इस पुस्तक को पढने से पता लगता है कि शिवबख्श ने असली हालात देने की चेष्टा की और अग्रेज का हुक्म पा कर तथ्यो को निष्पक्ष रूप से लिखा। यदि अलवर का प्रस्तुत इतिहास बनाते समय इस पुस्तक से सहायता ली जाती तो वास्तव मे बहुत-सा सच्चा इतिहास प्रस्तुत हो सकता था।

इस पुस्तक के दोनो भागो में, जो एक ही लेखक द्वारा लिखे गये है, बडा अन्तर है। प्रथम भाग में ब्रजभाषा और हिन्दी छन्द तथा दूसरे मे खडी बोली और उर्दू छद।

पुस्तक की समाप्ति सवत् १९९१ वि० है। महाराज मगलसिहजी की मृत्यु होने पर उनके 'कारज' का वर्णन इन शब्दो में किया है—

लड्डू रुपया दस्त जिसने ओट लीना।
तकसीम रेल के मुसाफिर तक कीना ॥

---

[1] सिरसका अलवर शहर से २२ मील दूर है और शेर की शिकार के लिए बहुत उपयुक्त स्थान है। पिछले महाराजा ने यहा 'सिरसका पैलेस' नाम का एक स्थायी स्थान बनवा दिया था। इसका शिलान्यास तो राजा मंगलसिहजी ने ही कर दिया था।

[2] दोहरे अन्यत्र दिए गए हैं। ये सोरठिया दोहरे राजस्थानी में हैं। इनसे सिद्ध होता है कि राजा को शिकार का बहुत शौक था।

विराजे सवाई जयसिंह राजगद्दी ।
दोस्त खुशहाल हुए दुश्मनकुल रद्दी ॥

पुस्तक का प्रथम भाग, काव्य की दृष्टि से, अधिक अच्छा है। इस भाग मे स्थान-स्थान पर गद्य भी मिलता है। व्रजभाषा गद्य का एक अच्छा नमूना देखिए—

'असी सलाह कर स्वरथ हटाय अधिपति कौ अश्व आरूढ करत भये। अरु याकी एवज इम पै असवार राव रत्नसिंह रतलामधीश के सीस पर छत्र धरत भये।'

शिकार का शौक सभी राजाओ को रहा। शेर, शूकर, डक, मगर आदि का शिकार आये दिन होता रहता था। शिकार के लिए बडे-बडे अग्रेजो को भी आमन्त्रित किया जाता था। शिकार के लिए कुछ निश्चित स्थान थे जहा का काम नियमित रूप से बराबर चलता रहता था। राज्यो मे 'शिकारगाह' नाम से एक अलग विभाग रहता था। मत्स्य के राजाओ मे शेर का शिकार बहुत प्रचलित रहा। करौली के राजा तलवार से सिंह का शिकार करते हुए सुने गए हैं। भरतपुर मे बारैठा और अलवर का सिरसका शेर के शिकार के लिए बनवाए विशेष स्थान है। चिड़ियो का शिकार भी होता रहता था। भरतपुर का केवलादेव डक की शिकार के लिए बहुत प्रसिद्ध है। भारत-वर्ष मे डक-शूटिंग के लिए भरतपुर का केवलादेव एक मशहूर स्थान है। अंग्रेजो के जमाने में गवर्नर जनरल तथा कमाण्डर-इन-चीफ इन चिडियो के शिकार के लिए नियमित रूप से भरतपुर मे आते थे। भरतपुर मे एक छोटी छत्रीनुमा इमारत है जिसमे इस बात का उल्लेख है कि किस शिकार मे कितने डक मारे गए।

'बहरी' की सहायता से की गई व्रजेद्र की आखेट सवारी देखिए—

चलत सवारी सिरदारी सब सग लैकें,
सीर औ सिकारिन की माची ही मरति है।
मारत कबूतर ढूढि ढूढि आसमान मे ते,
बगुला के भगुला मे फारिकें धरत है ॥
कहै जीवाराम करै बाज ते मरस काज,
तर्वं टूट फूटि काहू पछी पै परति है।
श्रीमति बृजेंद्र जु तुम्हारे कर में ते उडि,
बहरी कुलगन की किरचें करति है ॥

यह शिकार बहरी चिडिया की सहायता से किया गया है। इसके लेखक गौड़ जीयाराम एक अच्छे लिपिकार थे। साथ ही 'सभा-विलास' नामकी एक

पुस्तक भी देखने मे आई जिसकी रचना-तिथि १८८६ है।[1]

शिकार के कुछ अन्य प्रसग देखिए—

धौली जो मीम साथ थी कहने तो फिर लगी।
हथनी भी ये हमारी आज क्यो नही भगी॥
अल्लाह ऐसी तमन्ना उनकी निकालना।
जिनको ये हिर्स हो कभी उनही पै डालना॥

× × ×

वल्लाह यक अवाज जो सब लोग पुकारे।
ऐसी जगह सैं दिल नैं कहा वापिस आइयै॥
कलेजा भी उछल कर कैं सीधा मुह मे आ गया।
हया ने कहा ठैंर गोली तो चलाइये॥
उठ कर जो मैने हिम्मते मरदा को सभाला।
बंदूक उठाई तो फिर लगती ही पाइये॥
अए यार अब इस नजम का तो आ गया अखीर।
पस दूसरी तरकीब से किस्सा चलाइये॥

यह वर्णन सन् १९०० का है। कहा जाता है महाराज जयसिह नें ये पक्तियां स्वय लिखी थी। १८, २० साल के इस शिकारी राजा की भाषा देखने योग्य है। महाराज जयसिह हिन्दी और उर्दू दोनो मे लिखा करते थे। उर्दू मे वे अपना उपनाम 'वहशी' रखते थे। मैने इनके द्वारा लिखी जो दो नोट बुकें देखी उनमे हिन्दी के अक्षर बहुत स्पष्ट लिखे हुए हैं। शिकार का ऊपर लिखा वर्णन उसी नोट बुक से लिया गया है।

---

१ चौबे जीवाराम बलवतसिह के दरबार मे थे। जमादारी पाने के लिए इन्होंने सभा-विलास, नाम का एक ग्रथ लिखा जिसमे ऋतुओ का सुन्दर वर्णन है। इस ग्रथ को एक प्रार्थना-पत्र समझना चाहिये—

सरनि जो आवै ताको पोसन भरन करो,
हरन कलेस तैसो अवध बिहारी है।
जाकी प्रभुता की सीलता की को बढाई करे,
हो दुख दछ यह नीति उर धारी है॥
बडो उपगारी जाकी कीरति उज्यारी प्यारी,
श्रीमन वृजेंद्र पे सहाय गिरधारी है।
चौबे जीवाराम ताकी कीजयै जू जमादारी,
अरजी हमारी जो पै मरजी तुम्हारी है॥

अलवर के सग्रह मे भी हमे इसी प्रकार की एक अन्य हस्तलिखित पुस्तक मिली जिसका नाम 'अभिनव मेघदूत' है। यह भी एक प्रार्थना-पत्र के रूप मे है।

शिकारखाने के एक कर्मचारी ने शेर की शिकार पर लिखा है—

हुकम करोला पाय, भेसा वाध्या समझ कर।
पहोंच्या लशकर आय, भाल लगी केहरि तणी ॥
सझ्यो भूप शिकार, लेय दुनाली हाथ मे।
धन जय श्री अवतार, वीरा रस रापण धणी।
छाडै नाही रीत, महाराणि राठोर जी।
हियै हरष मन प्रीत, चड चाली आपेट मे ॥

धणी धिराणी मुदित मन, गणपति हिय हरपाण।
हाल शिकार वपानियौ, निज मति के अनुमान ॥

इस शिकार मे महारानीजी भी साथ थी। शिकार-सम्बन्धी कई पुस्तके महाराज जयसिहजी के सग्रह मे मिली, किन्तु वे सन् १६०० ई० के बाद की लिखी गई है अतएव उन्हे छोड दिया गया है। ये कुछ अवतरण भी इसी दृष्टि से दिए गए है कि मत्स्य की रियासतो मे इस प्रकार की काव्य-प्रवृत्ति भी चलती थी। इन रचनाओ का साहित्यिक अथवा काव्यात्मक मूल्य चाहे वहुत कम हो किन्तु एक शिकारी के हाथ से लिखी हुई पक्तिया अपना अलग ही मूल्य रखती हैं।

इस प्रसग मे दो पुस्तको का वर्णन और लिख कर इस अध्याय को समाप्त करने को बाध्य होना पडता है क्योकि यदि अन्य प्रसग भी इकट्ठे किए जाय तो छोटी-बडी बहुत-सी पुस्तके इस अध्याय मे स्थान पाने की अधिकारिणी है।

१. सभाविनोद– कवि सोभनाथ कृत। अभी-अभी जीवाराम के सभा-विलास का उल्लेख किया था। इसमे अनेक प्रसगो को लेकर कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा राजा को प्रभावित करने की चेष्टा की थी। सोभनाथ की इस पुस्तक 'सभाविनोद' मे वहुत से विलक्षण विषय है जिसमे 'पक्षी-साहित्य' अपना विशेष स्थान रखता है। पक्षियो के साथ वृक्ष और सरोवर के भी उत्तम प्रसग है। ग्रथकर्ता ने यह पुस्तक पाच विलासो मे वाटी है—

	दोहा सख्या
१ ग्रहाक्तिवर्ननो नाम प्रथमो विलास.	५२
२. नाइका नाइकोक्ति द्वितीयो विलास	६१
३. तरवरोक्ति तृतीयो विलास.	१६३
४. पंछी विलास चतुर्थो विलास	५७
५ तरक तरोवर सभाविनोद पचमो विलासः	१६८

कुछ उदाहरण देखे—

सादर बोलें हित करें, देत अमोल रसाल।
सोभ निरषि कै कोकला, रीझत हैं छितिपाल।।

बोलत बुलबुल बोस्ता, सब पछिन के बोल।
सोभा तो सिरदार लषि, राषै समझ अमोल।।

अकड भरे षोदत लहैं, पूरिन तै दुरवास।
सोभ बडे सिरदार तो, मुरग न राषै पास।।

और भी—

अति कोमल तन चीकनै, नर मे सोभ विसेषि।
को नहिं मोहै जगत मे, बालन की छवि देषि।।

तवा रूप तचई अवनि, सोभ तेज के धाम।
कहलाये सब जीव तो, पायो ग्रीषम नाम।।

यह पुस्तक 'रसरासि रसिक किसोर गुरुदेव' की प्रेरणा से सोभनाथ ने लिखी। पुस्तक की रूप-रेखा और अवतरणो से स्पष्ट है कि इस पुस्तक मे कवि द्वारा प्रकृति-वर्णन का उत्तम प्रयास किया गया है। पशु, पक्षी, लता, वृक्ष, सरोवर, कमल आदि प्रकृति-उपादानो को मानवी भावनाओ सहित प्रदर्शित किया गया है। नि सदेह कवि का प्रयास बहुत ही प्रशसनीय है। दो दोहे और देखिए—

दीरघ दरसें दरसनी, सोभ लिये किलकान।
को ठहरै इह लाग तें, द्रग बलिष्ठ ए बान।।

सुद्ध प्रभा मन भावनी, भ्रमर अधिक दरसात।
लषि कमलन सोभा सरस, अति ही नैन सिरात।।

इस पुस्तक मे सोभनाथजी ने अपने सम्बन्ध मे बहुत-सी बातो का उल्लेख किया है। सबसे पहली बात तो यह है कि ये कवि महोदय बसुवा[1] के राजा के आश्रित थे।

ब्राह्म प्रगट कनौजिया, कनवज मडल वास।
रह्यौ ढुढाहरि में अबै, बसुवा कै नृप पास।।

पुस्तक निर्माण-काल—

सवत अट्ठारह सतक, वरस और उनतीस।
माघ शक्ल तेरसि भगो, पुष्य नक्षत्र लहीस।।

---

[1] बहुत समय तक बसुवा अलवर राज्य मे रहा। एक समय ऐसा भी आया जब इसका आधा भाग अलवर मे था और आधा जयपुर मे।

कवि के लिखे अनुसार यह उनका २६वा ग्रथ है—

ग्रंथ कियौ उनतीसवो, यह मन आनि प्रमोद।
तरक सरोवर नाम है, दूजो सभाविनोद ॥[१]
तरक सरोवर पढत ही, जीते सभाविनोद।
राजी करि राजानकै, सुप पावै चहू कोर।
सोम मिले वड़ भाव तै, हम कौ गुरू किसोर।
शक्ति दई कविता करन, मानि लही चहू ओर ॥

ये महाशय राजाराम के पुत्र कान्यकुब्ज भारद्वाज थे—

भरद्वाज कुल में प्रगट, भये सु राजाराम।
सात पुत्र जिनके भये, पडित धनी उदाम ॥
चारिन तें लघु कवि प्रगट, सोभनाथ है नाम।
गुरु द्वै भाइन तै लह्यौ, गुरू ध्यान अभिराम ॥

'सभाविनोद' मे सभा मे विजय प्राप्त करने की युक्ति बताई गई है। साथ ही प्रकृति-चित्रण के भी सुन्दर उदाहरण दिए गए है—

२. **लाल ख्याल**–यह ग्रथ लाल नामक चिडिया के बारे में है। लाल-सग्राम राजाओ का एक मनोविनोद होता था और इस पुस्तक मे यही दिखाया गया है कि इस चिडिया के युद्ध मे क्या-क्या तैयारिया की जाती थी और किस प्रकार युद्ध कराया जाता था।[२] दुर्भाग्य से इस पुस्तक के रचयिता का पता नही

---

[१] कवि ने इस पुस्तक के दो नाम लिखे है—'तरक तरोवर' तथा 'सभाविनोद' इस पुस्तक के अतिरिक्त कवि के कम से कम अट्ठाईस ग्रथ और होने चाहिए। वहुत कुछ खोज करने पर भी अभी तक और कोई ग्रन्थ नही मिल सके है। कवि की उक्ति तथा सभाविनोद के देखने से प्रगट होता है कि कवि ने चारो ओर मान प्राप्त किया होगा।

[२] यह हस्तलिखित पुस्तक विचित्र है। उदाहरण के लिए—

१ इसमे अक्षर क्या हैं—प्रत्येक अक्षर एक चित्र है।
२ अक्षर वहुत ही मोटे हैं और कुछ तो दोहरे करके लिखे गए है। वीच मे रग भर दिया गया है।
३ प्रत्येक पृष्ठ पर ७–८ तरह के रग पाए जाते है।
४ अलग-अलग पक्तियो मे अलग-अलग रग है।
५ विराम चिन्ह भी अलकृत हैं, जैसे दुहरी पाई मे कही गेहूँ की वाल के समान और कही लाल नामक चिडिया की आकृति के समान चिन्ह वनाए गए हैं। जगह-जगह अलग नमूने दिए गए हैं।
६ इस प्रति मे १८७ पत्र हैं। अत मे लिखा है—

'समापीत ग्रन्थ सुभ'

लाल ख्याल यह नाम है, जानत सकल जिहान।
अदवूत कथा प्रसग की, या तौ अदवूत मान ॥'

७ इस पुस्तक मे विराम तथा अक्षरो के वनाने मे लाल चिडिया के चित्र का प्रयोग वहुतायत से किया गया है।

लग सका फिर भी इसमें सदेह नही कि इस पुस्तक की रचना बलवतसिहजी के आश्रय मे की गई—

सोहै बाग सुहामनो, व्रज मे परम रसाल।
भोगो बलमत लाडलो, धारे रूप ही जाल ॥

दोहरी पाई दो चिडियो के छोटे चित्रो से लगाई गई है, जो लाल चिड़िया के से चित्र मालूम होते हैं।

जानो बलमत स्योघ लाल है अनूठो बडो,
जग जीतवे को बीरा वीर सम धारै है।
कोउ किन आवै वीरा कीरा सम लागै मोय,
याही तै गरूर भरो वानी को दहारै है ॥
मीरा करो षैतो अंग जम परो सीरा खाउ,
उर मैं ही नाम ही की चाह जोर मारै है।
तीरा मन धीरा भली-चोच वनी हीरा सम,
चीरा है लालन के षीरा सम फारै है ॥

कवि का कहना है—

लालन के सग्राम की, वरनी कविन अनेक।
मेल मिलाती मैं कही, यह अदवृत रस लेष ॥
नौउ रस की सुभ कथा, लालन मैं सरसाय।
मैं सीखी कवितान पै, बरनी तिनै सुनाय ॥
कविजन सागर मधुर के, कज रूप तुम अग।
भूलो ताय समारियो, धारै प्रेम प्रसग ॥
पाली पाली जानकै टाल, कयो सो हाल।
और जोट हाजर भई, मुसिकाये महिपाल ॥

इस प्रकार लालो की अनेक जोटे एक के पश्चात् एक उपस्थित की जाती थी और उन्हे लडाया जाता था। पुस्तक मे लेखन की अनेक अशुद्धिया हैं। छोटे 'उ' की मात्रा पुराने ढग से ही लगाई गई है। अनेक स्थानो मे वर्तनी की अशुद्धिया हैं। पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार होता है—

'श्री गणेसायनम--व्र भने नम। सुरज वर्नन।'

कवित्त—

तेरो जो प्रकास ताकी सुदर प्रकास गत,
आवत ही अवनी में होत है अराम लाल।
देवलोक दानव के जक्षन तै किनर के,
नर के जितेक लोक मानत हैं चैन जाल ॥
धाम धाम धारा जात अधिक अराम काम,
पूरन प्रकास पान पुन्यन के होत ढाल।
एहो देव देव सुन ग्यान देव जत्क रूप,
जागत ही जाको सव सोमत ही सोमैं हाल ॥

ग्रीषम बीतो रित गई, गई पतगी भाग ।
अब बरसा आही प्रघट, ताको सुन अनुराग ॥
बरसा मैं बहु षेल, नरनारी षेलैं प्रघट ।
तामे रस को मेल, लाल ष्याल बरनन करो ॥

कवि सभी प्रकार के लालो का वर्णन करने मे असमर्थ है । केवल 'साहब के लाल' का ही वर्णन करना चाहता है—

सब लालन को बरन तें, बाढै ग्रन्थ अपार ।
तातें साहब लाल को, बरनो कर निरधार ॥

साहब के लाल—बलष बुषारे को पातसाह—

बलष बुषारें एक पातसा सवारी जात,
ऊट परी प्रान भए सब गात हैं ।
याही को चलाय देन चालें नहीं षोयो गयो,
जैसे सुनमान लई झूठी जग बात है ॥
एक लाल कौन कहै छोड़ैं हैं अनेक लाल,
साहब के लालन की ऐसी बड़ी जात है ।
कौन लाल कौन भयो कौन जानें कौन रीत,
देषो अब जाकी जग ध्वजा फैरात है ॥

साहब लाल अनेक हैं, बरनू सके कवि कौन ।
ग्रन्थ बडै बीस्तार पै, तातें गही मत मौन ॥

इस प्रकार इस पुस्तक मे साहब के लाल और उनकी जोटो का वर्णन है । लाल-सग्राम इसकी विशेषता है ।

इस अध्याय के अतर्गत मत्स्य मे प्राप्त विविध प्रकार का साहित्य उपस्थित किया गया है । इनमे से प्रत्येक की अपनी-अपनी विशेषता है, किन्तु युद्ध तथा इतिहास सम्बन्धी साहित्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

१ इसमे काव्य के साथ ही ऐतिहासिक महत्त्व सर्वत्र मिलता है । वर्णन अत्यन्त प्रामाणिक हैं और इतिहास द्वारा सत्य सिद्ध होता है ।

२. इस साहित्य में अतिशयोक्तिपूर्ण कविता कम मिलती है । भूषण जैसे राष्ट्रीय कवि भी इससे मुक्त नही । वीरगाथा काल वाले कवियो का तो कहना ही क्या है । किन्तु इस प्रदेश की तथ्यपूर्ण वर्णन-शैली को कभी नही भुलाया जा सकता । वीरता का बखान करते समय कुछ बढ़ावा भले ही हुवा हो किन्तु नाम, स्थान, सख्या, तिथि आदि के बारे मे कवि बहुत सतर्क रहे हैं ।

३ राजस्थान का यह प्रान्त जैसे वीरता का अपना स्वतत्र अस्तित्व रखता है, उसी प्रकार यहां की युद्ध-सम्बन्धी कविता भी ऊँचे दर्जे की हुई। हमारा तो अनुमान है कि मत्स्य का यह वीर-साहित्य गौरव के साथ अपना मस्तक ऊँचा कर सकता है।

४ राजाओ का मनोविनोद तो चलता ही रहता था, किन्तु उसके साथ कवियो द्वारा प्रस्तुत वर्णन की सूक्ष्मता और प्रकृति का निरीक्षण बहुत सुन्दर बन पडा है। सभी बातो का विचार करते हुए हमे मानना पडता है कि यहा के कवि वास्तविकता और स्वाभाविकता की ओर अधिक झुके हुए थे।



अध्याय ६

गद्य - ग्रन्थ

गद्य का प्रयोग मनुष्य-जीवन के साथ रहा है। जब से मनुष्य ने बोलना सीखा तबसे वह गद्य बोलता आया है। यह अवश्य है कि इसका लिखित रूप कम मिलता है। पुराना पद्य मिल जायेगा, किन्तु पुराना गद्य 'नुमायशी चीज' हो कर हमारे सामने आता है। हजार वर्ष पहले का पद्य हमे उतना प्रभावित नही करता जितना पाच सौ वर्ष पहले का गद्य। इसका सबसे बड़ा कारण है गद्य के लिखित रूप का अभाव। इसमे सन्देह नही कि मनुष्य पारस्परिक सम्भाषण मे गद्य का प्रयोग करते आये है और जब कोई समाचार आदि लिखने होते हैं तब गद्य का ही प्रयोग किया जाता है, किन्तु प्रायः सामयिक होने के कारण गद्य मे स्थायित्व नही होता। कार्य हो जाने के पश्चात् तत्सम्बन्धी गद्य व्यर्थ हो जाता है, अत. नष्ट कर दिया जाता है। इसके विपरीत काव्य मे स्थायित्व के लक्षण होते है—अच्छा काव्य सब काल और सब देशो के लिए होता है—और इसी कारण वह अधिक समय तक बना रहता है। पद्य की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं जो इसे स्थायित्व प्रदान करती हैं। पद्य मे काव्य का गुण आने पर एक चमत्कार उत्पन्न हो जाता है जिसके लिखने, पढने और सुनने मे आनन्द आता है। पहले तो वैद्यक, ज्योतिष, गणित, विज्ञान आदि की पुस्तके भी पद्य मे ही लिखी जाती थी क्योकि उन्हे याद रखने मे सरलता होती थी। आज की विद्या 'पुस्तकस्था' है किन्तु उस समय जब मुद्रण-यन्त्र का आविष्कार नही हुआ था, बहुत-सा काम मौखिक ही होता था और इस रूप मे गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक सुविधाजनक होता है।

मत्स्य प्रदेश मे गद्य का प्रचार उतना ही पाया गया जितना हिन्दी भाषा-भाषी अन्य प्रदेशो मे। इसमे सन्देह नही कि उस समय भी यह बात स्वीकार की जाती थी कि व्याख्या करने में पद्य की अपेक्षा गद्य के द्वारा आसानी होती है और इसी कारण किसी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए स्थान-स्थान पर गद्य का प्रयोग किया जाता था। मत्स्य-साहित्य की खोज करने पर गद्य का प्रयोग अनेक रूपो मे पाया गया। प्रमुख ये हैं—

१. उपनिषद् ग्रन्थो के सूत्रो की व्याख्या के रूप मे।

२ पुस्तको की प्रस्तावना के रूप मे। यह प्रथा अपेक्षाकृत कम ही थी। साधारणत पुस्तक के प्रथम अध्याय, सर्ग, उल्लास, प्रकाश, प्रभाव, विलास, तरग, मयूख, आदि द्वारा प्रस्तावना-कार्य सम्पादित किया जाता

था। उनमे वर्णन का माध्यम पद्य ही रहता था जो पुस्तक के आगे के अध्यायो से सबधित होता था। इस प्रकार का प्रस्तावना—अश पुस्तक का अग ही समझना चाहिए।

३ किसी पुस्तक का आरम्भ तथा अन्त करते समय उससे सबधित सूचना देने के रूप मे कि—

क पुस्तक का नाम क्या है।
ख रचयिता कौन है।
ग निर्माण किस सवत् मे हुआ।
घ लिपिकार का नाम और पता।
ङ लिपिबद्ध करने का समय।
च किसके लिए लिखा गया।
छ लिखने का समय क्या है।
ज लिखने का प्रयोजन आदि, आदि।

आरम्भ मे गणेश, सरस्वती अथवा किसी अन्य देवी-देवता के लिए नमस्कार। कभी-कभी ग्रथ का नाम और रचयिता का नाम भी।

४. पुस्तक के प्रत्येक सर्ग, अध्याय आदि के अत मे पुस्तक का नाम, रचयिता का नाम और उस सर्ग अथवा अध्याय के वर्ण्य-विषय का सकेत होता था। यह सूचना बहुत उपयोगी सिद्ध होती है—

क अध्याय विशेष के वर्ण्य-विपय का पता लगाने में।
ख अपूर्ण पुस्तक होने पर पुस्तक का नाम आदि जानने मे।

५. कही-कही पुस्तको के बीच मे किसी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए भी गद्य का प्रयोग होता था। ऐसा माना जाता था और अब भी यही धारणा है कि जहा तक किसी बात की व्याख्या करने का प्रश्न है पद्य की अपेक्षा गद्य की शक्ति अधिक है। अतः कठिन प्रसगो को समझाने के लिए गद्य का प्रयोग किया जाता है। गद्य का यह रूप रीति-ग्रन्थ, इतिहास-ग्रन्थ, कथा-ग्रथ आदि मे मिलता है।

६ गद्य की स्वतन्त्र पुस्तके जिनमे निम्न प्रकार की पुस्तकें मिलती है—

क किस्से, 'पीसा', 'षिस्सा', कहानिया आदि।
ख नीति-प्रतिपादन।
ग सिंहासन-बत्तीसी, हितोपदेश आदि के अनुवाद।

५ अकलनामे, सामान्य ज्ञान कराने वाली पुस्तके ।

६ नागरी मे लिखा हुआ उर्दू गद्य ।

७ हिंदी-सस्कृत ग्रन्थो की टीका, अर्थ आदि के रूप में ।

८. प्राचीन काल के हुक्मनामे, सधिपत्र, खरीते आदि के रूप में सचित सामग्री। यह सामग्रो वहुत मूल्यवान होती थी और राजा तथा अन्य लोग इनका सग्रह सावधानी के साथ करते थे ।

९ रुक्के, परवाने आदि जो कुछ लोगो के पास आज भी सुरक्षित हैं। ये किन्ही बातो के प्रमाण रूप मे दिए जाते थे ।

१०. अन्य गद्य के नमूने जो सामान्य व्यवहार की सामग्री हैं और जो किसी कारण विशेष से उपलब्ध हो जाते हैं, जैसे—पत्र आदि। उस समय की प्राप्त गद्य-सामग्री के आधार पर नीचे लिखे निष्कर्ष निकलते हैं–

(अ) प्राप्त पत्रो के आधार पर मालूम होता है कि उस समय नागरी तथा फारसी दोनो लिपियो का प्रचार था। फारसी लिपि की प्रधानता होने पर भी नागरी की उपेक्षा नही थी। किन्ही-किन्ही पत्रो मे फारसी और नागरी दोनो लिपिया पाई जाती हैं, यद्यपि भाषा फारसी है ।

(आ) उस समय हिजरी तथा विक्रमी दोनो सवत् चालू थे। उर्दू, फारसी के पत्र तथा ग्रथो मे भी विक्रम सवत् मिलता है। हिंदी की पुस्तको में प्राय विक्रम सवत् ही पाया जाता है। कुछ स्थानो मे शक सवत् भी दिया गया है ।

(इ) उस समय का गद्य व्रजभाषा से ही प्रभावित है। मत्स्य-प्रदेश में भी जहा बोलचाल की भाषा व्रज से भिन्न रही है, उपलब्ध गद्य का अधिकाश व्रजभाषा मे ही है। हो सकता है उस समय साहित्यिक कार्य के लिए व्रजभाषा का ही प्रयोग किया जाता रहा हो। प्राय. देखने मे आता है कि साहित्य की भाषा से बोलचाल की भाषा भिन्न रहती है, इसी नियम के अनुसार इस प्रदेश में भी बोलचाल की भाषा अन्य रहने पर भी लिखने में व्रजभाषा की ओर ही ध्यान रहता था। अलवर की कुछ रचनाओ मे कभी-कभी अलवरियापन मिल जाता है—जैसे 'ण' का प्रयोग 'न' के स्थान मे अथवा 'यह' के स्थान मे 'याँ' का प्रयोग, अथवा 'क्या' के स्थान मे 'काईं' आदि। किन्तु प्राप्त साहित्य के आधार पर इस प्रवृत्ति को नियम की अपेक्षा अपवाद ही माना जा सकता है ।

(ई) अन्य प्रदेशो की ही तरह यहा भी गद्य-साहित्य प्रचुर मात्रा मे नही मिलता और उसके द्वारा किसी विशेष महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति भी नही होती। समय-समय पर आवश्यकता के अनुसार साधारण रूप मे गद्य का प्रयोग होता रहा।

'भारतीय प्राचीन लिपि माला' मे प० गौरीशकर हीराचद ओझा ने राजस्थान मे प्रयुक्त होने वाली ७ बोलिया—मारवाडी, मेवाडी, बागडी, ढूढाडी, हाडौती, मेवाती और व्रज बताई है। मत्स्य में व्रजभाषा की ही प्रचुरता है। भरतपुर, धौलपुर तथा करौली जिलो की तो यह भाषा है ही, साथ ही अलवर के पूर्वी भाग मे भी इसी का प्रयोग होता है। अलवर और भरतपुर के मेवात प्रदेश मे मेवाती बोली जाती है जो अपनी कर्ण-कटुता तथा विशेष लहजे से जानी जा सकती है।

विक्रम की अठारहवी सदी के अत मे तथा उन्नीसवी शताब्दी के आरभ मे कवि 'कलानिधि' ने हिन्दी साहित्य को अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ-रत्न प्रदान किये। उन्ही के द्वारा १८वी शताब्दी के गद्य का नमूना भी प्राप्त होता है। कवि ने 'उपनिषद्-सार' नाम का एक ग्रथ गद्य मे रचा। इसमे 'तैत्तिरीय, माण्डूक्य, केन आदि उपनिषदो के सूत्रो की व्याख्या हिन्दी मे की गई। इस पुस्तक का एक नमूना—

सूत्र—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'

व्याख्या—'याको अर्थ नित्य अरु अनित्य इन वस्तुन को समुझिवो अरु शम दमादिक अरु वैराग्य अरु मोक्ष की इच्छा येयो चारि साधन हैं। इन चारयौ साधन सिद्धि भये उपरान्त याहि हेतु तें ब्रह्म की जिज्ञासा कहै जानिवे की इच्छा तासौं श्रवण मनन निदिध्यासन करि अविद्या नाश भये अपरोक्ष साक्षात्कार ब्रह्म को सूचित करयौ।'

हितोपदेश को हिन्दी गद्य मे लिखने के अनेक प्रयास हुए। १८वी सदी का एक नमूना देखिए जिसे करौली राज्य के आश्रित देवीदास ने प्रस्तुत किया था। श्लोको के अनुवादो मे प्रयुक्त गद्य का रूप देखना उचित होगा। यह एक प्रकार से उन श्लोको की, उनके शब्दो सहित, टीका भी है—

'अथ सुरद भेद लिषते—

दुहा— राजपुत्र ऐसे कहतु, सुनो जु सद्गुर धीर।
जब हमकू इच्छा भई, सुरद भेद सुन्न गीर॥

पुन राजपुत्रन विष्णु शर्मा सो कही—अहो गुरु मित्रलाभ तो हम सुन्यौ। अब सुरदभेद कथा सुनिवे की ईच्छा है। तब विसन सरमा कहतु है—

दुहो— समै ऐक मिघ वन विषै, बढ्यो बरद सु नेह।
दुष्ट आर ऐसी करी, बरद मरावत लेऊं॥

वात–विसन सरमा कहतु है एक समै वनमे वरद अरु सिंघ वाढ्यो सनेह। दुष्ट लोभी स्यार उनक सनेह दूर करायो। तब राजपुत्रन कही यह कैसी कथा है।

तब विस्न सरमा कहत है—

दछिन देस मे सुमतितिलक नाम नगर है। तिहा वरधमान नामक वनीया वसै। जद्यप वाकै वहुत धन है। तद्यिपि वाको और वनीया के धन वहुत ईच्छा भई।

वात– अरु जाकै थोरी तिसना होय। धीरजवत सयानो होय। सूर ज्यूं पछि छाडी नाही छाकै त्यू साहिव की सेवा न छाकै आग्या पाय ऊजर नाही करै। सो राजा के निकट जाय रहै।

श्लोक–उपायेन हि यच्छ्क्य न तच्छक्य पराक्रमै।
काक्या कनक सूत्रेण कृष्न सर्पो निपातित.॥

जातै जु कारज उपाय कर होई। सु वल तै कबऊ न होई।
जातै एक कागनी सोनै के सूत्र करि कालो साप मरवायो।

तब करकट कही यह कैमी कथा है ”

इम गद्य मे कुछ विशेप वाते दिखाई देती हैं, जैसे—

१. शब्दो के रूप वहुत विगड़े हुए है। सस्कृत का ‘सुहृद’ ‘सुरद’ रूप मे हैं। तृष्णा ‘तिसना’ रह गई है।

२ शब्दो का रूप स्थिर नही है, एक ही शब्द कई प्रकार से लिखा गया है, जैसे—

१ विष्णु, विमन, विसनु, विस्न।
२ यद्यपि, जद्यप, जद्यपि।

३ इकारान्त और ईकरान्त का भेद नही पाया जाता।

४ क्रियाओ के रूप अनेक प्रकार के मिलते है।

५. लय-गीतात्मकता भी है—

अरु जाकै थोरी तिसना होय। धीरजवत सयानो होय॥

यह देखने की वात है कि यह आज से २००, २२५ वर्प पहले के गद्य का नमूना है, फिर भी समझने मे कोई कठिनाई नही होती है।

इसके उपरान्त रीति-काव्यो मे अनेक प्रकरण ऐसे है जिनमे गद्य का प्रयोग स्थान-स्थान पर किया गया है। **गोविंदानन्दघन** का एक उदाहरण देखे—

अथ अभिनव गुप्त पादाचर्ज को तत्व लक्षण—

(रस की व्याख्या करते हुए)

‘रसिकनि के चित्त मे प्रमुदादि कारण रूप करि कै॥ वासना रूप करि कै

स्थिति ।। नाट्य के काव्य विषै विभाव अनुभाव सचारी भाव साधारणता करिकै प्रसिद्ध । अलौकिक ।। ऐसै निकरि कै प्रगट कीनौं हुवौ । मेरे शत्रु के उदासीन, के मेरे नही, सत्रु के नही उदासीन के नही। याही तें सावारण। जहा स्वीकारपरिहार नही सो साधारण। साधारण उपाय बलि करि कै ततछिन उतपत्ति भयौ । आनन्दस्वरुप । विषयातररहित । स्व प्रकास अपर्मित जो भाव । स्व स्वरूप को सो नाही । न्यारौ नही तौ हू जीव नें विषय कीनौ हूवौ । विभावादिक को स्थिति जाकौ जीव ते आनद वृति जाकै प्राण । प्रयान कर सा न्याय करि कै । अनुभव कीनौ हुवौ आगारी फुरत सौ । हृदय मे घरत सौ । अगनि कौ आलिगति सौ । और ज्ञान को छिपावत सौ । परब्रह्म अस्वारद कौ तजावत सौ । अलौकिक चमत्कार करै जो इत्यादि स्थाई भाव सौ रस ।।

सो नव विधि

प्रश्न——साति कछु कैसे ।

उत्तर——साति काव्य मै कहियत नाटच मैं नही याते ।।

इस गद्य अवतरण मे हम देखते हैं कि—

१. विचार-ग्रहण मे कुछ कठिनाई होती है, जिसका एक कारण अभिनवगुप्त के गहन विचारो का गुम्फित होना भी हो सकता है ।

२ कुछ शब्दो के रूप शुद्ध सस्कृत है—

तत्त्व, लक्षण, परिहार, आस्वाद, स्वरूप, विषयातर इत्यादि ।

३ 'फुरत सौ', 'घरत सौं', 'आलिगत सौ', 'छिपावत सौ', 'तजावत सौ' आदि से तुकवदी की प्रणाली लक्षित होतो है । यह प्रणाली वहुत समय तक चलती रही और प० महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय मे ही इसका पूर्ण परिहार हुआ ।

'महाराजाधिराज वृजेन्द्र रणजीतसिह कुमार श्री वलदेव सिंह हेतवे' श्री घरानद कवीश कृत 'साहित्य-सार-सग्रह-चितामणि' नामक ग्रथ । इस पुस्तक मे कई प्रभाएँ हैं । यह पुस्तक अपूर्ण मिलती है । तीसरी प्रभा पर ही जहा 'ध्वनि' आदि का वर्णन चल रहा है, ग्रथ अधूरा रह जाता है ।[1] इसमे 'वचनिका' नाम से गद्य दिया हुआ है ।

---

[1] इस पुस्तक की केवल ३ प्रभाएँ ही उपलब्ध हो सकी ।

१ पिंगलनिरूपण ।

२ काव्य प्रयोजन, कारन स्वरूप, सब्दार्थ विशेष निर्णय निरूपण ।

३. ध्वनि प्रसग—२८७ छद से आगे नही चलता। (शेष टिप्पणी पृ २३२ पर देखें)

दूसरी प्रभा से :

वचनिका—

'काव्य कौं मूल कारण गुरु देवता प्रसाद जनित सस्कार सो शक्ति जानियै। शास्त्र कहिवे तें छद कोश व्याकरण जानि इन के देखेते चतुरता होइ सो चतुरता। कवि कालिदासादिक इन की रचना देखनो रूप सिद्धता ताते होइ सो अभयास। अभ्यास कहा कि देखिवे विचारिवै मे वारवार प्रवृत्ति। ए तीनो मिलि काव्य के कारन हैं। वस्तु ते तौ काव्य कौ कारण मुख्य शक्ति ही है। याही तें शक्ति कौ काव्य की मूल कारणता कही ॰।'

यह स्पष्ट है कि ऊपर लिखा गद्य वहुत कुछ सुगम है और समझने मे कोई कठिनाई नही होती। इस पुस्तक मे इस प्रकार के वहुत-से उदाहरण हैं।

प्रसिद्ध कवि सोमनाथ कृत 'रसपीयूषनिधि' मे प्रयुक्त गद्य का नमूना भी देखे।

वीभत्स रस का उदाहरण दे कर उसमे विभाव आदि का स्पष्टीकरण

अ. ऐसा प्रतीत होता है यह पुस्तक वहुत वड़ी थी। जो अश प्राप्त हुआ है और जिस विस्तार के साथ काव्य-सिद्धान्तो को समझाया गया है उसके आधार पर पूरी पुस्तक के आकार की कल्पना की जा सकती है। प्राप्त ३ प्रभावो की पत्र-सख्या १३५ है।

आ. इस रीतिग्रन्थ मे अनेक कवियो के उदाहरण दिए गए हैं। सिद्धान्त निरूपण मे काव्यप्रकाश का अनुगमन किया गया है। पुस्तक का कविकृत मौलिक अंश गद्य मे ही है। अतएव इसे गद्यग्रन्थो मे सम्मिलित किया गया है।

ई. पिंगल समझाते समय कविवर सोमनाथ की तरह इन्होंने भी अनेक चित्र आदि दिए हैं। पहाड़, वर्ग, पक्षी आदि अनेक प्रकार से पिंगल को समझाया गया है। जहा कवि ने अपने छदों का प्रयोग किया है वहां 'स्वकृत' लिख दिया है। कविता की दृष्टि से इनकी रचना अच्छी होती थी। उदाहरण—

'स्वकृत—

मदजल मडित गड चंड लगि चचरीक गन।
हलत तूड मनु दूड विविध जिहि पूजत सुरगन॥
सेस दत मद मत्तयत सोभित अतक गति।
सेवित शेष सुरेश नरेश द्विजेश महामति॥
सिंदूर पूर सोभित वदन, सदन वुद्धि भवभय हरण।
इन्द्रादि देव वदित चरन, लवोदर कवि जन सरन॥'

किया गया है।[1]

'इहा चंडिका और दपनि वारी आलवन विभाव और आतनि की चचौरवो उद्दीपन विभाव और देपन वारे के वचन अनुभाव और असुया सचारी भाव इनतै आनि स्थायी भाव व्यगि तातै वीभत्स रस।'

इसमे सदेह नही कि कवि द्वारा प्रयुक्त गद्य मे अर्थ बहुत ही स्पष्ट हो गया है। भाषा मे भी उलझावट नही है। किन्तु वाक्य क्रियाहीन है। इसे हम यदि टिप्पणी के रूप मे मान ले तो कोई हानि नही होती, क्योकि इस गद्य का उद्देश्य भी यही है कि यदि किसी को कुछ सदेह हो तो बात स्पष्ट हो जाय।

काव्य-सिद्धान्त-निरूपण के प्रसिद्ध ग्रथ "भाषाभूषण" की सपूर्ण टीका अलवर के महाराजा विनयसिहजी ने की है। पुस्तक मे अपना परिचय इस प्रकार दिया है —

'जस जागत जसवत वली, नृप भाषाभूषण कौं रचत।
राजाधिराज वषतेस सुत, विनैसिह टीका करत॥

इस दोहे से प्रतीत होता है कि विनयसिहजी उस समय तक सिहासन पर नही वैठे थे। अतएव उनके द्वारा वनाई गई भाषाभूषण की इस टीका का समय सवत् १८७१ से पहले होना चाहिए। टीका का एक नमूना देखिए—

"विघन हरन तुम हौ सदा, गनपति होहु सहाय।
विनती कर जोरै करै, दीजै ग्रन्थ वनाय॥

टीका

'हे गनपति तुम सदा विघन के हरन हारे हो। मेरी सहाय होहु, हाथ जोर तुमतै विनती करौं हौं। यह ग्रथ सपूरन वनाय दीजै। प्रथम ग्रथारभ मे इष्ट देव कौ मनाइये। तहा मगलाचरन तीन प्रकार कौ होत है। वस्तु निर्देशात्मक, आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक।

---

[1] उदाहरण का छद ये है—

इतही प्रचड रघुनंदन उदंडभुज,
उतै दसकठ वढि आयौ रुड डारि कै।
सोमनाथ कहै रन मडयौ फर मडल मैं,
नाच्यौ रुद्र श्रोणित सौं अगनि पपारि कै।
मेद गूद चरवी की कीच मची मेदनी मे,
वीच वीच डोलें भूत भैंरो मुड धारि कै।
चाडन सौं चडिका चवाति चड मुडन कौ,
दतनि सौ अतनि चचोरे किलकारि कै॥

जहा इष्टदेव कौ वस्तु स्वरूप गुण इत्यादि वरनन कीजै सो वस्तुनिर्देशात्मक। सो वस्तु निर्देश तौ सब ही जगै आवै। परन्तु वस्तु निर्देश मे जय शब्दादि लिये होय तहा आशीर्वादात्मक। जैसे 'केसवदास निवास निधि' इहा आशीर्वादात्मक। 'नमस्कार करि जोरि कै कहै महाकविराय' इहा नमस्कारात्मक।

मेरी भव बाधा हरौ·········होई ॥ टी० इहा केवल वस्तु निर्देशात्मक। इहा कर जोरवौ यह शब्द आयौ तातै इहा वस्तु निर्देश के अतभूत नमस्कारात्मक मगला-चरन है ॥ १ ॥"

एक और उदाहरण—

"सुकिया पति सौ पति कहै, परकीया उपपत्ति।
वैसुक नायक की सदां, गनिका सौ हित रत्ति ॥

टीका

सुकिया के पति सौं पति कहै है॥ परकिया के पति सौं उपपति कहै है—वेस्या के पति सौं वैसक कहे है ॥ ८ ॥ अनुकुल १ दक्षन २ सठ ३ घृष्ट ४। वीरोदात्त १ धीरमृदु २ धीर उद्धत ३ धीर प्रशात ४॥ यन सौ चौगुने कीये भेद ला मये (४×४) ॥ १६ ॥ फिर दिव्य १ अदिव्य २ दिव्यादिव्य ३ ॥ यन तीन (१६×३=४८) भेदन सू सोले कू तिगुने कीने तव सोलेति। अठतालिस भेद भये ॥ ४८ ॥ उत्तम १ मध्यम २ अधम ३ यन तीन (४८×३=१४४) तै तिगुने कीये। अठतालीस कू। तव येक सो चवालिस भेद भये। पति १ उपपति २ वैसुक ३ तीन ये भेद मिलिके (१४४+३=१४७) येक सो सेतालिस भेद भये ॥ १४७ ॥"

अव नायिका के भेद भी देख लीजिए। इससे पता लगता है कि उस समय कितनी विस्तृत टीका होती थी।

"मूल— पदमनि चित्रनि सषनी, अरु हस्तनी वषानि।
विविध नाइका भेद मे, चारि जाति तिय जानि ॥

टीका

पदमनि सो कहिये जाके अक में कमल की सी सुगध आवै। वस्त्र स्वेत उज्जवल पवित्र पहरवे की रुचि होय। देव पजन मे रुचि होय। आहार थोडौ करै। कदर्प थोरौ होय। कुच नितव पीन होय। नासिका चपकलि सी तिल प्रसून सी होय। और नेत्र मृग के से वा कमलदल से होय। चद को आधो भाग सो भाल होय। और भृकुटी टेढी कवान सी हौय सूछम होय। सव अग सुन्दर वन्यो होय। कर चरन की अगुरी पतली होय। और करतल पगतल आरक्त होय। और ऊमर वडी होय तोहू वारै वरस की सी दीषै। और दात छोटे होय सुधी पगति होय। केस माथे के सटकारे हौय, सचकिन हौय। और अनग भूमि में रुमा न होय, और सुरत जल मे पुष्प रस की सी सुगध आवै और जाके अग सुगध के लोभ सौ भ्रमर मडरायौ करै। पीक निगलती वरीया पीक की लीक कठ में होर दीषै। असी त्वचा झीनी होय। स्वसी की

प्रकृति होय । छह आगुर की धरनी होय । और सीप स्वसी की पुरी रेषा तद्वत् अनग-भूमि होय । पोहप-माल आसन की रुचि होय । स्वेद में कमल पुष्पादिकिन की सी सुगधि होय । सुरति समै विमल स्थान, निमल सेज भूषन वस्त्रादि विमल भावै। गति हस की सी मद होय । नषस्पर्श नपाग्रपात, कपोल-चुवन, नेत्र-चुबन की रुचि होय । यह लछिन पदमनीन के है ॥ १ ॥ अथ चित्रनी लछन ‥‥ ”

इस प्रसग मे चित्रनी, हस्तनी, सषनी आदि स्त्रियो का वर्णन इसी विस्तार के साथ किया गया है । निश्चय ही यह टीका बहुत ही विद्वत्तापूर्ण है ।

पुस्तक मे स्वकीया आदि नायिका के भेद भी देखने योग्य हैं—

"स्वकीया नायिका के भेद । १३ । परकीया । ३ । ऊढा अनूढा । सामन्या । १६ । प्रोपित पतिका । १० ।

	१६×१०=१६०
उत्ताम मध्यम अधम	१६०×३=४८०
दिव्य अदिव्य दिव्यादिव्य	४८०×३=१४४०
४	१४४०×४=५७६०
८	५७६०×८=४६०८०
४	४६०८०×४=१८४३२०
१८, ४	१,३२,७१,२४० भेद"

इस प्रकार एक करोड बत्तीस लाख इकहत्तर हजार दो सो चालीस प्रकार की नायिकाए बताई हैं ।

इस टीका के संवध मे कुछ बाते—

१. टीका की भाषा स्वच्छ और विशुद्ध ब्रजभाषा है । अलवर-नरेश बोलचाल की भाषा का प्रयोग न करके उस समय की साहित्यिक भाषा का प्रयोग करने मे बहुत सफल हुए हैं । हम देखते हैं कि टीका मे

(अ) भाषा का रूप बहुत निखरा हुआ है ।

(आ) विराम चिन्ह (कम से कम पूर्ण विराम) यथा स्थान लगाए गए हैं ।

(इ) शब्दावलि तथा क्रिया के रूप अपेक्षाकृत व्यवस्थित हैं ।

(ई) तत्सम शब्द शुद्ध लिखे गये हैं ।

२ उस समय सम्पूर्ण मत्स्य प्रदेश मे, गद्य मे भी, ब्रजभाषा का ही प्राधान्य था । गद्य और पद्य दोनो मे यही भाषा चलती थी । खडी बोली के प्रयोग गद्य की अपेक्षा पद्य मे अधिक दीख पडते हैं । उसका कारण है मुसलमान तथा अग्रेजो के द्वारा खडी बोली का प्रयोग करना । सोमनाथ,

सोभनाथ, जाचीक जीवन, सूदन आदि मे इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। गद्य मे व्रजभापा छोडकर अन्य कोई विशेष प्रवृत्ति नही देखी जाती।

३. टीका वहुत ही उत्कृष्ट कोटि की है—

(अ) इस टीका को सरलता के साथ समझा जा सकता है।

(आ) इसमे दिया गया विवरण लेखक की काव्य-शास्त्र-प्रतिभा का द्योतक है।

(इ) भापाभूपण की सुदरतम टीकाओ मे इसका स्थान होना चाहिये।

४. इस टीका मे सख्या आदि देने में वहुत सावधानी की गई है। गुणन ठीक और विधिवत् हुए हैं, जो मूल मे नही हैं। टीका मे वहुत सी वातो को शामिल कर दिया गया है। अवतरण शुद्ध और यथास्थान दिये गये हैं। मूल को समझने मे टीका द्वारा मूल्यवान सहायता मिलती है। एक प्रकार से इस टीका द्वारा मूल पुस्तक की सम्मान-वृद्धि हुई है।

५ टीका की इन सव विशेपताओ एव उत्कृष्टता के कारण हमारा अनुमान है कि इस टीका का लिखने वाला कोई वहुत ही विद्वान तथा काव्य-शास्त्र-मर्मज्ञ कवि था जिसका अध्ययन, भापा पर अधिकार तथा काव्य-ज्ञान वहुत उच्च कोटि का था। टीका को देख कर इस वात के मानने मे वहुत कठिनाई होती है कि महाराज विनयसिंहजी द्वारा इस प्रकार की रचना की जा सकी हो। उस समय के राजाओं मे काव्यप्रेम अवश्य था किन्तु कवि और लेखक के रूप मे वहुत कम राजा मिलते हैं। हमारा अनुमान है कि महाराज विनयसिंहजी के किसी विद्वान पडित ने जो राज्य के आश्रित रहा होगा यह टीका लिख कर अपने आश्रयदाता के नाम से प्रचलित करा दी होगी और इस प्रकार के अश वढा दिए होंगे जैसे—

राजाधिराज वपनेस सुत विनैसिंह टीका करत।

इसमे कोई सदेह नही कि महाराज विनयसिंहजी विद्वानो का वहुत आदर करते थे और उनके सम्वन्ध मे अलवर राज्य के इतिहास-प्रेमी पडित पिनाकीलाल जोशी ने अपने इतिहास मे लिखा है—

'महाराज विनयसिंहजी के सुशासन मे देश-देश के विद्वान, शिल्पकार तथा सगीत-शास्त्र के ज्ञाता अलवर मे आये और महाराज उनके गुण ग्राहक हुये।'

महाराज विनयसिंहजी ने भी उस विद्वान की पूरी सहायता की होगी

इसमे सन्देह नही हो सकता, किन्तु स्वय विनयसिहजी ने इस टीका को किया हो इसमे भारी सदेह है। यदि यह कही सम्भव हुआ हो और राजा ने स्वय ही टीका के रूप मे इस उत्तम पुस्तक की रचना की हो तो इसे साहित्य मे एक चमत्कार ही मानना चाहिये।

गद्य मे लिखा हुआ कुछ कथा साहित्य भी मिला। सिंहासन बत्तीसी के कई हिन्दी सस्करण गद्य-पद्य मे देखे, किन्तु हमे 'फितरत' का लिखा **'सिघासन-बत्तीसी'** नामक ग्रथ देख कर बहुत प्रसन्नता हुई। पुस्तक का प्रारम्भिक अश इस प्रकार है—

> श्री गणेशाय नम। पोथी सिंघासन वत्तीसी उर्दू मे[१] सवव लिखने इस दास्तान का जो अक्सर औकात गुचा दिल का व सवव चले व वाद मुपालफ जमाने के वस्तगी तमाम रखता था और नैरग साजी चरपाकीसैं किसी काम मे न लगता था नाचार वास्ते तफरीह पातर और चसपीद गीतवे के यह षियाल दिल पर गुजरा कि किताव सिंघासन वत्तीसी कू कि हिकायतैं नाद रखती है और आज तक किसीनै वीच जवान उरदू के तरजमा नही किया[२] लिखा चाहिये कि बहर हाल पढ़ने उसके से दिल कू फरहत ताजै हासिल हो। इस वास्ते वदे मुतपल्लिक 'फितरत' नै बीच पते दिलकुशा भरतपुर के वीच अहद महाराजधिराज व्रज इद्र सवाई वलवतसिह बहादर-वहादर जग के तरजमा कीया और कसीदा मदद का माफक है सिले अपने के वास्तै नजर के लिषता हू कि वीच सिलै उसके यह अफसाना नादर कि मुसम्मा व वाग बहर है नज। फैज असर से गुजर कै मौरदत हसी का होवे॥

प्रस्तावना कुछ कठिन सी मालूम देती हैं किन्तु लेखक ने जिस भापा का प्रयोग आगे किया है वह आसानी से समझ मे आ जाती है। "हिकायत पुत्लो दहम की मदन मजरी नाम—

> 'रोज दीगर कि राजा भोज ने तमन्ना और रग नशीनी की की पुत्ली दसवी ने कि मदन मजरी नाम रखती थी कहा कि ऐ राजा भोज जो कोई कि मानद राजै विक्रमाजीत की ऐसी हिम्मत और सषावत रपता होय कि जैसी उसने ब्रह्मन करी वुल-मर्ग कू समर जा वख्श दीया और दफे अजीयत किया तौ वह इस औरग पर बैठे।

---

[१] ऐसा प्रतीत होता है कि यह पुस्तक मूल रूप मे 'उर्दू जवान' मे थी। कुछ ही समय वाद इसे नागरी लिपि मे लिखा गया। इसे लिपिवद्ध करने वाले 'गोरधन सूरघ्वज' थे। लिखने का समय १८९७ दिया हुआ है और महाराज वलवतसिह का राज्यकाल १८८२-१९०९ वि० है। यह पुस्तक एक वडी सुन्दर जिल्द मे सुरक्षित है।

[२] सभवतः यह सिंहासन बत्तीसी का प्रथम उर्दू अनुवाद है जैसा रचयिता भी स्वयं अनुमान करता है।

राजा ने कहा ऐ पुतली उस हिम्मत और सपावत का वियाकर। पुतली ने कहा कि एक रोज एक जोगी वाग राजा के में वारद हुआ

नज्म— जो देपा कि आलूदेहै षाक से।
किया उसने दर्याफत इन्द्राक से।
कि यह भी वेशक खुदा दान है।
जवी से अया नूर इर्फान है॥

पुतली ने कहा कि 'अै राजा भोज अगर एसी हिम्मत और सपावत रपता हो तो इरादा वैठने इस तख्त का कर।'

पुस्तक के अत मे लिखा है—

'तमाम हुई किताव सिहासन वत्तीसी वमूजव फरमाइश महाराजे वृजेन्द्र सवाई वलवतसिह वहादुर के।'

इस तख्त का इतिहास इस प्रकार वताया गया है—

'किस्सा कहने वालो जमाने के नै इस दास्ता कू यो जीनत तहरीर वषशी है कि एक रोज श्री महादेवजी और गौरा पार्वती कैलाश वैठे थे कि गौरा पार्वती ने अर्ज किया अै महाराज तवीयत मेरी वास्ते सुनने अहवाल किसी राजा वडे के अदल और इनसाफ में कोई उसके वरावर हुआ न हुआ होय चाहती है। महादेवजी ने जो वास पातर उनका वीच सव का मौके मजूर था फरमाया।

नज्म— है मुझ कू पारा पातर यहा तलक।
आनै न दू कलाम कू मुतलक जवा तलक॥
मुतवजे गोश दिल से हो मेरी तरफ वशौक।
पूरी हो दास्तान मुरव्वत वही तलक॥

पेश्तर इसके जमानै पहले मैं तमाम देवता मुत्तफिक हो कै एक तपत विल्लौरी जवाहर सै आरास्ता करके रूवरू मेरे लाए। मैंने कवूल नजर उनके का करा पीछे मुद्दत वहुत के राजा इन्द्र वास्ते मुलाकात के गया था मैंने उसकू वख्शा और राजा इद्र ने उस तपत कू राजा विक्रमाजीत कू . . . . . '

१. फितरत ने अपने वारे मे कोई विशेष जानकारी नही दी है। इधर-उधर पता लगने पर मालूम हुआ कि फितरत साहव शहर भरतपुर के निवासी थे और उनका घर नगर के बीच में स्थित गगा मन्दिर के पास था। यह सस्कृत और फारसी के विद्वान थे तथा हिन्दी और उर्दू में भी अच्छी योग्यता रखते थे।

२ सिहासन वत्तोसी नाम का यह ग्रन्थ १८८ पत्रो मे लिखा हुआ है।

३ लेखक का दावा है कि उसका लिखा यह ग्रथ उर्दू भाषा मे

किया गया सिंहासन बत्तीसी का प्रथम अनुवाद है। इससे यह भी मालूम होता है कि लेखक ने इसे उर्दू की पुस्तक माना है। इसके द्वारा हिन्दी वालो को गद्य मे लिखी एक अच्छी चीज मिल गई।

४. इशा अल्ला खा की लिखी 'रानी केतकी की कहानी' तथा इस अनुवाद की तुलना करने पर पता लगता है कि वह फारसी लिपि मे लिखी गई हिन्दी की किताब थी और यह नागरी मे लिखी हुई उर्दू की। इस पुस्तक की भाषा मे उर्दू व्याकरण का ही अनुकरण किया गया है। यह कहानी इशा की पुस्तक से कुछ ही दिनो बाद लिखी हुई गद्य पुस्तक है।

नागरी लिपि में उपलब्ध होने के कारण इसे मत्स्य के गद्य साहित्य मे शामिल किया गया है।

'अकल नामा' भी गद्य मे लिखा गया है। सवत् १८९६ के आस-पास लिखे गए इस गद्य ग्रथ का नमूना देखे—

'श्री मन्महागणाधिपतये नम.। श्री श्री सरस्वत्यै नम। अथ अकल नामा लिष्पते। पातसाह अकवर वीरवल से कही। श्री भगवान हाथी की पुकार सुनी आप ही दौडे तो कोई चाकर नही हुता[1]। तव वीरवल कही कि फेरि अरज करूगा एक षोजा पातसाह के पोता कू रोज हजूर में लाउता। तासू वीरवल कही। जो पातसाह के पोता की सूरति माफिक मोम की सूरत वनाय। गहना पहराइ हजूर में लाउ। और जानता ही हौद मैं गिराउ। सो षोजा नें वैसे ही किया। तव पातसाह देषत ही हौद में गिरे। सौ मोम की पुत्ली लेके वाहर आये।[1] वीरवल कू पूछी यह क्या है। तव वीरवल कही। आपके चाकर नही थे। जो आप ही पोते के काढने कू दौडे। सो जैसे ही ईस्वर की प्रीति भक्तन में होती है। सो गज के छुड़ायन के वास्ते आप ही धाए।'

इस गद्य मे स्पष्टतया खडी बोली के दर्शन हो रहे हैं—

अ. क्रिया—अरज करूगा। भक्तन मे होती है।
वैसे ही किया। नही थे।

आ कारक—बीरबल से, पोते के, पोता की, पातसाह के।

इ वाक्यो की बनावट।

'कू' आदि शब्द तब तक चल रहे थे। इस पुस्तक का निर्माण १८९६ वि. में महाराज वलवतसिहजी के कहने पर हुआ—

दमरथ सुत रघुवस मनि, व्यकटेस तिहि नाम।
श्री वृजेन्द्र वलवत के, करौ सदा मनकाम॥

[1] भाषा मे खडी बोली की झलक।

अलवर में प्राप्त **'अकल नामा'** भाषा के रूप की दृष्टि से पिछड़ा हुआ मालूम होता है, इसमे जगह-जगह अलवरी बोलचाल की भाषा के रूप मिलते हैं, परन्तु स्थान-स्थान पर खडी बोली भी दिखाई देती है।

> 'पातसाह साहजिहा कैद मे थे। तहा आलमगीर ने जाय अरज करी। जो आप तौ आठवैं दिन अदालत बैठते थे। अर मैं तौ नित अदालत करता हू। साहजिहा कही हम आठवैं दिन अदालत करते तब नकीब फिरीयादी कू बलावता सो कोई आवता नही। अरु तुम नित अदालत करते हो, तिसपैं फिरयादी बाकी रहत हैं।

कुछ अन्य वाक्य—

> किसान को कहुत रियायत करणी। गई वस्तु का सोच कधी न करिये।।[1]

> 'ईश्वर को मनते न भुलाइये। विना उपदेस और भली चर्चा के मुपने कोई वचन नही काडिये। बालक और स्त्री जो कहे ताकी प्रतीत न कीजिये। और इनौते मन का भेद न कहिये।[2]

संवत् १६१० के आस पास का गद्य भी देखिए जो **'सुजान चरित्र'** की प्रस्तावना के रूप मे दिया हुआ है—

> '· · · ····· अप्ने मन्कू बढ़ावे कि इस समैं मे अबके मनुष्यो से जैंसी सूर-वीरता होनी कठन है जो इस पौथी के पोधने मे बहुत श्रम हूआ है। पहले तौ श्री महाराज सुरग गामी नैं अप्ने आगे आप उस्का एक एक अक्षर ऐंसा शोधा कि उस्के आगे पोथी असल मे अशुद्धता विशवास होता था किस वास्ते कि आप भाषा में बहुत समझते थे और बनाते थे कि बडे बडे पडत कवीश्वुर सराहना करते थे और उस पौथी के शोधने समे उन्कू चाहना दूसरी पोथी की भी नही होती थी। और पीछे सुर्गवाशी होने महाराज के पडत गोर्द्धनदास व लाला छोटेलाल और लाला बाकेलाल ने कि इस पोथी कू लिखा है इसके शोधने मे बहुत श्रम आया। ·· ·· '

यहाँ भी भाषा का रूप कुछ आगे बढता दिखाई नही देता। वैसे यह भाषा इशा और सदासुखलाल से लगभग ५० वर्ष बाद की भाषा है किन्तु इसमे शिथिलता और अव्यवस्था स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। राजाओ की सीधी देख रेख मे प्रणयन होने पर भी राजघराने की यह पुस्तक गद्य का निखरा रूप नही पा सकी। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्स्य प्रदेश मे गद्य का विकास उस तेजी के साथ नही हुआ जैसा अंग्रेजी इलाकों मे हुआ। गद्य की भाषा जिस

---

[1] अलवर सम्बन्धित प्रयोग।

[2] क्रियाओं मे खडी बोली अपना काम करती दिखाई दे रही है। ये रूप मुसलमानी प्रसगो मे ही अधिक मिलते हैं।

रूप मे थी उसी मे चलती रही। इसके लिए न राजाओ का ध्यान था और न लेखको का। सम्भव है उस समय राज-दरबारो मे गद्य की ओर यही मनोवृत्ति रही हो। अंग्रेजो को तो ईसाई धर्म का प्रचार करना था। उन्हे क्लर्क इकट्ठे करने थे तथा लोगो की भाषा मे उनके साथ घनिष्ठता स्थापित करनी थी। देशी राज्यो में इस प्रकार की कोई आवश्यकताए न थी। अतएव गद्य अपनी मनमानी गति से चलता रहा। राज्य की ओर से भी गद्य-विस्तार के लिए कोई विशेष प्रवध न था क्योकि साहित्य की दृष्टि से केवल पद्य को ही सम्मान-पूर्ण स्थान दिया जाता था। कवियो से पद्य सुनने की आशा की जाती थी और इसी आधार पर पुरस्कार-सत्कार आदि की व्यवस्था होती थी। अत यह स्वाभाविक ही था कि गद्य की ओर विद्वानो का ध्यान नही गया। वह वोलचाल की भाषा के रूप मे ही चलता रहा। जिस गति से ब्रिटिश प्रातो मे गद्य को प्रोत्साहन मिला और उसकी वृद्धि हुई वह देशी राज्यो मे न हो सका।

खोज मे एक अधूरी पुस्तक **'वैराग-सागर'** मिली। लेखक के नाम का पता नही लगता। इस पुस्तक मे अनेक भक्तो की कहानिया दी गई हैं और ये भक्त प्रायः वल्लभसम्प्रदाय के हैं। अत. पुस्तक का लिखने वाला कोई वल्लभकुली होगा। सूरदासजी के सवध मे दी गई वार्ता देखिए—

> 'दोऊ नेत्रन करि हीन एक व्रजवासी कौ लरिका व्रज में सूरदास। सो होरी के भडउवा वनावै ह्वै तुकिया। ताके वासतै श्री गुसाई जी सौ जाय लोगनि नै कही। ता पर श्री गुसाईजी वा लरिका कौ वुलाय वाके भडउवा सुने हसे श्री मुष तै कह्यौ जु लरिका तू अव भगवत जस वनाय। श्री भागवत अनुसार॥ प्रथम जनम की लीला गाय। तव वाने कही राज हू कहा जानौ। तव आग्या करी भगवत इच्छा है तू वनावौगौ। ग्रैसे श्री गुसाई जी की आग्या तै भगवत लीला भ्यासी। सरस्वती जि अग्र भई। प्रथम ही प्रथम श्री सूरदासजी श्रीजी जनम लीला की वधाई वनाई। अरु श्री गुसाईजी कौ सुनाई। तव वहौत प्रसन्न भये। कठी दुपटा भट्टा प्रसाद दयौ। अरु सवनि सौ आग्या करी जु श्री ठाकुरजी की आग्या तै हम कहत है। वरस पै दिन जनमाष्टमी की जनमाष्टमी श्री गोवर्द्धननाथजी के आगै प्रथम एक ही वधाई गावैगे सो अव लौ एक ही गावत है—
>
> **राग आसावरी—**
>
> व्रिज भयौ महर कैं पूत जव यह वात सुनी।
> सुनि आनंद सव लोक गोकुल गुनित ग्रुनी॥
> ग्रह लगन नछित वल सोधि कीनी वेद धुनी।
> आदि।

इस वार्ता के आधार पर सूरदासजी के जीवन पर कुछ प्रकाश पडता है--

१ सूरदास जाति के राजमजूर थे ।
२ वे जन्मान्ध थे ।
३ वे पहले होरी के भडउवा वनाते थे ।
४. गुसाईजी ने सूर के वनाये भडउवा सुने और कृष्ण की लीला लिखने की प्रेरणा दी ।
५ गोवर्द्धनजी के आगे गाया जाने वाला राग आसावरी प्रचलित हुआ ।

जैसा पहले सकेत किया जा चुका है कि मत्स्य-प्रदेश का गद्य वहुत धीमी गति से चला । आज से कोई ६० वर्ष पहले गद्य का एक नमूना 'अलवर राज्य का इतिहास' नामक हस्तलिखित पुस्तक से नीचे दिया जा रहा है—

'जव से रावराजा प्रतापस्यघ जन्म पायौ तव ते राजगढ मैं आनद अधिकायौ सवत् सत्रासै पूरन समै सवाई जयसिह सुरगवासी भये अरु इनके पीछे महाराज इसुरीस्यघजी वरजोर जैंपुर गद्दी व्राज गये महाराज इसुरीस्यघजी समस्त कछवाह सुभट कू जयपुर वुलवाये तामै कितनेक अमराव तो अतरगत माधोस्यघजी सू मिले रहे जैसी हवा देषी तैम ही उपाहने दये अरु नस्कान ने ईसरीस्यघजी की ही अग्यानुसार स्वाम घर्म वार जुद्ध मे जुटे ......'

यह हिन्दी गद्य का नमूना हैं, अव इसी पुस्तक की खडीवोली के उर्दू-मिश्रित पद्य का नमूना देखिए--

दिया उसको ईश्वर ने खुद अस्तियार ।
किये मोजे ढाई से ढाई हजार ॥

कहा कौन इरशाद आये यहा । कहा के हैं सरदार जाते कहा ॥
इन्होने कहा राव परताप नाम । कि है राजगढ माचहेडी मुकाम ॥
दिया भेजके हलदिया छाजूराम । किया जाट से जाके इसने सलाम ॥

हमारे अनुसधान मे कुछ हुक्मनामे तथा रुक्के भी मिले । ये फारसी और नागरी लिपियो मे हैं । इनमे से केवल कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं । पहला हुक्मनामा राव प्रतापसिहजी को मुगल सम्राट द्वारा 'राजावहादुर' का पद दिए जाने के सवध मे है । राव प्रतापसिह मुगलो की ओर से भरतपुर के जाटो से लडे थे । यह सब काम खुशालीराम हल्दिया के परामर्श से किया गया था । अपनी सेना के साथ प्रतापसिह आगरा पहुचे, और वहा मुगलो की सहायता की । इस युद्ध मे जाटो की पराजय हुई और बादशाह ने प्रतापसिहजी को 'राजावहादुर' की पदवी दी ।

'...... . . ... प्रतापसिंह वल्द मोहव्वतसिंह मनसबे पच हजारी जात व पच हजारी सवार व खितावे राजाबहादुर व अताये आलम व नक्कारा सर अफराज शुद वाके ५ दहम शहर........'

इस प्रकार प्रतापसिंहजी 'राजावहादुर' बने।

पहले पत्र भी पद्य मे लिखे जाते थे। गद्य-पद्य मय पत्र का एक नमूना देखे।[1]

गो ....
स्वा .. ..(इधर का अश फट गया है। किन्तु 'गोस्वामी' स्पष्ट लिखा मिलता है।)
मी .. ..
श्री पद अवुज के सदा, रहत तुहारे ध्यान।
करत रहत रजनी दिवस, रूप सुधारस पान॥
ध जा प्रेम की गोपिका, सुनीयत हीं निज कान।
उन हू ने कछु सरस तुम, प्रगट लषे नेंनान॥
र सिकन के सिरताज तुम, करुणासिन्ध दयालु।
तुम्हरी कृपा कटाक्ष तैं, सव कोऊ होत निहाल॥
जी वन धन नेहीन के, तुमही कृपानिधान।
तुमरी महिमा कौ कोऊ, कहि विधि करैं वषान॥
जो ....
(फट गया है।)
ग ....

प्रथम तुकनि के प्रथम अक, सब जोर निहारौ।
दसदनि मे लिष्यौ सु जहि, विध नाम तिहारौ॥

यह 'गोस्वामी श्रीधरजी जोग' यह पत्र लिखा गया है। इस १८१७ मे लिखे गए पत्र के गद्य भाग का नमूना इस प्रकार है—

'अब आपकी कृपा ते जीवासिर ह्वै गयो हू। श्री जी करेगें तो जलदी वा कार्ज तें छूट जावोगो आप कृपा राषत रहौगे अरु पत्र लिषत रहौगे। मेरी वौहत वौहत जै श्रीकृष्ण की कहै —

दीप दिवाकर वसु अरु ससी, सुक्ल पच्छ वुद्धवार।
चैत्रमास सुभ नद तिथ, सवत मिती विचार॥[2]

---

[1] यह पत्र गोस्वामी श्रीधरानंदजी को लिखा गया था। श्रीधरानंदजी ने 'साहित्य-सार-चिन्तामणि' आदि ग्रन्थ लिखे है। महाराज रणजीतसिंह ने इनको 'कवीन्द्र' की उपाधि दी थी। यह पत्र १७०–७५ वर्ष पुराना है।

[2] तिथि पद्य मे है सवत् १८७१।

इस पत्र के नीचे पुन लिखा है—

'सव को जै श्री कृष्ण वोहत वोहत लिखी है ।
साष्टांग दडवद्वचन ।

श्री गिर्धरजी महाराज यहा राजापेरा तें आये हे सो काल ही फेर राजापेरा कू गये और वोहत प्रसन्न है ।'

गुसाई श्रीरामजी का पत्र दीवान जवाहरलाल के नाम ('रणजीतकाल')[१]

'श्री हरदेवजी सहाय

'श्री गुसाई श्रीरामजी कौ आसीरवाद श्री दीवान जवाहरलालजी कौं आपकौ ब्रह्मनि धरमग्य जानि कैं हम तैं यह अँहैवाल आपकौ लिष्यो सो तुम याह वाचौगे आगे हम जैंपुर कू जाते है तो अपनै पूवसी ठाकुर और हीरालाल आमिल और च्यारि भले आदमी भेजि धरम करम दैं आनैं हमकौ वुलाय लीनो मु वुलाए की सी रापो सो हमारो दो रुपैया रोजीना धरती दैंन कैंहै कैं आपनैं हमकौ वुलायो सो आप धरमातमा हो सो करज काढि काढि अव ताईं भोग लगायो सो .....

गाडी चारि छकरा दो भेजि दीजैं जहा हम जाय तहा करि आवैं ।[२]

..... हमारी चाकरी तौ कथा भजन है जौ कोऊ सुने तौ ।

प्राचीन सुक्का, रुक्का परवाने देखने पर कुछ वातें विशेष रूप से पाई जाती हैं-

१. सरकारी अर्द्ध-सरकारी पत्रो मे विक्रमी सवत् के साथ हिजरी सवत् भी पाया जाता है । ३०० वर्ष पुराने कागजो मे भी यह प्रवृत्ति मिलती है ।

२ देवता, ठाकुरजी का नाम केवल ऊपर लिखा जाता है; यदि पत्र के वीच मे देवता का नाम कही आ जाय तो'.... .....'इस प्रकार स्थान छोड देते हैं और ऊपर देवता का नाम लिखते हैं ।

---

[१] श्री हरिदेवजी, भरतपुर, के वर्तमान पुजारी ने मुझे वहुत से सुक्के, पत्र, कविता आदि दिखाए जो १५०–२०० वर्ष पुराने हैं । उनमें उस समय के गद्य और पद्य के नमूने तथा कुछ ऐतिहासिक सामग्री भी मिलती है । ये पुजारी राजाओ के गुरु रहे हैं, किस प्रकार गुरु-परिवतन हुआ इस वात के भी प्रमाण मिले ।

[२] जैंपुर जाते हुए गुसाईजी को भरतपुर ठहरा लिया गया । फिर 'भोग-रांग' में कमी होने से उसकी शिकायत से भरा यह व्यग्य युक्त पत्र है । यह विरक्ति इस कारण हुई कि गुसाइयो ने राजा के साथ युद्ध मे जाने से मना कर दिया । वैरागियो ने साथ दिया इसका परिणाम यह हुआ कि भरतपुर के राजा वैरागियो के चेले हो गये ।

३. इन रुक्को मे से बहुत से हिन्दी-फारसी दोनों में हैं और उनमे बादशाही मोहर लगी हुई है। हस्ताक्षर की प्रणाली नही देखी जाती, मोहर ही लगाई जाती थी। जैपुर के परवानो में फारसी-हिन्दी दोनो भाषाए हैं।

४. इतना समय होने पर भी अक्षर बहुत ही स्पष्ट हैं। घसीट का नाम नही। ऐसा मालूम होता है कि उस समय पत्र बहुत ही सावधानी के के साथ लिखे जाते थे। पत्रो की भाषा ब्रज है, कही-कही खड़ीबोली के रूप भी मिल जाते हैं।

५. पत्रो में सब प्रकार की सामग्री मिलती है--सरकारी, अर्द्ध-सरकारी, व्यक्तिगत। पत्रो मे पद्य का प्रयोग भी होता था। कुछ राजा लोग भी अपने गुरु को पत्र लिखते थे। भरतपुर के महाराज ने भी अपने गुरु को युद्धस्थल से एक पत्र लिखा था।[1]



[1] महाराज रणजीतसिंह द्वारा अपने गुरु श्रीधरानन्दजी को लिखे पत्र का कुछ अंश-

कीनौ परमारथ पै स्वारथहू वन्यो नाहि,
गयो सब अकारथ सो कैसे के वषानो जू।
लैन कहूयो दिल्ली अरु आगरो दोऊन पै,
दई धून उलटी ऐसो भयो यह वषानो जू।
निसदिन पछिताऊ वा घरी को न पाऊ,
हरिदेव सो रषाऊ अब अति ही खिसानो जू।
दिसानें जू पेल्यो सो तो भयो हूं अकेलो अब,
मेलो कब होइगो सु नाही यह लषानो जू।

यह पत्र भी उक्त गुसाईं जी के पत्र-सग्रह से मिला; क्योकि बहुत दिनो तक वह राज का गुरुद्वारा रहा।

गुसाईं जी का पत्र-सग्रह बडा महत्त्वपूर्ण है जिसमे उस समय की धार्मिक तथा ऐतिहासिक अनेक बातो का पता लगता है। बड़े यत्न के साथ गुसाइयो के ये वशज इन पत्रो को अपने पास सुरक्षित रखते रहे हैं तथा समय पर अपने अधिकारो की रक्षा हेतु इनका उपयोग भी किया है।

अनुवाद - ग्रन्थ

अनुवाद के क्षेत्र मे मत्स्य-प्रदेश काफी आगे रहा। भरतपुर के दो प्रसिद्ध कवि सोमनाथ तथा कलानिधि के नाम इस विषय मे अग्रगण्य हैं। सोमनाथजी मथुरा से तथा कलानिधिजी अन्य राजाओ के दरबारो से आकर वैर के राजा प्रतापसिंहजी के आश्रय मे रहने लगे। अन्य ग्रन्थो के अतिरिक्त इन दोनो कवि-श्रेष्ठो ने अनुवाद का काम भी बडी लगन के साथ किया और दोनो ने मिल कर सपूर्ण वाल्मीकीय रामायण का अनुवाद कर डाला। सोमनाथ ने अयोध्या, आरण्य, किष्किधा और सुन्दर काण्ड को लिया और कलानिधि ने बाल, युद्ध तथा उत्तर काण्ड को सभाला और इस प्रकार सपूर्ण रामायण को हिन्दी पद्य मे परिवर्तित कर दिया। इनके द्वारा किए गए अनुवादो का पूर्ण सग्रह तो मुझे प्राप्त हो नही सका फिर भी जो सामग्री मिली है उनके आधार पर कहा जा सकता है कि इतना बडा काम करने पर भी काव्य-छटा का उत्कर्ष निभाया गया है। इसके अतिरिक्त महाभारत के अनेक पर्वो के अनुवाद भी मिले। कर्ण पर्व की भाषा गोवर्द्धन नाम के एक कवि ने की जिसमे पद्य के अतिरिक्त गद्य भी मिलता है। यह बहुत पुराना अनुवाद है। रसानद द्वारा की गई अश्वमेघ पर्व की 'भाषा' भी मिली है।[1] यह अनुवाद सवत् १८७५ वि० के आस पास का है।

काव्य तथा अनुवाद दोनो की दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि मत्स्य मे किया गया यह कार्य निम्नकोटि का नही है। वैसे प्राय. छायानुवाद ही किया गया है क्योकि उस समय की प्रचलित प्रणाली कुछ इसी प्रकार की थी। परन्तु इस अनुवाद मे काव्य के गुण भी पाए जाते हैं।

भागवत का अनुवाद करना उस समय एक प्रचलित बात थी, विशेष रूप से इस ग्रथ के दशम स्कध का प्रचार था। इस दशम स्कध मे ही भगवान कृष्ण की लीलाओ का वर्णन है। इस कार्य के करने मे भी माथुर कवि सोमनाथ आगे रहे। इनके द्वारा किया गया 'दशम स्कध भाषा उत्तरार्द्ध' ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। उपनिषदो के भी अनुवाद हुए। कलानिधि ने तैत्तिरीय, माडूक्य, केन और प्रश्नोपनिषद् के अच्छे अनुवाद किए और व्यवस्था करते समय अपनी बुद्धिमत्ता का सुन्दर परिचय दिया। कलानिधि सस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान् थे और

---

[1] 'सग्राम-रत्नाकर', 'सग्राम-कलाधर' नाम के दो ग्रंथ बताये जाते हैं। हो सकता है ये दोनो ग्रथ-एक ही हो और इनमे रसानद द्वारा लिखित सपूर्ण महाभारत का पद्यानुवाद हो।

सभवत. वैर मे रहते समय उनका ध्यान सस्कृत पुस्तको के अनुवाद की ओर अधिक गया। कहा जाता है इन्होने 'दुर्गासप्तशती' का भी अनुवाद किया था। उन्होने 'रामगीतम्' के नाम से सस्कृत मे एक मौलिक गीतिकाव्य भी लिखा था।[1] गीता का अनुवाद भी हुआ। इस प्रकार मत्स्य प्रदेश मे सभी धार्मिक ग्रथो के अनुवाद हुए—

१. रामायण,
२. महाभारत,
३. भागवत,
४ गीता,
५ उपनिषद्, आदि

इनके अतिरिक्त सस्कृत के तथा नीति साहित्य के ग्रथो का अनुवाद करने की ओर भी प्रवृत्ति रही। हितोपदेश के कई अनुवाद मिले। 'सिहासन बत्तीसी' का हिन्दी रूपान्तर अनुवाद तथा छाया दोनो मे पाया गया। सस्कृत पुस्तको के उर्दू अनुवाद भी किए गए और सर्व साधारण के हेतु उन्हे नागरी मे लिपिबद्ध किया गया।

सस्कृत के अतिरिक्त फारसी ग्रन्थो का भी अनुवाद होता रहा। इनमे कथा-साहित्य का तो आधिक्य रहा ही जैसे 'अनवार सुहेली', साथ ही राजनीति के ग्रन्थ भी हिन्दी मे अनूदित किए गए। 'आइने अकबरी' का एक छोटा छायानुवाद 'अकलनामा' के अतर्गत प्राप्त हुआ है।

मत्स्य-प्रदेश मे भारत की अन्य भाषाओ मे लिखित पुस्तको के अनुवाद नही मिलते। उन दिनो इस प्रकार की पुस्तको के अनुवाद करने की प्रथा भी

---

[1] रामगीतम् का एक श्लोक—

खेलन्मजुल-खजरीटनयना पूर्णेन्दु-बिबानना।
तारामडलमडनातिविशदज्योत्स्नादुकूलावृता ॥
वक्षो जायित-चक्रवाकमिथुना चचन्मृणालीभुजा।
फुल्लत्कोकनदौघ पाणिचरण भाते शरत्कामिनी ॥

शरत्कालीन वर्णन के साथ कामिनी का रूप-लावण्य। शरद ऋतु के सदृश यह कामिनी किसे अच्छी न लगेगी। यह ग्रंथ गीत-गोविन्द की पद्धति पर है। शृगार के सभी गुणो से परिपूर्ण यह ग्रथ वर्तमानकाल के कवि 'हरिऔधजी' का पथ-प्रदर्शक सा प्रतीत होता है। ऊपर दिए गए छद से मिलाते हुए 'हरिऔधजी' की यह पक्ति देखिए जो उसी छद मे है—

शार्दूलवि०—'रूपोद्यानप्रफुल्लप्रायकलिका राकेन्दुबिबानना' आदि।

नही थी । संस्कृत तथा फारसी ग्रन्थों के ही अनुवाद हुआ करते थे। इसी के लिए विद्वान पडित दरवारो मे रखे जाते थे । मत्स्य-प्रदेश का हस्तलिखित साहित्य देखने पर पता लगता है कि दरवारो मे १. सस्कृत, हिन्दी तथा फारसी के विद्वान, २ रीति तथा काव्यकार, ३ लिपिकार, ४. नीतिकार, ५. कर्म-काण्ड के विद्वान पडितो का सम्माननीय स्थान था । राजाओ के यहा रीतिग्रंथों का निर्माण, धार्मिक पुस्तको का हिन्दी-रूपान्तर आदि साहित्यिक कार्य वरावर चलते रहते थे । राजा यद्यपि स्वय विद्वान नही होते थे, किन्तु गुणीजनों का सत्कार करते थे और अपना आश्रय प्रदान कर उन्हे अपने-अपने कामो मे लगाए रखते थे । उस समय पुस्तको को लिपिवद्ध करना भी एक कला थी । जीवाराम चौबे, वालगोविंद गुसाई, देवा वागवान, गोवर्द्धन आदि कई ऐसे लिपिकारो के नाम मिले हैं जो राजदरवारो में नियमित रूप से ग्रन्थो को लिपि-बद्ध करने का काम किया करते थे । पुस्तको को लिखने मे पुष्ट पत्र पर चमकदार काली स्याही का प्रयोग होता था । शीर्षक तथा हाशिये के लिए और रंगो की स्याही भी काम मे आती थी । कुछ पुस्तको[1] मे चित्रो का होना इस वात को वताता है कि यहा के दरवारो मे चित्रकला विशारदो को भी आश्रय मिलता था । अलवर के म्यूजियम मे एक उत्कृष्ट कोटि का चित्र-सग्रह है जिनमे कुछ चित्र राज्य के कर्मचारियो द्वारा निर्मित किए गए हैं । इन सग्रहो की अग्रेज विद्वानो ने मुक्त कठ से प्रशसा की है ।[2] सक्षेप मे कहा जा सकता है कि अन्य भाषाओ के ग्रन्थो को हिन्दी का कलात्मक रूप देने मे इन राज्यो द्वारा अच्छी व्यवस्था की गई थी ।

कलानिधि ने वालमीकि-रामायण के वाल, युद्ध और उत्तर काण्डो का अनुवाद किया है । इन्होने भी अनुवाद करने मे उसी प्रचलित परम्परा का अनुकरण किया जो हमे अखैराम तथा सोमनाथ मे मिलती है । सूदन के काव्य मे भी हमे वही प्रवृत्ति मिलती है । इन कवियो द्वारा अपनी रचनाओ के प्रत्येक अध्याय या सर्ग के उपरान्त अपने आश्रयदाता की प्रशसा मे एक छंद की पुनरावृत्ति की गई है । इस छद के प्रथम तीन चरण तो सभी जगह एक समान होते हैं किन्तु चतुर्थ चरण मे वर्ण्य-वस्तु के अनुसार परिवर्तन हो जाता है जिससे कथानक का सकेत वरावर मिलता रहता है । युद्ध काण्ड के अतर्गत कलानिधि

---

[1] जैसे चत्रभुजदास' कृत 'मधुमालती' । हमे इस पुस्तक की दो प्रतिया मिली जिनमे से एक सचित्र है ।

[2] टी० एच० हेन्डले—अलवर एन्ड इट्स आर्ट ।

का एक छद देखिए—

व्रज चक्रवर्ति कुमार गुनगन गहर सागर गाजई।
श्री रामचरणसरोज अलि परतापसिह विराजई॥
तेहि हेत रामायण मनोहर कवि कलानिधि ने रच्यौ।
तह युद्ध काण्ड व्यासि मे पुनि इन्द्रजित गर्जन मच्यौ॥

इस छद को मूल श्लोक से मिलाइये—

अथेन्द्रजिद्राक्षसभूतये तु जुहाव हव्य विधिना विधान वित्।
दृष्ट्वा व्यतिष्ठन्त च राक्षसास्ते महासमूहेषु नयानयज्ञा॥
(सर्ग ८२ — श्लोक २८ अतिम श्लोक)

इस बयासीवे अध्याय मे बताया गया है कि मेघनाद ने राक्षसो की शक्ति को बढाने के लिए पुन यज्ञ किया।

अपने आश्रयदाता कुमार प्रतापसिहजी के हेतु कवि कलानिधि ने रामायण के जिन काण्डो का भाषा मे प्रकाश किया उनमे स्वय कवि की काव्य-प्रतिभा भी गौण नही है।

सवत् १८०५ का लिपिबद्ध 'भाषा कर्ण-पर्व' अलवर की खोज मे मिला। इसके प्रथम दोहे से पता लगता है कि इस पर्व की भाषा करने वाला कोई गोवर्द्धन नाम का कवि था—

"श्री गणेशाय नम अथ भाषा कर्णपर्व लिष्यते–

दोहा– गणपति गवरि गिरीस गुर, सुमर सारदे माय।
कर्ण-पर्व भाषा करत, गोवर्द्धन कवि गाय॥"

इस पुस्तक मे आरम्भ तथा अत मे कुछ टिप्पणिया भी मिलती हैं, जो सभवत किन्ही अन्य व्यक्तियो द्वारा दी गई है। पुस्तक अधूरी ही रह जाती है और उसके अत मे एक नोट लिखा है जिससे सवत् आदि का पता लगता है—

'कर्न पर्व इतनौ ही छै। स० १८०५ असाढ सुदि ४ लिषी पोथी हरिराम–कान्हजी पवास दीन्ही।'

इस नोट के आधार पर पता लगता है कि यह अनुवाद सवत् १८०५ के पहले ही हुआ होगा। लिपिकार को पूरा अनुवाद नही मिल सका, पता नही अनुवादक ने इतना ही अनुवाद किया अथवा अनुवाद का कुछ अश लुप्त हो गया। लिपिकार को 'इतनौ ही छै' कह कर सतोष करना पडा। यह हस्त-लिखित ग्रन्थ बहुत ही अस्पष्ट लिपि मे है और अक्षरो की बनावट भी बहुत बेढगी है। कर्ण को किस प्रकार सेनापति के पद पर नियुक्त किया गया इस

प्रसंग को देखिए—

करन नृपति गुर सुत प्रबल अस्त्र सकल गुन ग्राम ।
जुध अयुध करै सुभट सिकल अघट गनि काम ।।
दिय अभिषेप जु करन कौ कियव मेन सिरदार ।
अन धन कचन मनि गुनिक दान मान जुत भार ।।

इससे सबधित श्लोक देखिए—

ततोऽभिपिक्ते राजेन्द्र निष्कैर्गोभिर्धनेन च ।
वाचयामास विप्राग्रयान् राधेय परवीरहा ।।

(कर्णाभिषेके दशमोऽध्यायः । ४८)

इस पुस्तक मे दोहा तथा छप्पय छंद की ही प्रधानता है। यद्यपि यह पुस्तक अधूरी है किन्तु कर्णपर्व का बहुत सा अग आ गया है। इस प्रति की पत्र सख्या ९३ है और बहुत छोटे अक्षरो मे पास-पास लिखा हुआ है। स्थान-स्थान पर इस प्रकार का गद्य मिलता है—'सजयोवाच', 'धृतराष्ट्रोवाच' के स्थान पर गद्य मे 'सजय कहतु है', 'धृतराष्ट्र पुछतु है' आदि लिखा है। युद्ध-वर्णन मे कवि की ओजमयी वाणी की छटा देखिए जो उस समय की वीर-काव्य-प्रणाली के अनुरूप है—

प्रात जुट दिष्पिनी वोट पथ्थं समथ्थँ । छुटैं वान वान अमान सुहथ्थँ ।।
अय जुध जोधा कीय ऊड़ भारी । सवै भेद भेदे अयुध सम सभारी ।।[1]

कहा जाता है कि **'सग्राम रत्नाकर'** के नाम से भरतपुर के प्रसिद्ध कवि रसानद ने महाभारत का अनुवाद किया। यह पूरा अनुवाद तो नही मिल सका परन्तु मेरी खोज मे 'जैमन अश्वमेध' का अनुवाद अवश्य मिला। अनुवाद मे दी गई पक्तियो से विदित होता है कि इस कार्य को करने की आज्ञा राजा द्वारा दी गई थी—

लहि वृजेंद्र अज्ञा हितकारी । रसआनद निज चित्त विचारी ।।
जैमन अस्वमेव की भाषा । रचवे हेत वढी अभिलाषा ।।

ग्रन्थ आरम्भ करने का समय भी दिया हुआ है—

ठारै सै पच्यानवै, भजि हर-चरन निदभ ।
कातिक शुक्ला सप्तमो, कियो ग्रथ आरभ ।।

---

[1] सूदन के 'सुजान-चरित्र' से मिलायें।

इस पर्व के अत मे दी गई पक्तियो से यह सिद्ध होता है कि इस कवि ने अश्वमेध पर्व से पहले के अन्य सभी पर्वों का अनुवाद किया था। कवि ने बहुत ही स्पष्ट शब्दो में लिखा है—

'इमि पर्व चतुर्दस मे सुभाइ। राजेंद्र दिए तुमको सुनाइ॥

इस प्रकार हे राजेन्द्र! मैंने आपको १४ पर्व सुना दिए है।

इसके पश्चात् कवि कहता है—

"अब वासास्रम पर्व[1] जु विसेस। कहि हो सुनि चित दे कुरु नरेस॥
कुन्ती समेत गजपुर मझार।[2] है भरतर्षभ पार्थव उदार॥
एकादस वर्ष प्रमान थित। वह बसे सु सुख सपति सहित॥
यह सकल चरित उत्तम महान। बलवत भूप आज्ञा प्रमान॥
सुरवानी के अनुमान वेस।[3] भाषा किय रस आनद विसेस॥"

इससे भी यही पता लगता है कि बलवत भूप की आज्ञा को मान कर कवि रसानंद ने सस्कृत भाषा मे लिखे चरित्र और कथाओ को भाषा के माध्यम द्वारा सुनाया।

इस पुस्तक के समाप्त होने का समय १८९९ वि० है। इससे पता लगता है कि इस पुस्तक का कार्य चार वर्ष में पूरा हुआ।

सवत् ठारै पै नवै नो गुनो (१८९९)। कार्तिक की कृष्णा सु पचमी तिथि गुनो।
ससि वासर लषि उत्तम ससि की प्राप्ति है। कृष्ण कृपा ते भयो सु ग्रथ समाप्त है॥

हमे इस ग्रन्थरत्न की सवत् १९०३ की लिखी एक प्रति प्राप्त हुई थी।

---

[1] आश्रम वासिक पर्व न० १५।

[2] हस्तिनापुर मे। 'घननाद', 'रिपुसूदन' 'दशकधर' वाली तुलसी-प्रणाली 'हस्तिनापुर' मे भी लक्षित हो रही है।

[3] देववाणी—सस्कृत—मे लिखे अनुसार। कवि की इस उक्ति से विदित होता है कि यह एक अनूदित ग्रथ है। कवि ने इस ग्रंथ को 'सग्राम रत्नाकर' कहा है जो 'महाभारत' के लिए बहुत उपयुक्त है। कवि ने अपने अनुवाद मे मूल पुस्तक के 'अध्याय' को 'तरंग' कहा है। रत्नाकर मे तरगों का होना स्वाभाविक है।

यह प्रति राजा के लिए लिखी गई थी, और इसके लिपिकार थे चौवे जीवाराम ।

"चौवे जीवाराम ने, पुस्तक लिष्यौ सुधारि ।
भूल चूक जो होइ तौ, बाचौ नृपति विचारि ।।

श्री जी सदा सहाइ ।। सवत १६०३ । मिती भाद्रपद वदि त्रयोदसी।। १३ ।। लिषी भरतपुर गढ किले मधि ।। १ ।।

पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार से है—

श्री न'' हा णा प ' - न''' अ····· स······म'' '''त्ना······ र ' ष्य ''' दोहा[1]

इस पुस्तक मे इस प्रकार अक्षरो का स्थान छोड कर लिखने की प्रवृत्ति स्थान-स्थान पर पाई जाती है। कई अन्य ग्रन्थो मे भी इसी प्रवृत्ति का अनुगमन किया गया है। यद्यपि यह पुस्तक अनुवाद रूप मे प्रस्तुत की गई है किन्तु काव्य की दृष्टि से भी यह रसानद के स्वरूपानुसार ही है।

गणेश-वदना देखिए—

"विघनहरन अमरनसरन, करत सुरासर सेव ।
मोदकरन करुनाभरन, जय जय गणपति देव ।।

छप्पै–सोभित मुकट मिपंड गड मडित अलकावलि ।
कन्त चददुति मद कुदनिंदक दसनावलि ।।
कटि सुदेस पट पीत करन कुडल छवि छाजै ।
'रस आनद' दुति देपि कोटि मन्मथ छवि लाजै ।।

अतुलित प्रताप विक्रम विदित, सकत न स्रुति और सुमृति भनि ।
व्रज - मडन पूरन अम जय, अवतारी अवतार मनि ।।

गणपति, शिव, हनुमान आदि की प्रार्थना के उपरान्त 'राजवस' का वर्णन है। इस पुस्तक मे ६७ तरगें है और प्रत्येक तरग के अन्त मे भरतपुर की प्रचलित प्रणाली के अनुसार एक ही छद की आवृत्ति है, जिसका चौथा चरण विषय के अनुसार वदल जाता है। इस ग्रन्थ मे निम्न तीन चरणो की आवृत्ति हुई है—

वृज अवनि कर भरतार सुजस भडार गुन आगार है ।
जदवसमनि अवतार श्री वलवत भूप उदार है ।।
तिहि हेत रस आनद यह संग्राम-रत्नाकर रच्यौ ।

[1] वीच के अक्षर नही हैं जो इस क्रम से होने चाहिए—
म म ग धि तये म थ ग्रा र क लि ते ।
इन सव को मिला कर यह बनता है—
'श्री म न म हा ग णा धि प त ये नम. अ थ सं ग्रा म र त्ना कर लि ष्य ते ।

और फिर 'तरग' के अनुसार चौथे चरण मे इस प्रकार कहते हैं—

प्रथम तरग—तह ग्रंथ के आरभ माहि तरग प्रथमहि क सच्यौ ।
द्वितीय तरग—तह जग्य के प्रारम्भ माहि तरग दूजे को सच्यौ ।
षष्टम तरग—किय पराजय नृप यौवनास्व तरग षष्टम कौ सच्यौ ।
नवम तरग—व्यासोक्त धर्म नरेस प्रति सु तरंग नवमहि कौ सच्यौ ।
अतिम तरग—वर्नन स्रवन माहात्म्य कौ सु तरंग सतसठि कौ सच्यौ ।[1]

---

[1] अश्वमेध पर्व मे दिग्विजय के हेतु बहुत से सग्राम हुए थे । महाराज बलदेवसिंहजी ने भी अनेक युद्ध किए और विजय प्राप्त की । कवि ने दोनो समय के युद्धो मे समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की है । कवि लिखता है—

समर घोर किय लिक्क सग, श्री बलदेव सुजान ।
ताकौ कछुक उदाहरन, कीजत मति अनुमान ॥
श्री वृजेंद्र बलदेव इमि, जीति लिक्क सग्राम ।
लह्यौ सुजस रूपी जगत, जैत पत्र अभिराम ॥
विक्रम त्याह प्रताप कौ, सुनियत सुजस दिगत ।
तिनके पुत्र प्रसिद्ध जग, प्रगटे श्री बलवत ॥
तिनके मार्ये सोपि सब, राजकाज कौ भार ।
सेवन किय गिरिराज कौ, निज कुल-धर्म विचार ॥

पुस्तक मे बलदेवसिंह का रणकौशल भी दिखाया गया है—

१. पग्ग गहि कर मे उमगि बलदेवसिंह,
अैसे कोपि लिक्कदल उप्पर निकारे कर ।
भन 'रसआनद' वितु डन के षडन के,
सु डन मुसडन के पारे भुव भारे भर ॥
ठट्ट जुरि कोट पै इकट्ठे जो सुभट्ट चढे,
कट्टि कट्टि जट्टन ने दट्टि के उतारे तर ।
वर को वरगना टटोरति न रु डन ओ,
हार हेत मु डनि बटोरत न हारे हर ॥

२ अैसो कीनो समर प्रतापी बलदेवसिंह,
जाकौ लपि छाती धधकाती अमरन की ।
भनि 'रस आनद' जमात भूत जुग्गिन के,
नचत चरन लागी कीच रुधिरन की ॥
प्रमुदित वरनि वरगना वरन लागी,
काति उभरन लागी ज्योति बिवरन की ।
काटि काटि बटका मग खी करन लागी,
परवी परन लागी चरवी-चरन की ॥

अश्वमेध पर्व की कथा दूसरी तरंग से प्रारम्भ होती है—

> जन्मेजय नृप सुनि छुक्यो, निजकुल कथा अनूप।
> पारथ कृष्ण सहाय तें, जात्यौ भारथ भूप।।
> पुन्यश्लोकी धर्म सुत, तासु चरित्र पवित्र।
> सुनि कुरु नृप मुनि सो करयौ, और प्रश्न विचित्र।।

प्रार्थना के श्लोको का अनुवाद भी अच्छा हुआ है—

> तुम नर नारायन रूप स्वच्छ, मैं लपे भाग्य केवल प्रतच्छ।
> हे कमलनैंन हे जग अधार, है तुम कौ मेरौ नमस्कार।।

अन्त मे फल इस प्रकार दिया हुआ है—

> यह अस्वमेध उत्तम जु पर्व, तोते मे बर्नन कीन सर्व।
> याकौ सु स्रवन फल है सनाय, मैं वरन्यौ सुनु तू सत्य भाइ।।
> गोदान सहस कौ फल जु आहि, पर्वहि जु सुने पावहि उमाहि।।
>
> सुनिवेते अष्टादस पुरान। जा फल को पावत है प्रमान।
> श्रद्धा युत या पर्वहि सुनत। ताही फल को पावत तुरत।।

गीता के कई अनुवाद मिले। इन अनुवादो मे संस्कृत के श्लोको का क्रम-बद्ध अनुवाद करने की चेष्टा की गई है। प्रथम अध्याय के दो तीन श्लोक देखिए—[1]

> धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र मे, मिले युद्ध के साज।
> सजय मो सुत पाडवनि, कीने कैसे काज।।

मिलाइए—

> धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सव।
> मामका पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सजय।। १
>
> पाडव सैना वहु लषै, दुर्योधन ढिग जाइ।
> निजु आचार्य द्रोंन सो बोले अैसे भाइ।।

मिलाइए—

> दृष्ट्वा तु पाण्डवानीक व्यूढ दुर्योधनस्तदा।
> आचार्यमुपसगम्य राजा वचनमब्रवीत्।।
>
> पाडव सेना अति बडी, आचारज तू देषि।
> धष्टद्युम्न तुव शिष्य नै, व्यूह रच्यौ जु विसेपि।।

---

[1] यह अनुवाद अधूरा ही मिला। परन्तु अनुवाद की दृष्टि से वहुत उपयुक्त प्रतीत हुआ, गीता के अनुवादको का पता नही लग सका, किन्तु भाषा, लिपि आदि को देखते हुए प्रतीत हुआ कि ये अनुवाद यही किये गये।

मिलाइए—

पश्यैता पाण्डुपुत्राणामाचार्य्य महती चमूम् ।
व्यूढा द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥

इस अनुवाद मे पक्ति का पक्ति में अनुवाद किया गया है, किन्तु पद्यात्मक अनुवाद होने के कारण कुछ शब्दो का अनुवाद छूट भी गया है और साथ ही कुछ छोटे मोटे शब्द बढ भी गए है। वैसे अनुवाद काफी अच्छा और मजा हुआ है। भागवत के भी कई अनुवाद मिले। ये अनुवाद अधिकतर भजन करने के बस्तो मे पाए गए। मेरे पूज्य पिताजी के पूजा वाले बस्ते मे भागवत और गीता भाषा टीका की दो हस्तलिखित प्रतिया अब तक सुरक्षित है किन्तु अनुवाद-कर्ता तथा अनुवाद करने के समय का कुछ पता नही लगता, इसीलिए ऐसे अनुवादो को मत्स्य-प्रदेश के साहित्य मे सम्मिलित करने मे सकोच होता है।

कलानिधिजी के सहयोगी कवि सोमनाथजी ने 'भागवत दशमस्कध' के उत्तरार्द्ध का अनुवाद किया।[1] उदाहरण देखे—

पचासै अध्याइ मे, जरासध के त्रास।
दुर्ग रचायो सिधु में, श्री गोविंद प्रकास॥
तहा आपने नरनि को, राषि कुटुब सहित्त।
मार कपट जुत दैत्य को, करि के कपट-चरित्र॥
परम सुवर श्रीकृष्ण ने, धरमरीति को साजि।
जरासिधु को जीत लिय, पुनि विनु जतनें गाजि॥

इस अनुवाद के कुछ अश मूल सहित दिए जा रहे हैं—

"श्री शुकोवाच—

अनुवाद	मूल
अस्ति प्राप्त इमि नामनि वारी।	अस्ति प्राप्तिश्च कसस्य
नृपति कस की द्वै वरनारी॥	महिष्यो भरतर्षभ।
कस कत के मरे दुष्यानी।	मृते भर्तरि दु खार्ते
गई पिता के गृह अकुलानि॥	ईयतु स्म पितुर्गृहान्।

[1] कवि ने इस पुस्तक का नाम 'व्रजेंद्र विनोद' रखा था। देखिए—

'इति श्रीमन्महाराजाधिराज व्रजेंद्र श्री सुजानस्यघ हेतवे माथुर कवि सोमनाथ विरचिते भागवत दशमस्कध भाषाया 'व्रजेंद्र-विनोद' द्वारका दुर्ग निवेशन नाम पचाशत्तमोध्याय ॥ ५० ॥

यह प्रति सवत् १८३७ की लिखी हुई है। पुस्तक के अन्त मे लिखा है—

'श्री मन्नमहाराजधिराजा व्रजेंद्र रणजीतसिंह पठनार्थ लिपिकृत काश्मीरी पडित भास्करेण। सवत् १८३७ ज्येष्ठ शुदि दस सोमवासरे।'

मगध राजधानी कौ नाइक ।	पित्रे मगधराजाय
जरासध हो पितु सब लाइक ॥	जरासधाय दु खिते ।
तासो सिगरी कही कहानी ।	वेदायाचक्रतु सर्वमात्म-
कत मरन की सोक समानी ॥	वैधव्य कारणम् ॥
सो सुनि वात दुष्प्रद भारी ।	स तदप्रियमाकर्ण्य
शोक अमर्ष भर्‌यौ पन वारी ॥	शोकामर्षयुतो नृप' ।
जादव बिनु धरनी कौ करनौ ।	अयादवी मही कर्तुं
उद्यम करतु भयौ सुष हरनौ ॥	चक्रे परममुद्यमम् ॥

इसी प्रकार मूल से मिलता हुआ अनुवाद चलता है । अनुवाद मे काव्य-छटा और शब्द-सौदर्य बराबर मिलता है । हाथियो का वर्णन देखिये—

सजे पुज दतीनि के अग भारे । उत्तगे जलद्दनि के रग कारे ॥
शुडनि के मद्धि सिंदूर सोहै । कर्नौती सिरी कु भ पै चित्त मोहै ॥

उपनिषदो का अनुवाद होना बहुत दुष्कर है, क्योकि सूत्रो का अनुवाद एक प्रकार से असभव सा ही है । सस्कृत मे तो समासयुक्त पदावली के कारण 'गागर मे सागर' की उक्ति चरितार्थ हो जाती है, किन्तु हिन्दी में ऐमा होना सभव नही । अतएव कलानिधि का लिखा हुआ जो 'उपनिषत् सार' नामक ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है उसे अनुवाद-ग्रन्थ नही कहा जा सकता, उसमें तो एक प्रकार से सूत्रो की व्याख्या की गई है । इसीलिये हमने इस ग्रन्थ के उदाहरण 'गद्य-ग्रथ' के अतर्गत दिए हैं । यह नही कहा जा सकता कि कलानिधि की इस व्याख्या का अनुवाद की दृष्टि से क्या मूल्य लगाया जाय । यद्यपि अनेक विद्वान् इस प्रकार की पुस्तको को अनुवाद ही कहते है, पडित शुकदेव बिहारी मिश्र ने भी इसी प्रकार लिखा है–

'कलानिधि ने ब्रह्मसूत्र तैत्तिरीय, माडूक्य, केन , प्रश्नोपनिषद के अच्छे अनुवाद किये ।[1]'

किन्तु हमें इस ग्रन्थ को अनुवाद कहने मे सकोच होता है—इसे तो व्याख्या, विवेचन, स्पष्टीकरण आदि नाम दिये जा सकते है, अनुवाद नही ।

'हितोपदेश' बहुत समय से प्रचलित रहा है । भारतीय भाषाओ के अतिरिक्त अन्य देशो की भाषाओ मे भी इस ग्रन्थ के अनुवाद किये जा चुके हैं । इस ग्रन्थ को भारतीय नीति और आचार का प्रमाण-ग्रथ मानना चाहिये । मत्स्य-प्रदेश मे भी हितोपदेश के कई अनुवाद मिले । एक अनुवाद रामकवि कृत

---

[1] पटना यूनि० लेक्चर्स 'इतिहास पर हिन्दी साहित्य का प्रभाव ।'

'हितामृतलतिका' नाम से मिला। यह अनुवाद भरतपुर के महाराज बलवतसिह के लिये किया गया था। इस पुस्तक की पत्र सख्या १३३ है। इस ग्रथ मे विभिन्न प्रसगो को इस 'लतिका' की शाखा, दल आदि कहा गया है। कवि का कथन है—

पाटव पुर हरि सस्त्र नप तिह कृत हित उपदेस।
वाचा परम विचित्र जह नीति अनेक नरेस॥

तिहि के मत अनुसार मै नृप बृजेस के हेतु।
हित अमृत लतिका करू सुमरि उमा वृषकेतु॥

साखा नीति अनेक वढि भई हित अमृत वेलि।
जान सजीवन रामकवि कीनी इकत् सकेलि॥[1]

इस लतिका मे चार दल है। किसी भी दल के अत मे वर्ण्य-विषय की ओर सकेत नही किया गया है। केवल इतना हो कहा है "...... ....

हितामृतलतिकाया (अमुक) दल समाप्तम्"। प्रकरण ये हैं—

मित्त लाभ सज्जन सुमिति, विग्रह सधि उपाय।
वर्नो यह मे पाच विधि अपरग्रथ मत लाय॥

अनुवाद की दृष्टि से मिलाने योग्य कुछ अवतरण—

'पूछौ जो कछु मुहि अपर वात। मै कहौं तुम्हारे हेत तात॥
"अपर किं कथयामि कथयताम्।"

मूरष कौ सिप दियै हानि अपनौ हित सब सु होई।
ज्यौं वानर सिप दयैं षगन अपनी वुधि तें थल षोई॥
मूल—विद्वानेवोपदेष्टव्यो नाविद्वास्तु कदाचन।
वानरानुपदिश्याथ स्थानभ्रष्टा ययुः खगा॥

हितोपदेश—देविया षवास[2] का लिखा हुआ। हितोपदेश के इस अनुवाद मे 'विग्रह', 'सधि' नाम के केवल दो प्रसग मिले हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रति विक्री हेतु लिखी गई थी। इसके ऊपर लिखा है—'हितोपदेश भाषा कलमी

---

[1] रामकवि के सबध मे कुछ वर्णन रीतिकाव्य के अतर्गत मिल सकेगा—विशेषत 'छदसार' के प्रसंग मे।

[2] देविया खवास कवि श्रेष्ठ रसानंदजी का खवास था। सत्सग का सुन्दर प्रभाव यदि देखना हो तो देविया से वढ कर दूसरा उदाहरण नही मिल सकता। सैन वश मे उत्पन्न यह व्यक्ति अपने मालिक के कारण सस्कृत तथा भाषा दोनो मे पारंगत हो गया।

जिल्द समेत १।।)'। पुस्तक की लम्बाई चौड़ाई काफी है और सुन्दर लिपि मे लिखे हुए ४५ पत्र हैं। इस पुस्तक को सवत् १८६१ वि० मे पूर्ण किया गया—

"ते मुहि पर अनुकूल, रहौ सिया सानुज महित।
हतौ जगत की सूल, पाहि पाहि रघुकुल तिलक॥
ससि रस रूद्र वदत, सवत महिनो वृद्धि रवि।
कवि कृत गुप्त मतत, एकातिथि ससि दिन सुच्चित॥ १"

इस पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"श्री मन्न महागणाधिपतये नम. अथ विग्रह कथा तृतीय हितोपदेश की देविया कृत लिष्यते।

श्री रघुवर के पद कमल सुमरि मनाय गणेश।
कहौ कथा विगृह तृतीय भाषा हित उपदेश॥
तिनराजकुमारिन सुहृदभेद। सब सुन्यौ सुचित है विगत हेत॥
पुनि विप्र विश्नु सर्मा सभाग। कछु और कथा कौ कहन लाग॥

भवत्प्रसादाच्छ्रुत। सुखिनो भूता वयम् यदेव भवद्भ्यो रोचते तत्कथयामि।"

कथानक इस प्रकार आरम्भ होता है—

अनुवाद

इक कर्पूर देस के माही। पद्मकेलि सरवर उहि ठाही॥
काहू एक समय हरषाई। सव पछिन मिलि रच्यौ उपाई॥

मूल संस्कृत

अस्ति कर्पूर द्वीपे पद्मकेलि—नामधेय सर। स च सर्वैर्जलचरपक्षिभिर्मिलित्वा पक्षिराज्येऽभिषिक्त॥

सरल, अविकल और धारा प्रवाह अनुवाद और भी देखे। यथा—

अथ वानर खग की कथा—

कवित्त

नर्वदा नदी के तीर पर्वत है ताके तरे,
सेंमरि को वृक्ष तापे पछिन को घर है।
एक सम्है वर्षा काल भादौं की आधी रात,
दामिनी दमक रही वरषा कौ भर है।

---

१ हमे यह कलमी पुस्तक सवत् १६११ माघ शुक्ल ५ की लिखी मिली—

'इति श्री पचमोपाख्यान राजनीति शास्त्र हितोपदेश सधि कथा चतुर्थ देविया सैन वम कृतेन समाप्तोय॥ ४॥

घुमडि गरजि मेघ पग्न मलिल लाग्यो,
जोर सौं मुमलधार मारुत को सर है।
ताही काल कीस एक भीजतो पहार त्यागि,
बैठ्यो वाही वृक्ष तरैं कापतो सो धर है॥

मूल संस्कृत से मिलाए—

'अस्ति नर्मदा तीरे पर्वतोपत्यकाया विशाल शाल्मलीतरु। तत्र निर्मितनीड-क्रोडे पक्षिण सुख वर्षास्वपि निवसति। अथैकदा वर्षासु नीलपटलैरिव जलधरपटलै-रावृते नभस्तले धारामारैर्महती वृष्टिर्बभूव। ततो वानरास्तरुतलेऽवस्थितान् शीता-र्तान्कम्पमानानवलोक्य ..'

ताते मूरख को उपदेस। कबहुन दीजै सुनौं नरेस॥

मूल संस्कृत—'अतो हऽब्रवीमि—विद्वानेवोपदेष्टव्यो नाविद्वास्तु कदाचन।'

पुस्तक की समाप्ति पर कवि का कथन है—

यह कथा विग्रह सस्कृत की वरनि मैं भाषा करी।
नृप हेत जसमतस्यघ जू के सदा रस आनन्द भरी॥
विख्यात सेना वस मे कवि देविया गुरुसो सुनी।
तिनकी कृपा को लाय बल अनुसार मत अपने भनी॥[1]

हितोपदेश का एक और अनुवाद मिला किन्तु दुर्भाग्य से यह पुस्तक भी अपूर्ण है। प्रथम ३५ श्लोक नही मिलते। इस हस्तलिखित प्रति मे मूल सस्कृत श्लोक भी दिए हुए है और उनका अनुवाद भी। गद्यभाग का अनुवाद गद्य मे ही किया गया है। श्लोक भी गद्य मे ही अनूदित है।

एक उदाहरण देखिए--

मूल–उपायेन हि यच्छक्य न तच्छक्य पराक्रम।
काक्या कनकसूत्रेण कृष्णसर्पो निपातित॥

अनुवाद– जाते जु कारज उपाय कर होई, सु बल तै कबऊ न होई। जातें एक कागनी सोने के सूत्र कर कालो साप मरवायो।

मूल– करकट पृच्छति, कथमेतत्। दमनक कथयति—

कस्मिश्चित्तरौ वायसदपती निवसत [स्म]। तयोश्चापत्यानि तत्कोटरावस्थितेन कृष्णसर्पेण खादितानि। तत पुनर्गर्भवती वायसी वायसमाह–नाथ त्यज्यतामय तरु। अत्र यावत्कृष्णसर्पस्तावदावयोः सतति कदाचिदपि न भविष्यति।

---

[1] बलवतसिहजी के पश्चात् जसवतसिहजी भरतपुर के राजा हुए। इनका राज्यकाल १९०९ से चला। सभव है बलवतसिहजी ने अपने पुत्र के लिए इस पुस्तक का आरभ कराया हो। कवि ने अपने गुरु रसानद का नाम भी इस छद मे युक्ति से धर दिया है। यह ग्रथ निश्चय-पूर्वक महाराज जसवतसिहजी के समय मे ही समाप्त हुआ—

'ऐसें विकटेस श्री ब्रजेंद्र जसवत स्यघ मगलसमेत तुमैं देउ मेरू मन के।'

अनुवाद— तब करकट कही यह कैसी कथा है। तब दमनुक कहत है। कौंने ऐक रूप पाई ऐक काग अरु अेक कागनि रहैं। सु वा व्रप के पोडर मे ऐक कागै सापु रहै। सु येह कागु के वालकान्ह कौ षावौ ही करैं। जव कागुनी कौ गरभ वहुर रह्यौ तव उन कागु सो कही, अहो स्वामी यह रूप छाड अन्यत्र वास कीजे। ईहा ईह कारे सांप तैं हमारी सतत न उबरिहै।

इसी प्रकार विग्रह कथा भी है। एक श्लोक इस कथा का भी देखे—

श्लोक— 'हमै सह मयूराणा विग्रहे तुल्य-विक्रमे।
विश्वासवचिता हसा काकै स्थित्वारिमदिरे ।।

टीका—हम सौं अरु मयूर सौं जब वैरु उपज्यो तब काग मयूर के कैंदि होइ करि हम हरायो।

एक और भी—

श्लोक— य स्वभावो हि यस्य स्यात्तस्याऽसौ दुरतिक्रम.।
श्वा यदि क्रियते राजा तत्किं नाश्नात्युपानहम् ।।

टीका—जाते जाकौ जु सुभाव है मु तामो छोडयो न जाइ। जाते कूकर जो राजा करिये। तेहू पनही के पाडवो न छाडैं।

हितोपदेश आदि के अनुवाद इस बात को बताते है कि अनुवाद करने वालो ने मूल की वारीकियो पर कोई खास ध्यान नही दिया, फिर भी भाव की रक्षा सतोषजनक रूप मे हो सकी है। उम समय मत्स्य-प्रदेश मे अनुवाद का पुष्कल कार्य जिस द्रुत गति से हुआ उमको देख कर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है।

'सुजानविलास' के नाम से सोमनाथ ने सिहासन वत्तीसी का अनुवाद किया है। इस ग्रथ को सरलता से अनुवाद ग्रन्थ माना जा सकता है। सुजानसिंहजी ने स्पष्ट शब्दो मे कहा था—

मभा मद्धि इक दिन कही, श्री सुजान मुसिक्याइ।
सोमनाथ या ग्रथ की, भाषा देहु वनाइ ॥

इस ग्रन्थ को कथा साहित्य मे लेकर वही विवरण दिया गया है।

मत्स्य प्रदेश मे सस्कृत ग्रन्थो के अनुवाद का कार्य पर्याप्त हुआ। इस सवंध मे कुछ वातें उल्लेखनीय हैं—

१ अनुवाद के लिए सभी प्रकार की धार्मिक पुस्तके तथा नीति-सबधी साहित्य चुना गया।

२ महाभारत और रामायण जैसे दीर्घकाय ग्रन्थो के पद्यात्मक अनुवाद मत्स्य के कवियो का गौरव वढाने मे ज्वलत प्रमाण हैं। उन कवियो की विद्वत्ता, कर्मण्यता और साथ ही राजाओ की गुणग्राहकता तथा उदारता वास्तव मे प्रशसनीय है।

३. मत्स्य मे अनुवाद का कार्य साधारणतः अच्छा ही हुआ। मूल से बिलकुल मेल खाना तो उस समय न आवश्यक था और न सम्भव, परन्तु इन अनुवादो में मूल को भाव-रक्षा अच्छी तरह हो पाई है।

४ मत्स्य के अन्य साहित्य ग्रन्थो के सदृश अनुवाद साहित्य भी अधिक अलकृत नही है। साथ ही यहाँ पर अलकृत ग्रन्थो के अनुवाद भी नही हुए क्योकि उनका प्रचार केवल सस्कृत की विद्वन्मडली तक सीमित था।

५ यहा के कवियो का ध्यान लोक-साहित्य की ओर अधिक गया। धर्म की दृष्टि से रामायण, महाभारत, भागवत और गीता हिन्दू धर्म के अभिन्न अग हैं। आज भी इन सभी के पारायण तथा पाठ होते रहते हैं। इन ग्रथो का प्रचार तथा सम्मान दोनो ही हैं। ये ग्रथ जन-जीवन का अग वन चुके हैं, और मत्स्य के कवियों ने भी इन्ही ग्रंथो की ओर ध्यान दिया, जन-साहित्य में प्रचलित लोक कथाओ के भी अनुवाद किए गए जैसे—हितोपदेश, सिहासन वत्तीसी, शुक बहत्तरी आदि।

सस्कृत पुस्तको के अतिरिक्त कुछ फारसी पुस्तको के अनुवाद भी हुए। मुसलमानो के प्रभाव से यहा भी फारसी का प्रचार था और पढे लिखे लोगो में फारसी जानने वालो की ही सख्या अधिक होती थी। मुगलो की राजभाषा होने के नाते देश में फारसी का प्रचार सर्वत्र हो गया था। हमें विश्वस्त रूप से यह कहा गया था कि 'अनवार सुहेली' का हिन्दी अनुवाद भरतपुर राज्य मे किया गया था, किन्तु वहुत खोजने पर भी यह अनुवाद प्राप्त नही हो सका।[1]

आईने अकबरी—हिंदी मे लिखी मिली। पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार है—

> 'यह राजनीत अरु आईन माफिक हुकम अकवर वादसाह के लिषी जात है, साहजादे अरु उमराव अरु आलिम अरु कोतवाल अरु सब कारवारी याही आईन माफिक राज काज में वरते।'

यह पुस्तक अलवर राज्य मे ही लिखी गई। इसमें राजनीति तथा सामान्य नीति सबधी अनेक वाते हैं—

> 'ईश्वर को मनतें न भुलाइये। विना उपदेश और भली चर्चा के मुष तें कोई वचन नही काढिये। जो कछु कारज किया चाहे ताका भेद काहू को न दीजे। वालक

[1] हर्ष का विषय है कि अपने लन्दन-प्रवास मे ब्रिटिश म्यूजियम के प्राच्यविभाग मे मुझे इस का हिन्दी पद्यानुवाद 'हितकल्पद्रुम' नाम से मिल गया। इस पर मेरा विस्तृत लेख 'अनुशीलन' सन् १९६२, भाग २ मे प्रकाशित हो चुका है।

और स्त्री जो कहे ताकी प्रतीत न कीजिये और इनो ते मन का भेद न कहिए। लुगाई के बस न हो जाइये। राजन के हित की प्रतीत न कीजिये।[१]

फारसी की अधिक पुस्तको के अनुवाद प्राप्त नही हो सके। मत्स्य के पुस्तकालयो मे उर्दू विभाग देखने से पता लगता है कि फारसी ग्रथो का उर्दू भाषा मे अनुवाद अधिक हुआ। इन सभी बातो से पता लगता है कि मत्स्य के राजा वास्तव मे साहित्यसेवी थे। हिन्दी और सस्कृत को तो प्रोत्साहन मिलता ही था, फारसी और उर्दू पर भी उनकी कृपा रहती थी। भरतपुर तथा अलवर के पुस्तकालयो एव सग्रहालयो मे उर्दू और फारसी के अनेक हस्तलिखित ग्रथ मिले। अलवर का सग्रह तो बहुत ही मूल्यवान् समझा जाता है। फारसी की कुछ प्रतिया तो सहस्रो रुपये के मूल्य की है। यहा सस्कृत की पुस्तके भी बहुत बडी सख्या मे हैं। मत्स्य के कवियो ने अनुवाद करते समय सस्कृत-ग्रथो की ओर विशेष ध्यान दिया और यदि ये सभी अनुवाद एकत्र हो जाये तो हिन्दी साहित्य के लिए बडी ही गौरव की बात हो।

एक बात विशेष रूप से देखी गई। सोमनाथ, देविया, गोवर्द्धन, रसानद आदि अनुवादकर्ता उच्चकोटि के कवि भी थे। अत इन अनुवादो मे पद्यकी प्रधानता है। गद्यानुवाद बहुत कम मिलते है और वे भी साधारण कोटि के। फिर, हिन्दुओ के धार्मिक सस्कृत ग्रथ पद्य मे अधिक है और अनुवादक यही ठीक समझते थे कि उन ग्रन्थो की पद्यात्मकता नष्ट न होने पावे। यो कविजन अनुवाद के क्षेत्र मे भी अपना काव्य-चातुर्य प्रदर्शित कर सकते थे किन्तु यह मानी हुई बात है कि इस तरह अनुवाद का स्तर ऊँचा रखना बहुत कठिन है। फिर भी, मत्स्य के साहित्यकारो द्वारा अनुवाद के क्षेत्र मे सतोषजनक कार्य हुआ।



[१] कलकत्ता मदरसा के एच० ब्लाकमैन के द्वारा किये गये आईने अकबरी के अग्रेजी अनुवाद मे ये प्रसग इस रूप में नही मिले।

अध्याय ८

उपसहार

मत्स्य प्रदेश का हस्तलिखित साहित्य एकत्रित करने मे मुझे अनेक स्थानो, व्यक्तिगत पुस्तकालयो तथा सस्थाओ की खोज करनी पडी और तभी इस प्रात के कुछ गौरवमय, किन्तु अब तक अप्राप्त पृष्ठ हाथ लग सके। जो कुछ सामग्री मुझे मिल सकी उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि 'नागरी गुणागरी' के साहित्य-भण्डार की वृद्धि करने मे मत्स्य प्रदेश किसी भी प्रकार पीछे नही रहा। यह अवश्य है कि विद्वानो और अन्वेषको का इस ओर यथोचित ध्यान न होने के कारण यहाँ का बहुत-सा साहित्य तो नष्ट हो गया और जो बचा भी है वह प्रकाश में नही है। इसमे सदेह नही कि कुछ खोजकर्ताओ ने इस कार्य मे बहुत संकुचित मनोवृत्ति का परिचय दिया। कुछ ने तो सामग्री एकत्रित कर उसे इधर-उधर दे डाला और किसी प्रकार के प्रकाशन के लिए अवसर नही दिया। प्रकाशन से भी पता लगता है कि मत्स्य के साहित्यकार किस प्रकार अपने कार्य करते रहे। कुछ ऐसे महानुभाव भी है जो बहुत-सी मूल्यवान सामग्री को सचित करके उसे दबाये बैठे हैं। दिखाने की प्रार्थना करने पर वे समझते है कि यदि उस सामग्री का पता किसी अन्य व्यक्ति को हो गया तो अनर्थ हो जायेगा। यदि उनसे उस सामग्री को प्रकाशित करने के लिए कहा जाता है तो बहुत से बहाने उपस्थित कर देते है। बहुत सी मूल्यवान सामग्री अभी बस्तो मे बद है जिनके अधिकारी यह जानते ही नही कि उस सामग्री का क्या उपयोग हो सकता है। अनुसधान करने वालो के लिए निश्चय ही मत्स्य प्रदेश मे प्रचुर सामग्री है किन्तु आवश्यकता है कार्य और लगन की।

खोज मे मिले ग्रन्थो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मत्स्य के साहित्यकार प्राय राज्याश्रित थे। इनमे से कुछ लोग वेतनभोगी थे और कुछ सामयिक पुरस्कार आदि के द्वारा अपनी जीविका चलाते थे। यह बात माननी पडेगी कि यहा के साहित्य-सृजन तथा विकास मे राजाओ का बहुत हाथ रहा। कुछ साहित्यकार मस्त-फकीर भी हुए जिन्हे किसी राजा-रईस की चिन्ता नही थी। पहले ही लिखा जा चुका है कि बहुत समय पहले लालदास एक ऐसे महात्मा हुए। इनकी रचनाए सन्त-साहित्य के अतर्गत आती है। ये मेव थे और मुसलमान और हिन्दू दोनो को ही मिलाना चाहते थे। ये बडे स्वतन्त्र जीव थे और अकबर की प्रार्थना पर भी दिल्ली नही गए, बादशाह ने स्वय ही इनके स्थान पर आकर इनका दर्शन किया। इसी प्रकार चरनदास तथा उनकी

शिष्याए थी जिनका किसी भी प्रकार की राज्य सहायता से कोई सम्बन्ध नही था। परतु अधिक सख्या उन्ही साहित्यकारो की थी जो नियमित रूप से राजाओं द्वारा सहायता प्राप्त करते रहते थे।

साहित्यकारो मे प्रमुखत ब्राह्मण थे और उनमे भी विशेष रूप से 'चौवे'। अन्य वर्गो के व्यक्ति भी मिलते हैं जैसे वलदेव वैश्य, रसानद जाट, चतुर्भुजदास कायस्थ, अलीवख्श रागड मुसलमान, देविया खवास आदि। परन्तु ऐसे लोगो की सख्या बहुत कम थी। कविता करने का स्थान राजाओ का प्रधान नगर होता था। कुछ कवि अन्य विशेष स्थानो जैसे वैर, राजगढ, डीग, वसवा, माचेडी, मडावर आदि मे भी निवास करते थे किन्तु वहाँ भी उनका सवध ठिकानेदारो अथवा राजकुमारो से होता था। राजाश्रित कवियो के अतिरिक्त कुछ राजा स्वयं भी अच्छे कवि थे—भरतपुर के महाराज वलदेवसिंह, अलवर के महाराव बख्तावरसिंह और विनयसिंह, मडावर के राव अलीवख्श, करौली के राजकुमार रतनपाल और भरतपुर की महारानी अमृतकौर स्वय ही साहित्यकार थी। कुछ कृतिया देखने पर इन राजाओ की रचनाओ के बारे मे यह कहा जा सकता है कि इन पुस्तको का राजाओ द्वारा लिखा जाना सभव नही, हो सकता है, इन्हे उनके आश्रित कवियो ने रच कर अपने आश्रयदाता के नाम से चलाया हो। यह बात दृढता के साथ कही जा सकती है कि मत्स्य-प्रदेश के राजाओ ने कला तथा कलाकारो को बहुत प्रोत्साहन दिया।

जो साहित्य मुझे मिला उसमे से वहुत कुछ ऐसा है जिसे हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी कहा जा सकता है। इसमे से कुछ कृतियो का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

१ **नवधाभक्ति-रागरस सार**– यह ग्रन्थ न केवल ३६,००० रु० का पुरस्कार प्राप्त कर सका प्रत्युत नवधा-भक्ति और रस के अतिरिक्त रागो की व्याख्या करने मे पूर्ण रूप से सफल हुआ। हिन्दी साहित्य मे इस प्रकार की पुस्तके बहुत ही कम मिलती हैं।

२ **वलभद्र के 'सिखनख' पर टीका**– आज तक समस्त हिन्दी ससार यही जानता रहा है कि वलभद्र के सिखनष पर सबसे प्रथम टीका गोपाल कवि द्वारा सवत् १८९१ वि० मे हुई। किंतु हमारी खोज ने यह सिद्ध कर दियो है कि इस टीका से ५० वर्ष पूर्व ही सवत् १८४२ वि० मे मनीराम कवि द्वारा इस ग्रथ-रत्न की टीका की जा चुकी थी। कवि मनीराम ने यह टीका मत्स्य-प्रदेश मे ही की और इनकी टीका को एक सफल ग्रथ मानने मे किसी प्रकार सदेह नही

किया जा सकता। कवि मनीराम की टीका को ही बलभद्र के सिखनष पर प्रथम टीका मानना चाहिए, अन्य प्रयास इमसे बहुत पीछे के है।

३ **बषतविलास**– हिन्दी ससार मे यह माना जाता रहा था कि देव कवि सनाढ्य ब्राह्मण थे और हिदो साहित्य के प्राय सभी इतिहासो मे इसी बात का समर्थन किया जाता है। किंतु महाराज बख्तावरसिंहजी के आश्रित कवि भोगीलाल की इस पुस्तक ने सिद्ध कर दिया है कि देव कवि कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, सनाढ्य नही। इसी बात को डॉ. नगेन्द्र ने स्वीकार किया है।

४. **ध्वनि-प्रकरण**– हिंदी के रीति-ग्रथो मे नायक-नायिका भेद, सिखनख, शृगार आदि के प्रकरण तो मिलते है किंतु सस्कृत के वास्तविक रीतिकार मम्मट, विश्वनाथ आदि के अनुगमनकर्ता नही दिखाई देते। सोमनाथ का रस-पीयूपनिधि, कलानिधि का अलकार-कलानिधि आदि ग्रन्थ इस बात के प्रबल प्रमाण है कि मत्स्य मे ध्वनि-प्रकरण का काफी विश्लेषण हुआ और अनेक रीतिकारो के मतमतातर पर सुस्पष्ट व्याख्या हुई थी।

५. शृगार की दृष्टि से अयोध्या का शृगारी वर्णन—राम-सीता तथा **लक्ष्मण-उर्मिला के वर्तमान शृंगार वर्णन** हिन्दी मे नवीन वस्तु नही है। भरतपुर के कवियो ने इनके शृगार का अच्छा वर्णन किया है। इन स्वरूपो की स्थापना झूला, होली, चित्रसारी आदि सभी शृगारी स्थानो मे की है किंतु पूज्य भाव के साथ। कैलाश पर्वत पर निवास करने वाले शकर और पार्वती की होली भी शामिल कर दी गई।

६ **प्रेमरतनागर**–इस ग्रन्थ मे प्रेम की व्याख्या का इतना सुन्दर और वैज्ञानिक स्पष्टीकरण देख कर आश्चर्यचकित होना पडता है। साधारणतया इस प्रकार के ग्रन्थ हिन्दी साहित्य मे नही मिलते। इमी प्रकार का एक ग्रन्थ 'नेहनिदान' ग्वालियर के 'नवीन' ने निर्मित किया था। मानना पडेगा कि प्रेम के स्वरूप का इतना सुन्दर और उदाहरणसहित विश्लेपण 'प्रेमरतनागर' जैसे ग्रथो मे ही मिल सकता है।

७ **विचित्र रामायण**–खडेलवाल वैश्य कुलोत्पन्न बल्देव कृत यह रामायण वास्तवमे विचित्र है। बालकाण्ड तथा उत्तरकाड के दार्शनिक तथा आध्यात्मिक प्रसगो को निकाल कर रामायण के कथानक को सुन्दर रीति से १४ अको मे विभाजित किया है। इस ग्रथ मे काव्यगुण और कथा वर्णन दोनो की छटा मिलती है और स्थान-स्थान पर कवि केशव का स्मरण हो आता है। प्रकृति वर्णन इसकी विशेपता है।

८ राधामगल— पार्वतीमगल, जानकीमगल तथा रुक्मिणीमंगल तो हिन्दी मे चलते थे किन्तु मत्स्य के एक कविराज ने राधामगल उपस्थित करके राधा और कृष्ण का विवाह करा दिया है और यशोदा दूल्हा तथा दुल्हिन को लिवा कर घर मे ले जाती है। इस पुस्तक मे कल्पना का अद्भुत प्रयोग है। प्रबध-काव्य की दृष्टि से वर्णन की सफलता दर्शनीय है, साथ ही स्थानीय रीति-रसूमात का विस्तृत वर्णन भी।

९ महादेव कौ व्याहुलौ— हिन्दी के कवियों द्वारा कई पार्वतीमगल बनाए गए किन्तु 'महादेव कौ व्याहुलौ' द्वारा कवि ने ब्रज मे प्रचलित परम्परा का एक सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है। इस पुस्तक की पद्धति को जोगियो के व्याहुलौ जैसा कहा जा सकता है किन्तु कवि की काव्य-प्रतिभा उत्कृष्टकोटि की है।

१० गिरवर विलास— कवि उदयराम लिखित यह एक ऐसा सुन्दर ग्रन्थ है जिसमे रास के रहस्य को वताने के साथ-साथ प्रकृति का एक सजीव चित्र उपस्थित किया गया है। ऐसा मालूम होने लगता है जैसे कवि ने पर्वत, सरोवर, वृक्ष, रज आदि सभी मे जीवन डाल दिया हो। इसमे वर्णित रास प्रसग द्वारा ब्रज की लीलाओ का एक समा सा बँध जाता है।

११ राम-करुण, हनुमान, अहिरावण नाटक— इन पुस्तको को नाट्य साहित्य का अंग तो नहीं माना जा सकता किन्तु इनमे जो सक्रियता देखी जाती हैं उसके आधार पर हम इनके नाम की सार्थकता पर ध्यान दे सकते हैं। यदि इनको श्रव्य-काव्य के रूप मे नाटक मान ले तो कोई अनुचित बात नही होगी। इन नाटको पर सस्कृत साहित्य के नाटको की छाया है और हिन्दी मे एक सुन्दर प्रयोग है।

१२. लाल-ख्याल— इस पुस्तक को लाल सग्राम भी कह सकते है जो एक 'ख्याल' के रूप मे है। ख्याल का अर्थ होता है 'क्रीडा',। इसमे लाल नामक चिडिया की लडाई का वर्णन है। इस पुस्तक की लिपि परम विचित्र है तथा हस्तलिखित पुस्तको मे भी इसको मूल्यवान् मानना चाहिए। हिन्दी मे पशु-पक्षी साहित्य वहुत कम मिलता है परन्तु मत्स्य के कवियो ने इस ओर भी ध्यान दिया है। 'सभाविनोद' भी एक ऐमी ही पुस्तक हैं जिसमे तरु, सरोवर, पुष्प आदि मानवीय भावनाओ से युक्त हैं।

१३. इतिहास-प्रधान वीर-काव्य— मत्स्य प्रदेश की विशेषता है। सुजान-चरित्र और प्रतापरासौ को ही लीजिए। इन वीर काव्यो मे उच्च कोटि की

वीरता के दर्शन होते हैं और साथ ही इनमे वर्णन की हुई घटनाएं व्यक्ति, तिथि और सस्थाए सभी इतिहास द्वारा प्रमाणित हैं। इस प्रकार का वीर-काव्य एक अनूठी वस्तु है और इसके द्वारा इतिहास के पृष्ठो का स्पष्टीकरण करने मे पूरी सहायता मिलती है।

१४ **महाभारत, रामायण आदि के अनुवाद**– इतनी बडी पुस्तको के अनुवाद करना कोई साधारण कार्य नही है और काव्यमय सुन्दर पद्यो मे अनुवाद करना तो और भी कठिन होता है। इन कवियो और इनके आश्रयदाताओ का उत्साह देखिए कि इन बडे-बडे ग्रथो का पूरा अनुवाद किया। गीता, भागवत आदि के अनुवाद तो होते ही थे किन्तु मत्स्य के कलाकारो ने आज से दो सौ वर्ष पहले रामायण और महाभारत जैसे भीमकाय ग्रथो के अनुवाद भी कर डाले।

१५ **भाषा-भूषण की टीका**– भाषा-भूषण की तीन टीकाओ के नाम मिलते हैं—१. बसीधर की, २. प्रताप साहि की, ३ गुलाब कवि की। किन्तु किसी स्थान पर अलवराधीश विनयसिह की टीका का नाम नही मिलता। इस टीका के ज्ञान-विस्तार और विद्वत्ता को देख कर चकित रह जाना पडता है। टीकाकार का काव्य-ज्ञान बहुत बढा-चढा है तथा काव्य के अतिरिक्त अन्य शास्त्रो मे भी उनकी गति है। मत्स्य प्रात मे ही नही समस्त हिन्दी प्रान्त मे, 'राजाधिराज बषतेस सुत विनयसिह' की टीका निश्चय ही अत्यन्त उत्कृष्टकोटि की है।

१६. **चरनदासी साहित्य**– यह साहित्य प्रकाश मे आ चुका है और यह प्रमाणित हो चुका है कि चरनदासजी और उनकी शिष्याओ द्वारा सगुण-निर्गुण का उत्कृष्ट समन्वय उपस्थित किया गया था। इनको समाधान इतना अच्छा है कि भक्ति के इन दोनो अगो मे कोई झगड़ा ही नही। इस साहित्य मे जहाँ एक ओर निर्गुण सतो की वाणी का आनद मिलता है वहाँ दूसरी ओर भगवान के सगुण रूप की लीलाओ का सरल वर्णन भी मिलता है। इनकी धारणाए दृढ हैं और भक्ति के इन दोनो अगो मे किसी प्रकार का विरोध दिखाई नही देता।

१७ **रामगीतम्**– गीत गोविंद की कोटि का रामगीतम् भी द्रष्टव्य है। इसके वर्णन हरिऔधजी के पथ-प्रदर्शक से लगते हैं। शार्दूल-विक्रीडित छद का उदाहरण देते हुए राधा की सुन्दरता के वर्णन से समानता अन्यत्र दिखाई जा चुकी है। सस्कृत काव्य होते हुए भी यह ग्रथ हिन्दी वालो के लिए भी सुगम है। यह ऐसा ही ग्रन्थ है जैसे तुलसी की सस्कृत गर्भित प्रार्थनाए अथवा हरिऔध के सस्कृत-गर्भित प्रिय-प्रवास के अनेक प्रसग।

१८. **गद्य साहित्य**– मत्स्य मे गद्य भी प्रचुर मात्रा में मिला। एक गद्य

पुस्तक से सूरदासजी के जीवन पर नया प्रकाश पडता है कि वे राज थे तथा भडौवा गाया करते थे। उनका बनाया पहला पद जिसके द्वारा आज तक गोवर्द्धनजी की पूजा का आरम्भ होता है इस पुस्तक मे बताया गया है। जन्माध होने का भी पक्का प्रमाण मिलता है।

यदि मत्स्य प्रदेश के साहित्य को हिन्दी साहित्य के काल विभाजन की दृष्टि से भी देखा जाय तो मत्स्य की देन पीछे नही पडती। शुक्लजी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार भागो मे बाटा है—१ वीरगाथाकाल, २. भक्ति-काल, ३ रीति तथा शृगारकाल, और ४ गद्यकाल।

मत्स्य के साहित्य मे वीरगाथा काल अथवा भक्तिकाल इस रूप में तो नही पाए जाते जैसे हिन्दी साहित्य के इतिहास मे देखे जाते हैं, किन्तु उन कालो मे साहित्य की जो प्रवृत्तियाँ रही तथा जिस प्रकार का साहित्य निर्मित हुआ वे सारी बाते यहाँ के साहित्य मे भी पाई जाती हैं। हमारा सकेतित काल हिंदी के रीतिकाल के अतर्गत आता है किंतु हिन्दी साहित्य की सपूर्ण प्रवृत्तिया प्रचुर मात्रा मे देखी जा सकती है।

हिन्दी के आदि युग की वीरगाथाओ के रूप मे हम सुजानसिंह, जवाहर-सिंह, प्रतापसिंह, रणजीतसिंह आदि से सबधित वीर-साहित्य को ले सकते हैं। सुजानसिंहजी की वीरगाथाओ का चित्रण 'सुजान चरित्र' के अतिरिक्त अन्य किन्ही ग्रथो मे नही पाया जाता, परन्तु यदि चित्रण की पूर्णता देखनी हो तो उदयराम का 'सुजान सवत्' एक अच्छा ग्रथ है। जाचीक जीवण के 'प्रतापरासौ' मे अलवर के प्रारम्भिक काल के सघर्ष का ऐतिहासिक चित्रण है। यह ग्रथ प्रताप के साहसिक कार्यों की अमर कहानी है। रणजीतसिंह और लार्ड लेक की लड़ाई का बहुत-सा स्फुट साहित्य भी मिलता है। मत्स्य के वीर साहित्य मे दो तीन विशेषताए दिखाई पडती है—

१ वीरगाथा काल की तरह मत्स्य प्रदेश मे शृगार-प्रधान वीर-काव्य नही है। यहाँ की लडाइया सुदरियो को पाने के लिए नही लडी गईं वरन् राज्य की स्थापना तथा उसका गौरव बढाने हेतु लडी गईं। यहाँ के वीरगाथाकार भूषण की राष्ट्रीय पद्धति का अनुकरण करते प्रतीत होते है। ये वीर देश की स्वतत्रता और उसकी स्थिरता के लिए तलवार चलाते थे; जनाने महल का गौरव बढाने के लिए नही। उनके व्यक्तिगत जीवन मे विलास नाम की कोई चीज थी ही नही।

२. हिन्दी के आदियुग की वीरगाथाओ का ऐतिहासिक मूल्य बहुत कम है

यहाँ तक कि चंद के 'रासो' को भी कुछ लोगो द्वारा कल्पित और उसके बहुत से अश को प्रक्षिप्त समझा जाता है। मत्स्य के काव्यों को इतिहास का पोषक समझना चाहिए। जहा कही साहित्य द्वारा इतिहास-प्रतिपादन का प्रसग आवेगा वहाँ मत्स्य साहित्य को अवश्य ही प्राथमिकता मिलेगी। अपने आश्रयदाताओ की वीरता का गान करते हुए भी इन कवियो ने अपनी वाणी पर पूरा सयम रखा और इतिहास के तथ्यो की रक्षा की।

३ इन काव्यो मे युद्ध का चित्र उपस्थित करते समय कवियो ने ओजपूर्ण शैली का ऐसा सुन्दर सयोग किया है कि घटना की वास्तविकता का आनद आने लगता है। सूदन का सुजानचरित्र इस विषय मे एक अनूठा ग्रथ समझना चाहिए।

मत्स्य के साहित्य मे भक्ति-सबधी काव्य भी प्रचुर मात्रा मे प्राप्त हुआ। रामाश्रयी धारा मे विचित्र रामायण, अहिरावण तथा राम करुणनाटक, हनुमान नाटक, वाल्मीकि रामायण के अनुवाद, पदो मे राम-कथा के प्रसग, रामजन्मोत्सव आदि मूल्यवान पुस्तकें हैं। कृष्ण की तो यह लीला भूमि है ही और भरतपुर के राजाओ को 'व्रजेंद्र' कहलाने का गौरव प्राप्त है। कृष्ण की लीलाओ का गान यहा के राजा-प्रजा, अमीर-गरीब, हिन्दू-मुसलमान सभी ने किया और कृष्ण लीलाओ से सबधित विभिन्न प्रकार के काव्यो की रचना हुई। कृष्ण की लीलाए, रास पचाध्यायी, अन्य मंगलो के साथ राधा-मगल, होरी आदि अनेक प्रकार की काव्य सामग्री दिखाई पडती है। निर्गुण सतो की वाणी निर्गुणिये भक्तो के द्वारा ही नही प्रत्युत् सगुण भक्तो के मुख से मुखरित होती है और प्रेम-मार्गीय शाखा भी 'प्रेम-रसाल' के रूप मे गुलाममुहम्मद सुनाते हैं। इसके साथ ही प्राचीन सस्कृत ग्रन्थो के अनुवाद भी मिलते हैं। उपनिषदो का प्रचार, देवी की उपासना आदि हिन्दू धर्म के अग मत्स्य के साहित्य द्वारा परिवर्द्धित और पुष्ट हुए। इस साहित्य की कुछ विशेषताए इस प्रकार है—

१. यहाँ के साहित्य मे राम और कृष्ण दोनो ही अवतारो की कथाए समान रूप मे मिलती है। मत्स्य मे पाई गई सामग्री को देख कर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यहा राम-सबधी साहित्य भी काफी लिखा गया। यह नोट करने की बात है कि मत्स्य का राम-सबधी साहित्य इतना गम्भीर नही है जितना प्राय. पाया जाता है। भक्तो ने अपनी सहृदयता से राम-साहित्य को भी बहुत सरस बना दिया है।

२. यहा के कवियो ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि सरसता के साथ-साथ अवतारो के प्रति पूज्य-भाव मे किसी प्रकार की कमी न आने पावे।

अनेक शृगार-प्रधान वर्णनो के होते हुए भी मत्स्य के कवियो ने इस बात को नही भुलाया कि कृष्ण और राम भगवान के अवतार हैं तथा उनकी शक्तिया सीता और राधा भी हमारे पूज्य भाव की अधिकारिणी है । दो एक स्थलो को छोडकर यहा के साहित्य मे वासनामय प्रसग दिखाई नही पडते ।

३. इस प्रदेश के भक्ति-काव्य मे सगुण और निर्गुण का एक विचित्र समन्वय पाया जाता है। चरणदासजी के द्वारा किया गया सगुण और निर्गुण का समन्वय तथा अन्य कवियो द्वारा राम और कृष्ण मे सम्पूज्य भावना इस प्रदेश की परपरा सी रही ।

मत्स्य मे रीति सबधी अनेक पुस्तके लिखी गई और इन पुस्तको मे सभी विषयो का विवेचन हुआ। रससिद्धान्त, ध्वनिसिद्धान्त, अलकारनिरूपण, पिंगलप्रकाश, नायक-नायिका भेद, सिखनख, ऋतुवर्णन आदि सभी विषयो पर पुस्तके लिखी गईं। इस ओर काम करने वालो मे कलानिधि, सोमनाथ रसानद, भोगीलाल, शिवराम, रामकवि, हरिनाथ, गोविंद, जुगलकवि, मोतीराम आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के इतिहास में आचार्य और कवियो का विभाजन करने मे प्राय. कठिनाई होती है। मत्स्य के कुछ कवि तो वास्तव मे आचार्य नाम के अधिकारी हैं। सस्कृत के रीति-ग्रन्थो का अध्ययन और मनन करने के उपरान्त ही यहा के कवियो ने अपने रीति-ग्रन्थ लिखे । भरत का नाट्यशास्त्र, विश्वनाथ का साहित्यदर्पण, मम्मट का काव्य-प्रकाश अभिनवगुप्त का 'लोचन' आदि रीति ग्रन्थ बहुत प्रिय रहे और इन्ही के आधार पर रीतिसिद्धान्तो का प्रतिपादन करने की चेष्टा की गई। हिन्दी मे प्रचलित पद्धति के अनुसार शृगाररस का वर्णन करते हुए शृगारी कविता की रचना भी हुई। यहा के रीति साहित्य मे कुछ बातें विशेष रूप से देखी जाती हैं—

१ मत्स्य के रीतिकारो ने रस और ध्वनि आदि मुख्य प्रसगो को छोडा नही वरन् उनकी पूरी व्याख्या की। ध्वनि, गुणीभूत व्यग्य, अधम काव्य पर उसी प्रकार विचार किया गया जिस प्रकार सस्कृत के आचार्य करते थे। कुछ ग्रन्थो मे तो अध्यायो का क्रम भी सस्कृत के प्रसिद्ध रीति ग्रंथो के अनुसार ही रखा गया। उनमे पिंगल-प्रकरण बढाना यहा के रीतिकारो की विशेषता थी। हमारी खोज मे अनेक पुस्तके ऐसी मिली जो कि काव्य-विवेचन की दृष्टि से सर्वांगीण कही जा सकती हैं।

२. आचार्यत्व के गुणो से पूर्ण कई कवि मिलते हैं। शिवराम, रसानद कलानिधि, हरिनाथ और सोमनाथ के द्वारा जो लक्षण और उदाहरण दिये गये हैं तथा उनका जो स्पष्टीकरण किया गया है उससे लेखकों की वैज्ञानिक वुद्धि

का परिचय मिलता है। मत्स्य के रीतिकारो मे दास, तोष, देव आदि के साथ बिठाने के लिये कई कवि है।

३. रीति ग्रन्थों का प्रणयन राजाओ के पठन-पाठन हेतु होता था इसलिये उनमे इस बात का ध्यान रखा जाता था कि पाठ्य सामग्री सयत हो और शृगार के वर्णन भी शील की सीमा का उल्लघन न करने पावे। समझ मे आने की सुगमता की ओर भी ध्यान दिया जाता था। राग-रागिनियो आदि को भी सुगम प्रणाली मे ही अभिव्यक्त किया गया। यह स्वीकार करना पडता है कि यहा के ग्रन्थ सरलता के साथ-साथ वैज्ञानिकता लिये हुये हैं।

हिन्दी का आधुनिक काल गद्य काल के नाम से संबोधित किया जाता है। इस काल का आरभ सवत् १९०० से माना जाता है। गद्य के विकास हेतु अनेक प्रयत्न हुए और धीरे-धीरे खडी बोली गद्य का आधुनिक रूप भी विकसित हुआ। मत्स्य के गद्य साहित्य मे खडी बोली या किसी अन्य गद्य को विकसित करने की कोई प्रेरणा नही देखी जाती। यहा जो कुछ भी गद्य लिखा गया वह अपने स्वाभाविक रूप मे ही विकसित हुआ। हमारे आलोच्य काल मे मत्स्य का ब्रज-भाषा गद्य ही देखने को मिलता है। भाषा-भूषण की टीका, अकलनामे, हितोप-देश की कहानी, सिंहासन बत्तीसी, वैराग्य सागर, उपनिषदो की व्याख्या आदि मे ब्रजभाषा गद्य का रूप मिलता है। अपेक्षाकृत पिछले गद्य मे कुछ खडी बोली के रूप भी मिलते है। अग्रेजी प्रान्तो की तरह मत्स्य मे गद्य की वेगवती गति दृष्टिगोचर नही होती, किन्तु जो भी मिला है वह सयत और मधुर है—

१ मत्स्य का ब्रजभाषा गद्य ही यहा के साहित्यिक गद्य की प्रतिष्ठा करता है। अग्रेजी प्रान्तो मे तो साहित्यिक गद्य खडी बोली का गद्य कहलाता था किन्तु १९५० वि० तक मत्स्य प्रदेश मे ब्रजभाषा गद्य ही काम मे लिया जाता रहा। पत्र, परवाने, रुक्के, गद्य पुस्तके, व्याख्या आदि सभी इस रूप मे मिलते है।

२ कहानी साहित्य के कुछ अश, उर्दू गद्य का नागरी लिपि मे रूपान्तर, मुसलमानो की वार्ता आदि मे खडी बोली के रूप भी मिल जाते है किन्तु यह प्रवृत्ति गद्य के साथ पद्य में भी देखी जाती है। 'उपनिषत् सार' मे गद्य के सुन्दर प्रयोग मिलते हैं और 'भाषा भूषण' की टीका मे प्रयुक्त गद्य तो ब्रजभाषा गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रान्त की प्रचलित भाषा होने के कारण इस प्रदेश मे ब्रजभाषा गद्य ही चलता रहा।

३ अग्रेजी की गद्य-प्रेरणा, गद्य की द्रुत गति, विषय-विविधता यहा नही मिलती। हमारे सामने केवल ब्रजभाषा गद्य का ही मधुर रूप आता है जो यहा

की आवश्यकताओ के अनुसार अपनी मथर गति से चलता रहा ।

खोज मे प्राप्त ग्रन्थो की लिपि के सबंध मे भी कुछ बातो का सकेत अप्रासगिक न होगा—

अ इस प्रदेश मे पाये गये हस्तलिखित ग्रन्थ इस बात का प्रमाण हैं कि हस्तलिखित प्रतिया बहुत सावधानी के साथ लिपिबद्ध की जाती थी । काली स्याही बहुत चमकीली होती थी और कभी-कभी लाल स्याही तथा अन्य रगीन स्याहियो का प्रयोग भी होता था । कागज या तो देसी होता था अथवा विलकोर्ट आदि कपनियो का बना विलायती । प्रतियो को सुरक्षित रखने की ओर काफी ध्यान दिया जाता था और अच्छी जिल्द बधी होती थी । सैकडो वर्षो के बाद आज भी कुछ प्रतिया अपने सुन्दर रूप मे उपलब्ध हैं ।

आ. यहा की हस्तलिखित प्रतियो मे कुछ बाते समान रूप से देखी जाती है—

१. आधुनिक 'ख' के लिए 'ष',
२. 'घ्र' के लिए 'घ्र',
३. कभी कभी 'ऊ' के स्थान मे 'उं',
४. 'ई' के स्थान मे 'इी',
५. 'ए' के स्थान मे 'अे',
६. विरामो मे केवल पूर्ण विराम " । " मिलता है वह भी कही-कही और लेखक की रुचि के अनुसार,
७. बीच के वर्ण छोडने की प्रणाली अ–स–म–रना थ ग्रा र क अथ 'सग्राम रत्नाकर'
८ तालव्य 'श' के स्थान मे प्राय दंत्य 'स',
९ इकारान्त और ईकारान्त तथा उकारान्त और ऊकारान्त का मिश्रण ।

इ मत्स्य-प्रदेश के अतर्गत पाई गई हस्तलिखित प्रतियो मे बहुत साम्य है—उनके लिखने की पद्धति, अक्षरो की बनावट लगभग एक प्रकार की है । नवीन प्रतियो मे 'ख', 'ऐ' आदि रूप मिल जाते हैं ।

ई कहीं-कहीं चित्रमय प्रणाली का भी प्रयोग हुआ है । वर्णो का रूप चिड़ियो आदि से निर्मित किया गया है और अनेक प्रकार की स्याही लगाई गई है । कहीं-कहीं वर्णो को 'दोहरा' लिख कर उन्हे रग-बिरगा किया गया है ।

उ रचयिता, लिपिकार, सवत्, स्थान, लिखवाने वाले का नाम, ग्रन्थ का नाम, विषय निर्देश आदि देने की अत्युत्तम प्रणाली जिनसे किसी भी शोध करने वाले को अमूल्य सहायता मिलती है ।

परिशिष्ट १

कवि-नामानुक्रमणिका

रचनाओं आदि के उल्लेख सहित

---

१. अकबर – १७२ ।

२. अखैराम – १६८, २०२, २०५, २४८ । भरतपुर के महाराज सूरजमल के आश्रित ।

१ विक्रमविलास, स० १८१२, सिंहासनबत्तीसी की कथा । २. गगामहात्म्य, स० १८३२, २० प्रकरणों युक्त । ३ स्वरोदय, शिवतत्रोक्त ज्ञान, श्लोको के अनुवाद सहित ।

३. अजुध्याप्रसाद 'काइथ' – १५१ । भरतपुर-निवासी सवत् १८५० के लगभग ।

रसिकमाला, स० १८७७, स्वामी हरिवशजी की परचई, दोहाचौपाई छदो में है ।

४. अमृतकौर, रानी – १०५, २६४ ।

५. अलीबख्श – ११, १६, १३५, १६८, २६४ । मडावर के 'प्रिंस' या राव रैंगड मुसलमानो मे से । हिन्दी-उर्दू दोनो में कविता लिखते थे ।

कृष्णलीला : भगवान कृष्ण की अनेक लीलाओ का सरस वर्णन ।

६. उदैराम – ७, १२६, १५४, १५७, १८८, २१०, २६६, २६८ । समय १८३४ से १८६२ । २४ ग्रन्थो के रचयिता ।

१ हनुमान नाटक, २. अहिरावण-वध-कथा, ३ रामकरुण-नाटक, ४. सुजान-सवत्, ५ गिरिवरविलास, आदि ।

७ उम्मेदराम बारहठ – २० ।

८ उमादत्त 'दत्त' – २४, १५३, १७८, १६१ ।

१ दत्त के कवित्त, विभिन्न विषयो पर लिखित । २ यमन-विध्वस प्रकास (स० १६२४) राजपूतो से जागीरें छीनने का प्रसग ।

६ करमाबाई – २३ ।

१० कलानिधि – ३५, ३८, ५०, ५७, ५६, ६०, २२६, २४६, २४८, २५५, २५६, २६५, २७० । अनेक ग्रन्थो के रचयिता और सोमनाथ के समकालीन तथा उनके सहयोगी । वैर के राजा प्रतापसिंह के आश्रित ।

१ अलकार कलानिधि, अलकार का ग्रथ भोगीलाल की आज्ञा से रचित। २ उपनिपद्सार, उपनिषद्-ग्रथो पर गद्य की पुस्तक। ३. दुर्गामाहात्म्य, दुर्गा-सप्तशती का अनुवाद। ४. रामगीतम्, गीत-गोविन्द-शैली पर लिखित ग्रन्थ।

११ कासीराम – ४२।

१२. किशोर – ४२।

१३ किशोरी रानी – ४।

१४ कृष्ण कवि – ३८। मधुपुरी (मथुरा) के निवासी और सूरजमल के आश्रित।

१ विहारीसतसई की टीका 'मल्ल' के हेतु लिखित। 'मल्ल' से तात्पर्य महाराजा सूरजमल से है। २ गोविन्दविलास : रीतिकाव्य का ग्रन्थ।

१५ गंगेस – २०३।

१६ गणेस – २०६, २०९। बलवतकालीन कवि।

विवाहविनोद, सवत् १८८९, डीग में कटारे वाले महलो में आयोजित श्री बलवतसिहजी के विवाह का वर्णन।

१७. गुलाम मोहम्मद – ११, १२५, १६७, २६९। रणजीतकालीन प्रेमगाथाकार।

प्रेमरसाल सूफी कवियों की प्रेम-गाथा-पद्धति पर लिखा भक्ति और प्रेम-मिश्रित ग्रथ।

१८. गोकुलचन्द्र दीक्षित – ४, ९१। ब्रजेन्द्रवशभास्कर।

१९. गोपाल कवि – ६९।

२०. गोपालसिह – १८, २६४। सग्रहकर्त्ता।

२१ गोवर्द्धन – २४७, २४६, २४८, २४९, २६२। महाभारत का अनुवादकर्ता, अलवरनिवासी।

कर्णपर्व भाषा में–भाषा पर अलवरी प्रभाव है। अनुवाद, दोहा-छप्पय-पद्धति में। स्थान-स्थान पर गद्य का प्रयोग।

२२ गोविन्द – ३८, २७०। जयपुर-निवासी।

गोविन्दानदघन, सवत् १८५८ का लिखा सुन्दर रीतिग्रथ। अलवर तथा भरतपुरमें अनेक प्रतिया उपलब्ध हैं।

२३ घनस्याम – ४२।

२४. घनानंद कवीश – २३१, २४३, २४५।

२५. चतुर – १०५, १०६, १०७। चतुर नाम से अनेक पुस्तको की रचना।

१. तिलोचन लीला : लक्ष्मणजी को इष्ट मान कर की गई कविता। २ पद मगलाचरण, वसत होरी : लक्ष्मण-उर्मिला सबधित शृगार।

२६. चतुरप्रिया – १०५।

२७ चतुरभुजदास – १५, १६७, २४८, २६४। कायस्थो मे निगम कुल मे उत्पन्न हुए।

मधुमालती कथा · इसकी कई हस्तलिखित प्रतियां मिली जिनमें दो सचित्र भी हैं।

२८ चतुर्भुज मिश्र – १८। अलंकार-आभा।

२९. चन्द्रशेखर – २३। हमीरहठ (स० १९०२) के कर्ता।

३०. चरनदास – १६०, १६२, १६५, २६३, २६७। उत्तरी भारत के प्रसिद्ध महात्मा : अलवर राज्य मे डहरा के निवासी। शुकदेव के शिष्य। भार्गवो-द्वारा मान्य।

१ ज्ञानस्वरोदय : आध्यात्मिक तथा दार्शनिक ग्रथ।
२ भक्तिसागर : सम्पूर्ण ग्रथो का संग्रह, प्रकाशित।

३१ जयदेव – २४, १४३। अलवर-राज्याश्रित।

१. राधिकाशतक : १०० कवित्त, प्रकाशित।

२ रामदल रासा, ३ प्रताप रासा, ४ महल रासा, ५ मानस की टीका आदि अनेक ग्रथों के रचयिता।

३२. जयसिंह – २१९। अलवर के महाराज।

१. मेवाती गीतमाला : इनकी आज्ञा से किया गया सग्रह-ग्रथ। २ शिकार-साहित्य : अनेक स्फुट छदो में समय-समय पर लिखा सग्रह। 'वहशी' नाम से उर्दू में भी कविता करते थे।

३३ जाचीक जीवण – २४, १७०, १७२, १७८, १८१, १९७, २३६, २६८। अलवर के प्रताप-कालीन कवि।

प्रतापरासो : ऐतिहासिक सामग्री से परिपूर्ण ग्रथ। राम से प्रतापसिंहजी तक का वर्णन।

३४. जीवाराम – ७, २६, १७६, २१९, २२०, २४८, २५२। बन्नवतकालीन।

१ सभाविलास : (१८६६) राजा के विनोदों का वर्णन। २. अक्कल नामा : नीति की कहानियाँ तथा सामान्य ज्ञान।

३५ जुगल – १७, ३५, ३८, ७४, ८१, ८२, २७०। रीतिकार।

रस कल्लोल प्रथम तरग मात्र प्राप्त। भरत के मत पर रस का निरूपण।

३६ जोधराज – २३। नीमराणा के श्री चन्द्रभान हेतु लिखित। हमीर-रासो।

३७. दयादास – १६२।

३८ दयाबाई – १२५, १६०, १६२, १६८। महात्मा चरनदासजी की शिष्या।

१ दया बोध (सवत् १८१८) : दयादासि नाम भी मिलता है। २ विनय-मालिका : प्रकाशित।

३९. देविया – १८, १७४, २४८, २५७, २६२, २६४। ये रस-आनन्दजी के खवास थे।

हितोपदेश का अनुवाद। संवत् १८६१, पचम कथा तक। कुछ बिखरी कविता भी प्राप्त हुई।

४०. देवीदास – ९, १८, ६६, ६७, १७२, २२६। करौली के रतनपाल भीया के आश्रित। ये आगरा निवासी थे किन्तु प्राय. करौली मे रहते थे।

१ प्रेम-रतनागर : प्रेम की उत्कृष्ट व्याख्या। २ राजनीति : हितोपदेश पर आधारित।

४१ धीरज – १११।

४२. नन्द – ११४। सस्कृत-हिन्दी के विद्वान्।

नाम मजरी : पर्यायवाची शब्दों का अमरकोश के समान संस्कृत गर्भित ग्रंथ।

४३ नल्लसिह – २२। विजयपाल रासो के कर्ता।

४४ नवलसिह – ११४। रास पच्चाध्यायी के कर्ता।

४५ नवीन – ९१, ९२। ये मालवा के निवासी थे किन्तु भरतपुर आते-जाते रहते थे।

१. नेहनिदान : प्रेम का सुन्दर विवरण। २ प्रबोधरससुधाकर, ३. रस तरग आदि ग्रथ।

४६ नीलकंठ – २०६।

४७. परसिद्ध कवि – २९, १७८, १९५।

४८ पगु कवि – १८ कृष्णगायन ।

४९ फिलरत – ११, २३७, २३८ । यह इनका उपनाम प्रतीत होता है ।

सिंहासन बत्तीसी, समय सवत् १८९७ : पोथी उर्दू की लिखी हिन्दी में ।

५०. बख्तावरदान बारहठ – २० ।

५१ बख्तावरसिंह – १५, १००, १०३, २६४। अलवर के महाराज ।

१ दानलीला : (संवत् १८२५) । २. श्रीकृष्ण-लीला : कृष्ण और राधा के नखसिख तथा क्रीडा आदि का वर्णन ।

५२. बटुनाथ – १८. ११४, ११५ । राग रागनियो के ज्ञाता ।

रास पचाध्यायी : सवत् १८९६ । प्रकृति वर्णन हरिऔध से मिलाने योग्य ।

५३. बलदेव – १७, १२९, २६४, २६५ । भरतपुर-निवासी, खडेलवाल वैश्य ।

विचित्र रामायण : समय सवत् १९०३ । वाल्मीकि रामायण के आधार पर १४ अको में रामकथा का वर्णन । रामचद्रिका के समान छद-अलकार आदि ।

५४. बलदेवसिंह – १००, २६४ । भरतपुर के महाराज ।

पद सग्रह : राम और लक्ष्मण को इष्ट मान कर पद लिखे हैं । इनकी रानी भी कविता करती थीं ।

५५. बलभद्र – ३८, ६८, २६४, २६५ । महाराज महीसिह के आश्रित ।

५६ बलवन्तसिंह – १७ ।

५७. बुद्धसिंह – ५९। महाराजा बूदी ।

५८ ब्रजचन्द – १८, ७७ । बलवन्तसिंह के आश्रित ।

शृगार तिलक : सवत् १८९५ ।

५९. ब्रजदूलह – १०० ।

६०. ब्रजवासीदास – १३७ । ब्रजविलास के कर्ता ।

६१. बालगोविंद गुसांई – २४८ ।

६२ भोगीलाल – ९, ३८, ६५, ६७, ६८, ९०, ९१, १०१, २६५, २७० । बख्तावरसिंह के आश्रित ।

बखत विलास : नायक नायिका वर्णन । उच्चकोटि का रीति ग्रंथ, कवि और राजा की वंशावली सहित ।

६३. भोलानाथ – १८, १०९ । महाराजकुमार नाहरसिंह के आश्रित ।

लीला पच्चीसी · प्रकृति-चित्रण पर सुन्दर छदो सहित ।

६४ मणिदेव – १८ । महाभारत के कुछ पर्वो का अनुवाद ।

६५ मनीराम – ६८, ६९, २६४, २६५ । बलभद्र के सिखनख पर प्रथम टीकाकार ।

सिखनख की टीका : सवत् १८४२ । यह इस ग्रथ की सर्वप्रथम हिंदी टीका है, जो अभी तक अज्ञात थी ।

६६ मान – १०४ । शिददान के आश्रित ।

शिवदान चन्द्रिका : रीतिग्रथ । अनेक स्थानों पर बरवै छद का प्रयोग । शुद्ध सस्कृत-गर्भित भाषा ।

६७ मुरलीधर – १६ । यह भट्ट थे । इनका उपनाम प्रेम था । राधाकुड से आये और अलवर मे कविता की ।

शृ गार-तरंगिणी : समय १८५० ।

६८ मोतीराम – १८, ३५, ३८, ७४, ७८, २७० । सभवत. वृन्दावन के निवासी ।

व्रजेन्द्र-विनोद : समय १८८५ विक्रमी । रीति सवधी अनेक विषयो का सुन्दर कविता में विवेचन ।

६९ रतनपाल – १००, २६४ । करौली महाराज ।

७० रस आनन्द – १५, १८, ३५, ३८, ६८, ७४, ८४, ८६, ९०, ९१, ११७, १५०, २४६, २५०, २५७, २६२, २६४, २७० । भरतपुर का प्रसिद्ध कवि ।

१ सग्राम रत्नाकर : ४७४ पत्रों का वृहद् ग्रथ । २ रसानदघन : २० पत्रों की अधूरी पुस्तक । ३ सिखनख : सवत् १८९३, विस्तृत वर्णन ४ गगा भूतल आगमन कथा . इसकी कई प्रतिया मिलीं । ५. व्रजेन्द्र-विलास . सवत् १८९५, ७ विलासो सहित । ६. हितकल्पद्रुम : 'अनवार सुहेली' का व्रजभाषा-पद्यानुवाद ।

७१. रसनायक – १३८ ।

विरह विलास : समय सवत् १७८२ । गोपियो के प्रसंग में सूर का अनुकरण । दोहा, कवित्त तथा सवैया छद का प्रयोग ।

७२. रसरासि – १४१ ।

रसरासि पचीसी, (उद्धव पचीसी) : राज्याज्ञानुसार लिखित ।

७३. रामकृष्ण – १८ । दानलीला ।

७४. राम कवि – १७, ३५, ३८, ७४, ११६, १७४, २५६, २५७, २७०। राज्याश्रित।

१. हितामृत लतिका : हितोपदेश पर आधारित पुस्तक। २. अलकार मजरी : अलकार पर लिखित पुस्तक। ३ छदसार ६ सर्ग ऐतिहासिक सामग्रीयुक्त। ४. विरह पचासी : एक खर्रे के रूप में।

७५ रामजन – १२५। निर्गुण काव्यधारा के अन्तर्गत।

गोपीचन्दजी को वैराग-बोध : कृति मे 'रामजन' और 'हरिजन' शब्द विचारणीय है।

७६. रामनाथ बारहठ – १८।

७७ रामनारायण – ९, १३३, १४३, १४४। जसवत कालीन, गुमाई।

१. राधा मगल : सवत् १९५३, यह 11 सर्ग का प्रबन्ध काव्य है। २. पार्वती मगल : किसी पुजारी के पठनार्थ लिखी पुस्तक।

७८ रामलाल – २०६। विनयसिंह के आश्रित।

विवाह विनोद . विनयसिंहजी की लडकी के विवाह का वर्णन।

७९ रामप्रसाद शर्मा – १५१। अलवर के सेनापति पदमसिंह के आश्रित।

गगा भक्त तरगावलि : यमराज आदि की शिकायत के रूप में गगा की प्रार्थना।

८० रूपराम – १७। ज्योतिष ग्रन्थ।

८१ ललिताप्रसाद – १८। रामशरण ग्रन्थ।

८२ लक्ष्मीनारायण – १७। गगालहरी।

८३ लाल – ४२।

८४ लालदास – १५, २२, २४, १२४, १६६, १६८, २६३। लालदास की वाणी।

८५. विनयसिंह – ८, ३७, २३३, २६४, २६७। अलवर नरेश।

भाषा भूषण की टीका ब्रजभाषा गद्य में की गई उत्कृष्ट टीका।

८६. वीरभद्र – ११२, १३६, १३७। ये गोवर्धन के पडे थे।

१ फागु लीला : सवत् १८८७ अमृतकौरजी के पठनार्थ। २ ब्रजविलास : सवत् १९११ दोहा, चौपाई, छद में ब्रजवासीदास के अनुकरण पर।

८७. वैद्यनाथ – १७, २०३। कविवर सोमनाथ के वशज।

विक्रम चरित्र संवत् १८८४, विक्रम द्वारा ५ बड जीतने की कथा।

८८ ब्रजचद – ७४। शृगार तिलक।

८९. ब्रजदूलह – १८। पद-सग्रह।

९० ब्रजेश – १८, १३३। बलवत आश्रित।

रामोत्सव · इसमें दशहरे का वर्णन भी है। जन्म-उत्सव तथा बधाई आदि भी हैं।

९१ शिवबख्शदान – १२, १६, २०, १७१, २१०, २१४, २१६। अग्रेजो से प्रभावित।

अलवर-इतिहास : सवत् १८६४, ऐतिहासिक तथा प्रामाणिक ग्रथ। अनेक गोपनीय रहस्यों का उद्‌घाटन।

९२. शिवराम – ३८, ४७, ४८, ४६, २७०। महाराजकुमार सूरजमल के आश्रित।

नवधा भक्ति-राग-रस-सार : समय संवत् १७६२, राग-रागनियो का सुन्दर स्वरूप। ३६००० रुपयों से पुरस्कृत ग्रंथ।

९३ श्रीधरानद – १७। बलदेव कालीन। इन्हे कवीन्द्र की उपाधि मिली थी।

साहित्य-सार-चिन्तामणि · काव्य-प्रकाश पद्धति पर गद्ययुक्त रीति ग्रथ।

९४. सहजोबाई – १२५, १६०, १६८। स्वामी चरणदास की शिष्या, हरप्रसाद की पुत्री, अलवर के डेहरा गांव मे उत्पन्न।

सहजोप्रकाश : (सवत् १८२५) प्रकाशित।

९५. सिरोमन – ४२।

९६. सूदन – ६, ११, २४, १७२, १७८, १८०, १८१, १८३, १८५, १८६ १८७, १९७, २३६, २४८, २५०। भरतपुर का सुप्रसिद्ध कवि।

सुजान चरित्र . कुछ लोग सोमनाथ और सूदन को एक ही व्यक्ति मानते है किन्तु यह प्रमाणित नहीं होता।

९७ सेनापति – ४२।

९८ सेवाराम – १८। नलदमयन्ती चरित्र।

९९ सोभनाथ – २२०, २२१, २३६। अलवर निवासी थे। इनके गुरु रसरासि थे।

सभाविनोद : पूरी पुस्तक दोहो में है।

१००. सोमनाथ – ६, ३५, ३६ ३७, ४२, ४३, ५०, ५२, ५३, ५४, ५५, ५७, ६०, ६८, १४७, १५८, १६५, १७८, १८६, २०३, २०५, २०६, २३२, २३५, २४६, २४८, २५५, २६२, २६५। प्रतापसिंह के आश्रित।

१ सुजानविलास, २ भागवत दशमस्कध टीका, ३. प्रेम पचीसी, ४ ध्रुव-विनोद, ५ महादेवजी को ब्याहुलो, ६. रसपीयूषनिधि, आदि-आदि।

१०१ हरिनाथ—३८, ७०, ९०, १७४, १७५, २७० विनयसिंहजी के आश्रित।

१. विनय प्रकाश (सवत् १८८९) उच्चकोटि का रीति-ग्रथ। २ विनय विलास (सवत् १८७५) राजनीति सबधी पुस्तक।

परिशिष्ट २

ग्रन्थनामानुक्रमणिका

१ अक्कलनामा – ६, २६, १६६, १७१, १७५, १७६, २३६, २४०, २४७, २७०, लिपिकार जीवाराम, सवत् १८६६ ।

२ अनवार सुहेली – २४७, २६१ ।

. अभिनव मेघदूत – २१६ ।

४ अलवर का इतिहास – १२, १७१, २१०, २१४, वारहठ शिवबख्शदान गूजू, १८६४ ई० ।

५. अलकार आभा – १८, चतुर्भुज मिश्र ।

६ अलकार कलानिधि – ३५, ५६, ६३, २६५, रचयिता कलानिधि ।

७ अलकार मंजरी – ७४, राम कवि, प्रतिलिपि १८६७ विक्रमी ।

८. अष्ट देश – ४०, गोविन्द कवि कृत ।

६. अष्टांगयोग – १०, १६१, चरणदास कृत ।

१०. अहिरावण वध कथा – १२७, २६६, उदयराम, सवत् १६२२ ।

११. आइनेअकबरी – २४७, २६१ ।

१२ ईश्वरविलास – ५६, कलानिधि कृत ।

१३. उद्धवपचीसी – १४१, रसरासि कृत ।

१४. उपनिषद् सार – ५६, २२६, २७०, कलानिधि ।

१५. करुण पचीसी – ८२, १५६, रचयिता जुगल कवि ।

१६ कर्णपर्व – २४६, गोवर्धन कवि, सवत् १८०५ ।

१७ कलियुग रासौ – ४०, गोविन्द कवि कृत ।

१८ कृष्णगायन – १८, पगुकवि कृत ।

१६ कृष्णलीला – ११, राव अलीबख्श, मडावर ।

२० कृष्णलीला – १००, वख्तावरसिंह कृत ।

२१. कालिकाष्टक – १५३, उमादत्त कृत ।

२२ गणेश – १७, विवाह विनोद ।

२३. गिरिवरविलास – ७, १५४, १५५, १६८, २६६ ।

२४. गोविंदानदघन – ३८, ४३, ५०, २३०, गोविंद कवि, सवत् १८५८ ।

२५. गगाभक्त तरगावली – १५०, १५१, रचयिता रामप्रसाद शर्मा, १९३५ ।
२६. गगाभूतल आगमन कथा – ८४, १५०, रसानद कृत ।
२७. गगालहरी – १७, लक्ष्मीनारायण कृत ।
२८. छदसार – ७४, ७५, ८७, रामकवि, बलवतसिहजी के हेतु ।
२९. जानकी मगल – १३३, २६६, रामनारायण कृत ।
३०. जानकी मगल – ९, रचयिता हनुमंत कवि, सवत् १९३४ ।
३१ तिलोचन लीला – १०५ रचयिता चतुर पीव ।
३२ दयाबोध – २१, १६०, १६२, रचयिता दयाबाई, सवत् १८१८ ।
३३ दानलीला – १०३, अलवर नरेश-बख्तावरसिंह ।
३४. दानलीला – रचयिता भूधर सवत् १८५० ।
३५ दानलीला – १६१, चरणदास कृत ।
३६ दानलीला – १८, रामकृष्ण कृत ।
३७ दुर्गामहात्म्य – ५६, १५३, १५८, रचयिता कलानिधि, सवत् १७९० ।
३८. देवशतक – ६१, देवकृत ।
३९. ध्रुव विनोद – १४७, १५८, रचयिता सोमनाथ, सवत् १८१२ ।
४०. ध्वनिप्रकरण – २६५ ।
४१. नखसिख – ६८, ७० ।
४२ नलदमयन्ती चरित्र – १८, सेवाराम कृत ।
४३. नवधा भक्ति – ४४, २६४, रचयिता शिवराम 'कविराज'. सवत् १७६२ ।
४४. नेह निदान – ९१, ९६, २६५ रचयिता 'नवीन', सवत् १८९६ विक्रमी ।
४५. पद्यमुक्तावली – ५६, कलानिधि कृत ।
४६ पद मगलाचरण बसत होरी – १०५, रचयिता 'चतुर', बल्देव काल ।
४७. पार्वती मगल – ९, १२४, १३३, १५०, २६६, रचयिता गुसाईं रामनारायण, सवत् १९३८ ।
४८. पिंगल ग्रन्थ – ४०, गोविन्द कवि कृत ।
४९ प्रताप रासो – २४, १७०, १७२, १७८, १८०, १८१, १९१, १९७, २१०, २६६, २६८, रचयिता जाचीक जीवण, सवत् १९०४ ।
५०. पृथ्वीराज रासो – १८२ ।
५१. प्रबोधरस सुधासार – ९२, नवीन कृत ।
५२. प्रशस्ति मुक्तावली – ५६, कलानिधि कृत ।
५३. प्रेम पचीसी – ९८, ९९, १६५, सोमनाथ ।
५४. प्रेमरतनागर – ९६, २६५, देवीदास ।

५५. प्रेमरसाल – ११, १६७, २६६, गुलाम मुहम्मद, रणजीतकाल ।
५६. फागुलीला – ११२, रचयिता वीरभद्र, स० १८८७ ।
५७ बखतविलास – ६५, २६५, रचयिता भोगीलाल ।
५८ बलवर्तसिहजी का विवाह – २०६, गणेश कृत ।
५९. बारहमासी – ८४, रसानद कृत ।
६०. ब्रजेन्द्र विनोद – ७४, ७८, ८१, रचयिता मोतीराम, स० १८८५ ।
६१ ब्रजेन्द्रवंशभास्कर – ४, ९१, रचयिता प० गोकुलचन्द्र दीक्षित ।
६२. बैरागसागर – २४१ ।
६३ भक्तिसागर – १६०, चरनदास की बानी । प्रकाशित ।
६४ भागवतदशमस्कध – १५८, २५५, रचयिता सोमनाथ ।
६५. भाषाभूषण की टीका – ८, २३३, २६७, २७१, टीकाकार विनयसिंह ।
६६ भोजप्रकास – ८४, रसानद कृत ।
६७. मखदूम साहब ग्रन्थ – १५ ।
६८ मधुमालती की कथा – १६७, २४८, रचयिता चतुर्भुजदास कायस्थ ।
६९ महल रासो – २४ ।
७०. महादेवजी कौ ब्याहुलौ – २६, १२४, १४७, १५०, १६८, २६६, रचयिता सोमनाथ स० १८१३ ।
७१ यमन विध्वस प्रकास – २४, १७०, १७८, १९१, १९७, रचयिता दत्तकवि, सं० १९२४ ।
७२ युगलरसमाधुरी – ४०, गोविन्द कवि कृत ।
७३ रसकल्लोल – १७, ७४, ८१, जुगल कवि, बलवतकाल ।
७४ रसदीपका – ८३ ।
७५ रसपीयूषनिधि – ३५, ३६, ५०, ५४, ८८, ९०, २३२, २६५, रचयिता सोमनाथ, स० १७९४ ।
७६ रसरासि-पचीसी – १४१, रचयिता कवि रसरासि, प्रतापकाल ।
७७ रसानन्दघन – ८४, ११७, ११८, रचयिता रसआनद स० १८९५ ।
७८ रसानन्दविलास – ८४, रसानद कृत ।
७९ रसिकगोविन्द – ४०, गोविन्द कवि कृत ।
८० राधामगल – ९, १२४, १३३, १४३, १४४, १४५, १६८, २६६, २६९, २५, रचयिता गोसाईं रामनारायण १९३३ ।
८१ राधिका-शतक – १४३, रचयिता जयदेव, स० १९५० ।
८२ रानी केतकी की कहानी – २३९, इशा अल्लाखा कृत ।

८३ राजनीति – १७२, १६४, देवीदास, स० १७३५ ।

८४ राजनीति – १०२, अकबर कृत ।

८५. रामकृष्ण नाटक – १२७, रचयिता उदयराम ।

८६ रामगीतम् – ५६, २४७, २६७, रचयिता कलानिधि ।

८७. रामायण सूचनिका – ४०, १५८, गोविन्द कवि कृत ।

८८ रामशरण – १८, ललिताप्रसाद कृत ।

८९. राम-करुण – २६६ ।

९० रासपचाध्यायी – १८, २६६, रचयिता वटुनाथ, स० १८९६ ।

९१. रुक्मिणी मगल – २६६ ।

९२ लछिमन चन्द्रिका – ४०, गोविन्द कवि कृत ।

९३. लाल-ख्याल – २२२, २६३, रचयिता अज्ञात, बलवतकाल ।

९४. लालदास की वाणी – १५, २२, लालदास कृत ।

९५ लीलापचीसी – १०९, रचयिता भोलानाथ, सूरजमल काल ।

९६. वाल्मीकीय रामायण – २४६, २४८ ।

९७ विक्रमचरित्र – १७, २०३, पच दड कथा वैद्यनाथ, सं० १८८४ ।

९८. विक्रमविलास – २०३, रचयिता गगेस, स० १७३९ ।

९९. विक्रमविलास – १९८, २०१, रचयिता अखेराम, स० १८१२ ।

१०० विचित्र रामायण – १७, ४१, १२९, १३०, २६५ रचयिता बलदेव खडेल-वाल, स० १९०३ ।

१०१. विजयपाल रासो – ५, २३, नल्लसिंह कृत ।

१०२ विजयसग्राम – १७८, १८८, १८९, १९७, रचयिता खुसाल कवि, स० १८८१ ।

१०३ विनयप्रकाश – ७०, रचयिता चतुरशाल सुत मानसिंह चादावत राठौड, स० १९०९ ।

१०४. विनयमालिका – १६०, १६२, दयाबाई कृत ।

१०५. विनयविलास [प्रकास] – ७०, १७४, १७५, रचयिता हरिनाथ, संवत् १८७५ ।

१०६. विनयसिंहजी की पुत्री का विवाह – २०६, रामलाल कृत ।

१०७. विरहपचीसी – ११६, रचयिता राम कवि, बलवत काल ।

१०८. विरहविलास – १३८, १४१, रचयिता रसनायक, सवत् १८७२ ।

१०९ विवाहविनोद – १७१ ,२०६, २०७, रचयिता रामलाल, विनयकाल ।

११०. विवाहविनोद – १७, रचयिता गणेस, संवत् १८८९ ।

१११ वैरागसागर – २३९ ।

११२ व्रजविलास – १३६,१३७, वीरभद्र ।

११३. व्रजविलास – १३७, व्रजवासीदास ।

११४. व्रजेन्द्रविनोद – ७४, मोतीराम कृत ।

११५. व्रजेन्द्रप्रकास – ८८ ।

११६. व्रजेन्द्रविलास – ३५, ७४ ८४, ८६, रचयिता रसानद, सवत् १८९५ ।

११७. वृत्तमुक्तावली – ५९, कलानिधि कृत ।

११८ वृन्दावनशतक – २१४, रचयिता ध्रुवदास ।

११९ शिवदानचंद्रिका – १०४, रचयिता कवि 'मान', समय संवत् १९०८ ।

१२०. शकरशरण – १८, भोलानाथ कायस्थ कृत, शिवपुराण का अनुवाद ।

१२१ शृ गारतिलक – १८, ७४, ७७ रचयिता 'व्रजचन्द्र' सवत् १८९५ ।

१२२. शृ गारमाधुरी – ५९, ६० रचयिता 'श्रीकृष्ण भट्ट' कलानिधि ।

१२३. शुकबहोतरी – २६१ ।

१२४ षोडश शृ गार वर्णन – ८४ रसानंद कृत ।

१२५. षड्ऋतु – २१४, शिववल्शकृत ।

१२६. सभाविनोद – २२०, २२२ कवि सोभनाथ, अलवर, सवत् १८२९ ।

१२७ समयप्रबन्ध – ४० गोविन्द कवि कृत ।

१२८. सरस रसास्वाद – ५९ कलानिधि कृत ।

१२९ सभाविलास – २१८, २१९, २२० रचयिता जीवाराम चौबे, १८९६ ।

१३०. सहजप्रकाश – १६० सहजोबाई कृत ।

१३१. साहित्यसार चिंतामणि – २३१, २४३ रचयिता 'श्रीधर कवीन्द्र' ।

१३२. सिखनख की टीका – ६८, २६४ मनोराम कृत, सवत् १८४२ ।

१३३. सिखनख – ६८, ७४, ८४, ८६, ८८ रचयिता 'रसानद', सवत् १८९३ ।

१३४ सिंहासन बत्तीसी – १९८ कवि अखेराम ।

१३५. सिंहासन बत्तीसी – ११, १७१, २३७, २३८, २४७, २६०, २६१, २७१ लेखक 'फितरत', १८९७ ।

१३६ सुजान चरित्र – ९, ११, २४, १६९, १७२, १७८, १८०, १८१, १८३, १८६, १८७, १९१, १९७, २१०, २४०, २५०, २६६, २६८ सूदन कवि, सूरजमल का चरित्र ।

१३७. सुजानविनोद – ९१ देवकृत ।

१३८ सुजानविलास – २००, २०५, २६० रचयिता 'सोमनाथ' ।

१३९. सुजानसवत – १८८, २१०, २११, २१२, २१३, २६८ रचयिता उदयराम, सवत् १८२० ।

१४० सुधासागर – १८ देवीराम कृत ।

१४१ सु दर सिंगार – महाकविराय।

१४२. सग्राम कलाधर – ८४, २४६ रसग्रानद कृत ।

१४३ सग्रामरत्नाकर – ८४, २४६, २५०, २५१, २७१ रचयिता रसआनद, १८६५ ।

१४४. हम्मीररासौ – २३ रचयिता जोधराज, १७८५ ।

१४५ हम्मीरहठ – २४ रचयिता 'चन्द्रशेखर' १६०२ ।

१४६ हनुमान नाटक – १२६, २६६ लेखक 'उदै'—उदयराम ।

१४७ हितकल्पद्रुम – ८४, २६० रसानद कृत ।

१४८. हितामृतलतिका – २५७ रचयिता 'राम कवि' ।

१४९ हितोपदेश – ९, २८, १७१, १७४, २२९, २५६, २५७, २५९, २६०, २६१, २७१ रचयिता देविया खवास, १८९१ ।



परिशिष्ट ३

कुछ अन्य कवि

१. ब्रह्मभट्ट पूर्णमल्लजी

ये अलवर नरेश महाराव राजा विनयसिंहजी के राजकवि थे। इनका जन्म सवत् १८९७ में हुआ। विद्याध्ययन के हेतु अपने ग्राम पीपलखेडा से काशी गए और सस्कृत का अध्ययन किया। इनका लिखा कोई ग्रन्थ तो नहीं मिलता, वैसे इनकी स्फुट कविताए काफी मिलती हैं जो उत्सवो पर राजदरबारो मे सुनाई जाती थीं। ये सस्कृत और हिन्दी दोनो भाषाओ मे कविता करते थे। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि ग्वाल से इनका काव्य-विवाद हुआ था। अपनी पराजय स्वीकार करते हुए ग्वाल कवि ने कहा था—'इस समय सरस्वती आप पर ही प्रसन्न है।' उस समय की समस्यापूर्ति का एक उदाहरण—

समस्या— 'कैसे कै बखान करू मेरे तो है एक जीभ'

पूर्ति— कीन्हो नाहि वेद पदे भयो बलमीक तै न,
जन्म्यो न नाभि हरिवारन असुर ईभ।
भाष्यकार नाहि पुनि कहि न पुराण कथा,
जागत जगत जस पावन सुरसरीभ॥
पूरण प्रमित होत रजकण हू की कभू,
देव मग देख दक्ष गिनती गिने गुनीभ।
गुनन अधिकान अप्रमाण भगवान तब,
कैसे कै बखान करू मेरे तो है एक जीभ॥

विनयसिहजी की प्रशसा में कहा गया सस्कृत श्लोक—

अहनि नो रविणा परिभूयते, हसति नेन्दुरिवासितपक्षके।
चरमवारिधिवारि न मज्जति, जयति ते विनयेशयश· शशी॥

बसन्त की बहार—

ललित लवग लवलीन मलयाचल की,
मजु मृदु मारुत मनोज सुखसार है।
मौलसिरी मालती सुमाधवी रसाल मौर,
मौरन पै गुञ्जत मिलिन्दन को भार है।
कोकिला कलाप कल कोमल कुलाहल कै,
पूरण प्रतिच्छ कुहू कुहू किलकार है।
वाटिका बिहार बाग वीथिन विनोद बाल,
विपिन बिलोकिबो बसन्त की बहार है।

२. ठाकुर बिडदसिंह 'माधव'

यह किशनपुर के जागीरदार थे। इनका जन्म सवत् १८९७ में हुआ। कविराव गुलाबसिंहजी के पास विद्याध्ययन किया और उनकी कृपा से सस्कृत-हिन्दी के अच्छे पडित हो

गए। गुरु के पास समस्त काव्य-अगो का अध्ययन किया और काव्य-कला में अतिप्रवीण हुए। यह महाराजा विनयसिहजी के सभासद थे। कौंसिल के समय भी यह उनके मुसाहिब थे। कवि जयदेव ने इनसे ही काव्य-कला सीखी। अलकार, ऋतुवर्णन, प्रकृतिनिरीक्षण मे इनकी विशेष अभिरुचि थी। अनुप्रास की ओर भी इनका झुकाव था। शृंगार रस इन्हें विशेष प्रिय था और उसके दोनों पक्ष इनकी कविता में मिलते हैं। सं० १९२४ में इनका शरीर शान्त हुआ। कवि ईश्वरीसिह ने अपने काव्य में 'माधव' कवि की अनेक बातो का उल्लेख किया है। लिखते हैं—

१ अलकार रस आदि काव्य के सकल अग पढ़ि।
भे प्रवीण सब भाति कवित रचना मे बहु बढ़ि॥
वर कविता नर बानि करत 'माधव' स्वनाम धरि।
अलवर जनपद माहि नाहि कोऊ जो करे सरि॥
अडसट्ठ बरस की आयु अब स्नान करत नित शीत जल।
पुनि षोडशाब्द मोते बडे तोहू सकल इन्द्रिय सबल॥

२ तनमन तै विनयेश नृपति की सेवा बहु किए।
तेरह हय जागीर ग्राम मय पटा माहि दिए।
पुनि शिवदान भुआल भये विनयेश सुवन जब।
अहद अजन्टी माहि भयौ मन जनक मुसाहिब॥

'माधव' कवि की रचना—

१ इकन्त विलोकि अनन्दित होय दुकूलन दूर किए अति प्रीति।
समाधि के हेत विधान अनेकन साधत आसन प्रेम प्रतीति॥
मिल्यो गुरु ए री विदेह मनो दई 'माधव' तानै अद्वैतता नीति।
निरन्तर सीकर मत्र जपै लखी सब भोग में जोग की रीति॥

२ नहीं गाजत बाजत दुदभि है चपला न कढी तलवार अली।
धुरवा न तुरग ये 'माधव' चातक मोर न बोलत वीर बली॥
जलधार न जार शिलीमुख को घन है न मतगन की अवली।
बरसा न विचारि भटू शिव पै सज साज मनोज की फौज चली॥

३ कविराव गुलाबसिह

इनका जन्म सवत् १८८७ है। इन्होंने सस्कृतकाव्य का गम्भीर अध्ययन किया और उसके उपरांत हिन्दी भाषा की ओर भी यथेष्ट ध्यान दिया। महाराव राजा शिवदानसिहजी ने इन्हें अपना मुख्य राजकवि नियुक्त किया। बूदी के प्रसिद्ध कवि सूर्यमल्ल से इनका सस्कृत काव्य पर विवाद हुआ और थोडे समय तक आपस में विचार परिवर्तन और आलोचना-प्रत्यालोचना होती रही। अन्त में इन्होने सूर्यमल्लजी के हृदय पर गम्भीर प्रभाव डाला और दोनो मित्र बन गए। सूर्यमल्लजी से प्रशसा सुन कर बूंदी नरेश रामसिहजी भी इन पर बहुत मुग्ध हुए और कुछ दिनो के पश्चात् इन्हें बूदी बुला लिया गया और यह वहीं रहने लगे। बूदी नरेश इनका बहुत आदर करते थे। 'रसिक कवि-सभा' कानपुर की ओर से इन्हें 'साहित्य-

भूषण' की उपाधि मिली थी। इनके लिखे ग्रंथो की सख्या ३४ बताई जाती है, जिसमें नीति, कृष्णलीलाए तथा देवी-देवताओ सबधी कविताए आदि है। संवत् १९५८ में आपका देहावसान हुआ। अलवर के अनेक कवि इनके शिष्य थे। इनके जीवन के पिछले ३० वर्ष बूंदी मे व्यतीत हुए, किन्तु कविता का आरम्भ अलवर में ही किया तथा अलवर भूमि और राजाओ का मनोहर वर्णन भी किया—

१ बटत बधाई आज सुत के उछाह मांझ,
पाई कविवृन्द नै अनन्द सन्मान मे।
दीनै घने गांव ककन दुशाल माल,
घूमते मतग अग फूले सुभ थान में।
सुकवि गुलाब जमि एक सें कहा लों कहे,
कीरति तिहारी अति छाई हिन्दुवान में।
नन्द विनयेश के प्रतापी शिवदानसिंह,
या समै न आन कोउ तो समान दान में॥

२ दाजन दै दुरजीवन को अरु लाजन दै सजनी कुलवारे।
साजन दै मन को नवनेह निवाजन दे मन मोहन प्यारे॥
गाजन दै ननदीन 'गुलाब' विराजन दै उर में गनु भारे।
भाजन दै गरु लोगन के डर बाजन दे अब नेह नगारे॥

इनकी शिष्य परम्परा बहुत विस्तृत है। अलवर में इनके शिष्य किशनपुरे के ठाकुर विडदसिंह और ईश्वरीसिंह थे। घवाला के ठाकुर नरूका हनवन्तसिंह भी इनके शिष्य थे। बूदी में चौबे जगन्नाथ जी इनके प्रमुख शिष्य थे।

४ चन्द्रकला बाई

यह कविराव गुलाबसिंहजी की दासीपुत्री थीं। कविराव जी के साहचर्य से इन्हें समस्यापूर्ति में विशेष प्रवीणता आ गई और हिन्दुस्तान के अनेक प्रसिद्ध नगरो में जा-जा कर कविसभाओं में समस्याओं की पूर्ति किया करती थीं। अनेक स्थानो से इन्हें मानपत्र मिले। सन् १८९० में बिसवा जिला सीतापुर से अवध की कविमडली द्वारा 'वसुधरारत्न' की पदवी मिली। इनके लिखे चार ग्रन्थ बताए जाते हैं—

१. करुणाशतक
२. रामचरित्र
३ पदवीप्रकाश
४ महोत्सवप्रकाश

यह पहेलियां भी लिखा करती थीं। जैसे—

कारो है पै काग न होई।
भारो है पै शैल न होई॥
करै नाक सो कर को कार।
अर्थ करो कै मानो हार॥ (हाथी)

रामसिंह जी की पुत्री पर लिखा एक छद देखिए—

> बूंदीनाथ प्रवल प्रतापी रामसिंह जू की,
> तनया सुशील सनी परदुख हारी है।
> पति सरदारसिंह परम प्रवीन पाये,
> गुन रिझवार तव पूरे हितकारी हैं।
> 'चन्द्रकला' सकल कलान में निपुन आप,
> मति माहि शारदा सी नीके निरधारी है।
> भाग अहिबात तेरो सदा ही अचल रहो,
> जो लौं शिव मस्तक पै गगा सुखकारी है ।।

इनका जन्म स० १६२३ में हुआ था। इनकी स्मरणशक्ति बड़ी तीव्र थी। हिन्दी के 'रसिकमित्र', 'काव्यसुधाकर' आदि पत्रो में इनकी कविताएं छपती थीं। इनकी भाषा सालकार, सरल तथा व्यवस्थित है। कला की दृष्टि से इनकी कविता बहुत श्रेष्ठ है।

५ कृष्णदास

कृष्णदास जी की लिखी दो पुस्तकें मिलीं—१ रसविनोद और २ भक्ततरगिनी (स्वामिनी जी का प्रथम मिलाप)। इन कविजी का कविताकाल भरतपुर के महाराज जसवर्तसिंह जी का शासनकाल है। इनका निवासस्थान नगर था। भरतपुर के एक पडित फतेहसिंह के अधिकार में उक्त दोनो पुस्तको को देखा था।

अनेक कवियो ने 'रसविनोद' नाम से काव्यग्रंथ लिखे। कृष्णदास जी के इस ग्रन्थ का निर्माण काल इस प्रकार है—

> एक ब्रह्म नव भक्ति, बीस भक्त जल भेदवत्।
> सप्त जो ऋषि की शक्ति, ईहि जानै समत यही ।।

समय देने की यह बडी ही कूट प्रणाली है किन्तु कवि ने स्वय ही एक स्थान पर १६२७ लिखा है। पुस्तक में चार पाद हैं—

१. नवरस वर्णन, २ नायक-नायिका भेद वर्णन, ३ दूतकादि वर्णन, ४ सचार आदि वर्णन। पुस्तक की पत्र संख्या केवल ३० है।

पुस्तक के अत में लिखा है—

'इति श्री कृष्णदास कृत ग्रन्थ रसविनोद सचारी वरणन नाम चतुर्थ पाद ।। ४ ।। सपूर्णम्। शुभ मगल।'

> १ झिलमिलात तन ज्योति, छवि वरणत रमणीयता।
> लखि अनदेखी होति, मृदुता कोमल अग वर ।।
>
> २ कुद कली वीनन चली, साथ अली परभात।
> जहा छबीली पग धरत, कनक भूमि दरसात ।।
>
> ३ रूप अनूपम राधिका, भूषन भूषन अग।
> उमा रमा प्रमदा शची, लाजत तीय अनग ।।

दूसरा ग्रन्थ 'भक्ततरगिनी' है जिसके साथ 'श्री स्वामिनी जी का प्रथम मिलाप' भी सम्मिलित है। इस पुस्तक में बल्लभ और विट्ठल के गुणगान उपरान्त कथा अथवा ग्रन्थ का आरम्भ होता है। इसमें सन्देह नहीं कि कवि वल्लभकुली था। स्वामिनी जी का मिलन 'राधा-कृष्ण' का मिलन है।

श्री वल्लभ बिट्ठल कमल, पदरज रस मकरद।
सरस लुभानि भृंग मन, प्रिय-प्रिया बृजचद ।।

इस पुस्तक के मार्जिन में अनेक टिप्पणिया भी लिखी हुई है। कविता बहुत ही सुन्दर है–

रमण अकेले नाहि हरि, पत पत्नि भये आप।
सो श्री राधा कृष्ण को, वरणौं प्रथम मिलाप ।।

राधा का वर्णन–

सारी नील लसी तन गोरें।
दामिनी नील जलद चित चोरें ।।
चरणन बजनी पायल गाजी।
काम विजय दुदुभि जनु बाजी ।।

६ दान कवि

१९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इनकी स्थिति मानी जाती है। यह महाशय जाति के ब्राह्मण थे और भरतपुर के महाराज जवाहरसिंह जी के पास रहते थे। इनकी भाषा में भरतपुर की छाया स्पष्ट लक्षित होती है। जवाहरसिंहजी के समकालीन भगवत राय खींची के लिए भी इन्होने कुछ छद लिखे थे। हमारे देखने में इनकी दो पुस्तक आई––

१. ध्यानबत्तीसी, तथा
२ दानलीला

ध्यानबत्तीसी का उदाहरण––

इत पीत पट उत राजत है नीलबर,
इत मोरचन्द्रिका उतै उजास हास है।
इत बनमाला उत राजत है मोनीमाला,
इत खोर किए उत बैदा को प्रकास है ।।
कुण्डल स्रवन इत राजत तरौना उत,
इत छुद्रघण्ट उत नूपर विलास है।
इत सग सखा उत सोहे सग सखीगन,
देखो दोऊ होडा होडी रचि राख्यौ रास है ।।

दान लीला – दान लीला में रोला के दो चरण तथा एक दोहे के उपरान्त 'कहे व्रज नागरी' अथवा 'सुनो व्रज नागरी' टेक आती है––

दान देन तुम कहत दान नवग्रह कौ होई।
विप्र पात्र जो होय वेद को पाठक कोई ।।

तुम अचार जानो नहीं, जाति और कुल ओर।
गऊ चरावत फिरत हो, तुम दानी कित ठौर॥
कहैं व्रज नागरी।

हम दानी हैं आदि लेंहि अपनो मन मान्यौं।
वलि सकल्प्यो मोहि वाधि पाताल पठान्यौं॥
राम हुए छत्री हते, वसुधा लई छिनाय।
फिर विप्रन कू हम दई, मोते कहू न जाय॥
सुनो व्रज नागरी।

जवाहरसिंह जी के प्रति—

नृपति जवाहर तुम्हारी हलदौर सुनि,
वैरिन के वलगनि फैलत फिराके सी॥
जिनकी नवेली अलवेली वन कलिन में,
वेली वेली रोवत अकेली सचि राके सी॥
भूलनि भरोसी भयरानी भयादुर सी,
झटक झटक भेटती 'भूधर' भिराके सी॥
चद सी चमक चारु चपलासी चादनी सी;
चपक कली सी चामीकर सी चिराके सी॥

७ खुमानसिंह

ये नल्लवशी सिरोहिया राव करौली के अच्छे कवि हुए हैं। महाराज मदनपाल ने इनको उमेदपुरा गाव और हाथी दे कर करौली के सब गावों मे पीढी दर पीढी चन्दा चालू कर दिया था, और भट्ट, चारण आदि की विदा का दानाध्यक्ष भी वना दिया था जिसमे महाराज से विना पूछे १००) तक विदा देने का इनका अधिकार था। मदनपाल जी के सम्वन्ध में लिखते हैं—

१ तिलक विजै को निरखै को नव तेज पुज,
जवर जिल्है को जोट जाहर अनीप को।
क्षत्रिन को क्षेत्र है नक्षत्रपति जू को वश,
जगत प्रशस सुख सजन समीप को।
करण उदार देवतरु सो पुनीत सार,
उम्मर दराज सजि साहस प्रदीप को।
चन्दन सो चन्द्र सो चहूधा चारु चन्द्रिका सो,
दीप दीप छायो यश मदन महीप को॥

२ कल्पतरु कञ्ज से सकल करणी के कोष,
प्रभू कौं प्रमाणिक प्रचण्ड वलवेश के,
भञ्जन दरिद्र गढ गञ्जन गनीमनके,
मालिक मलूक जग जालिम हमेश के।

सुकवि खुमान मोद उनके उजोर वीर,
सज के समूह है रखैया वृज-देश के।
कृष्ण कुल-मडन अरनि दल-दण्डन ये,
हाथी दे नहात हैं महीप मदनेश के॥

कविता इनकी वश परपरागत सम्पत्ति है। इनके पुत्र जीवनसिंह जी महाराज भंवरपाल के दरबार में कविता करते थे और उनके पुत्र कृष्णाकरजी भी कवि रहे। जीवनसिंह जी का एक कवित्त देखिए—

उदित उमगी महाराज श्री भमरपाल,
करण करोली में प्रगट दरसावे जू।
हाथी देत हरषि हलारन कविन्द्रन कू,
वाजन के वृन्दन कू बाटत ही पावै जू।
जीवन अनेकन कू बकसें इनाम भारी,
ग्रामन की बकस विशेष चित्त लावै जू।
लावे नहीं द्वार आवे सपति कुबेरहू की,
पावै जो सुमेर ताहि तुरत लुटावै जू॥



परिशिष्ट ४

सहायक ग्रन्थों की सूची

१—संस्कृत

१	अग्निपुराण		
२	अभिनवगुप्त	—	लोचन
३	कालिदास	—	मेघदूत
४	कालिदास	—	शृंगारतिलक
५.	केन, कठ, प्रश्न आदि उपनिषद्		
६	गीता		
७	जयदेव	—	गीतगोविन्द
८	दुर्गासप्तशती		
९.	धनजय	—	दशरूपक
१०.	पचतत्र		
११	भरत	—	नाट्यशास्त्र
१२	भर्तृहरि	—	नीतिशतक
१३	भागवत	—	दशमस्कध
१४	महाभारत	—	स. ध प्रेस, मुरादाबाद
१५	मत्स्य पुराण	—	न. कि प्रेस, लखनऊ
१६	मम्मट	—	काव्यप्रकाश
१७	वाल्मीकि	—	रामायण
१८	विश्वनाथ	—	साहित्यदर्पण
१९	सिंहासन द्वात्रिंशिका		
२०	हितोपदेश		

२. हिन्दी —

१	अलवर राज्य का प्राचीन इतिहास	—	हस्तलिखित
२.	अरावली	—	मासिक पत्रिका के अक
३	ओझा	—	प्राचीन भारतीय लिपिमाला
४	गलाब राय	—	नवरस
५	चरणदास	—	भक्ति सागर
६	जोशी	—	अलवर राज्य का इतिहास
७	तेजप्रताप	—	साप्ताहिक पत्र के अक
८	दास, मित्र और हीरालाल की रिपोर्टें	—	का ना प्र सभा
९	दीनदयालु	—	अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय

१०. दीक्षित — व्रजेंद्रवंशभास्कर
११ देव — सुजानविनोद
१२. देशराज — जाट जाति का इतिहास
१३. धीरेन्द्र वर्मा — अष्टछाप
१४ धीरेन्द्र वर्मा — हिन्दी भाषा का इतिहास
१५ नगेन्द्र — रीतिकाल की भूमिका
१६ नगेन्द्र वर्मा — महाराज ईश्वरसिंह का जीवन चरित्र
१७. परशुराम चतुर्वेदी — उत्तरी भारत में संत परम्परा
१८ पिनाकीलाल — हमारे राजाओं की कहानी
१९. पोद्दार — काव्यकल्पद्रुम
२० व्रजपत्र — मासिक पत्र के अंक
२१ भरतपुर के साहित्यिक — हस्तलिखित
२२ भागीरथ मिश्र — हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास
२३. भारत वीर — साप्ताहिक के अंक
२४. मत्स्यनिर्माण — हस्तलिखित
२५ महेशचन्द्र — जयविनोद
२६ माणिक्य मैथिल — बल्लेशरहस्य-हस्तलिखित
२७ राम रतन — भक्तिकाव्य
२८ राजेश्वर प्रसाद — रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन
२९ शुकदेव बिहारी — हिन्दी साहित्य का इतिहास पर प्रभाव
३० शुक्ल, चतुरसेन, दास, मिश्रबन्धु, रसाल, शिवसिंह आदि — हिन्दी साहित्य का इतिहास
३१ सत्येन्द्र — व्रजलोक साहित्य का अध्ययन
३२ सुधीन्द्र — हिन्दी कविता में युगान्तर
३३ सोमनाथ गुप्त — हिन्दी नाटक साहित्य
३४ हजारीप्रसाद — हिन्दी साहित्य की भूमिका
३५ हंस स्वरूप — जयमत मंजरी

३. अंग्रेजी

1 Administration Reports of Bharatpur, Alwar etc for several years
2 Alwar Directory
3 Blockmann — English Translation of Ain-i-Akbari.
4 Drake Burkmann — Gazetteer of E R States

5. Gazetteer of India – Rajputana Vols I, III
6 Glimpses of Alwarendra Silver Jubilee
7 Growse – Mathura Gazetteer
8 Grierson – Linguistic Survey of India
9 Hemchandra Ray – Dynastic History of Ancient India I, II
10 Hendley – Alwar and its Art Treasure
11 Imperial Gazetteer of India Vol XI
12 Jha – Translation of Kavya Prakash
13 Jwala Sahai – Ever Loyal Bharatpur
14 Jwala Sahai – History of Bharatpur
15 Macdonald – India's Past
16 Peterson – Catalogue of the Sanskrit MSS. in Alwar
17 Powlett – Alwar Gazetteer
18 Powlett – Gazetteer of Karauli
19 Sarkar – Moghul Rule
20. Sharma – Bayana Through Ages
21 The three sieges of Bharatpur
22 Tod – Annals of Rajasthan
23 Walter – Gazetteer of Bharatpur



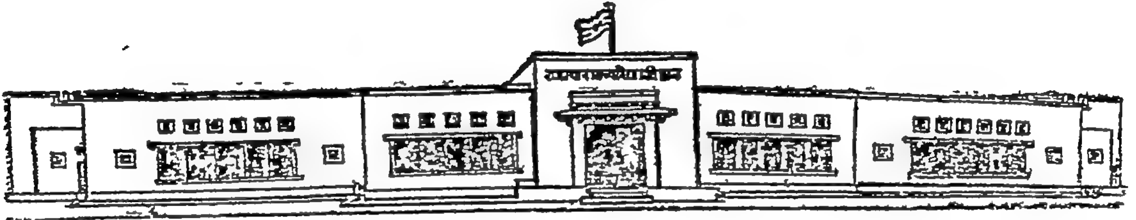


राजस्थान सरकार

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

(Rajasthan Oriental Research Institute)

जोधपुर



सूची-पत्र



प्रधान सम्पादक—पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

अप्रेल, १९६३ ई०

राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला

प्रधान सम्पादक—पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य

++++++++++

प्रकाशित ग्रन्थ

१. संस्कृत

१ प्रमाणमंजरी, तार्किकचूडामणि सर्वदेवाचार्यकृत, सम्पादक – मीमांसान्यायकेसरी प० पट्टाभिरामशास्त्री, विद्यासागर। मूल्य—६.००

२ यन्त्रराजरचना, महाराजा सवाईजयसिंह-कारित। सम्पादक—स्व० प० केदारनाथ ज्योतिर्विद्, जयपुर। मूल्य—१.७५

३ महर्षिकुलवैभवम्, स्व० प० मधुसूदन ओझाप्रणीत, भाग १, सम्पादक—म० म० प० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी। मूल्य—१०.७५

४. महर्षिकुलवैभवम्, स्व० पं० मधुसुदन ओझा प्रणित, भाग २, मूलमात्रम् सम्पादक—प० श्री प्रद्युम्न ओझा। मूल्य—४.००

५ तर्कसंग्रह, अन्नंभट्टकृत, सम्पादक—डॉ. जितेन्द्र जेटली, एम ए, पी-एच डी., मूल्य—३.००

६ कारकसंबधोद्योत, प० रभसनन्दीकृत, सम्पादक—डॉ० हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए, पी-एच. डी.। मूल्य—१.७५

७. वृत्तिदीपिका, मौनिकृष्णभट्टकृत. सम्पादक—स्व.पं. पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी, साहित्याचार्य। मूल्य—२.००

८ शब्दरत्नप्रदीप, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक—डॉ हरिप्रसाद शास्त्री, एम ए, पी-एच.डी। मूल्य—२.००

९. कृष्णगीति, कवि सोमनाथविरचित, सम्पादिका—डॉ. प्रियबाला शाह, एम ए, पी-एच. डी., डी लिट्। मूल्य—१.७५

१० नृत्तसंग्रह, अज्ञातकर्तृक, सम्पादिका—डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए, पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य—१.७५

११. शृङ्गारहारावली, श्रीहर्षकविरचित, सम्पादिका—डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए, पी-एच डी, डी लिट्। मूल्य—२.७५

१२ राजविनोद महाकाव्य, महाकवि उदयराजप्रणीत, सम्पादक—प० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए., उपसञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य—२.२५

१३. चक्रपाणिविजय महाकाव्य, भट्टलक्ष्मीधरविरचित, सम्पादक—केशवराम काशीराम शास्त्री मूल्य—३.५०

१४. नृत्यरत्नकोश (प्रथम भाग), महाराणा कुम्भकर्णकृत, सम्पादक—प्रो. रसिकलाल छोटालाल पारिख तथा डॉ० प्रियबाला शाह, एम ए, पी-एच. डी., डी लिट्। मूल्य—३.७५

१५. उक्तिरत्नाकर, साधसुन्दरगणिविरचित, सम्पादक—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी, पुरातत्त्वाचार्य, सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य—४.७५

१६ दुर्गापुष्पाञ्जलि, म०म० प० दुर्गाप्रसादद्विवेदिकृत, सम्पादक—प० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी, साहित्याचार्य। मूल्य—४.२५

१७ कर्णकुतूहल, महाकवि भोलानाथविरचित, सम्पादक—प० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए, उप-संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। इन्हीं कविवर की अपर कृति श्रीकृष्णलीलामृतसहित। मूल्य—१.५०

१८ ईश्वरविलासमहाकाव्यम्, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक—भट्ट श्रीमथुरानाथशास्त्री, साहित्याचार्य, जयपुर। मूल्य—११.५०

१९. रसदीर्घिका, कविविद्यारामप्रणीत, सम्पादक—प० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम.ए. उपसंचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य—२.००

२०. पद्यमुक्तावली, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक—भट्ट श्रीमथुरानाथ शास्त्री, साहित्याचार्य। मूल्य—४.००

२१. काव्यप्रकाशसकेत, भाग १ भट्टसोमेश्वरकृत, सम्पादक—श्रीरसिकलाल छो० पारीख, मूल्य—१२ ००
२२. ,, भाग २ ,, ,, मूल्य—८ २५
२३. वस्तुरत्नकोष, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०—डॉ० प्रियबाला शाह। मूल्य—४-००
२४. दशकण्ठवधम्, प० दुर्गाप्रसादद्विवेदिकृत, सम्पादक—प० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी। मूल्य—४.००
२५. श्री भुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्, सभाष्य, पृथ्वीधराचार्यविरचित, कवि पद्मनाभकृत, भाष्यसहित पूजापञ्चाङ्गादिसवलित। सम्पादक—प श्रीगोपालनारायण बहुरा। मूल्य—३ ७५
२६. रत्नपरीक्षादि सप्त ग्रन्थ संग्रह, ठक्कुर फेरू विरचित, सशोधक—पद्मश्री मुनि जिनविजयजी, पुरातत्त्वाचार्य। मूल्य—६.२५
२७. स्वयभूछन्द, महाकवि स्वयभूकृत, सम्पा० प्रो० एच डी. वेलणकर। मूल्य—७.७५
२८. वृत्तजातिसमुच्चय, कवि विरहाङ्करचित, ,, ,, ,, मूल्य—५.२५
२९. कविदर्पण, अज्ञातकर्तृक, ,, ,, ,, मूल्य—६ ००

२. राजस्थानी और हिन्दी

३० कान्हडदेप्रबन्ध, महाकवि पद्मनाभविरचित, सम्पादक—प्रो० के.बी व्यास, एम. ए। मूल्य—१२.२५
३१. क्यामखां-रासा, कविवर जान-रचित, सम्पादक—डॉ दशरथ शर्मा और श्रीअगरचन्द नाहटा। मूल्य—४.७५
३२. लावा-रासा, चारण कविया गोपालदानविरचित, सम्पादक—श्रीमहतावचन्द खारैड। मूल्य—३.७५
३३. वांकीदासरी ख्यात, कविराजा वांकीदासरचित, सम्पादक—श्रीनरोत्तमदास स्वामी, एम ए., विद्यामहोदधि। मूल्य—५ ५०
३४. राजस्थानी साहित्यसंग्रह, भाग १, सम्पादक—श्रीनरोत्तमदास स्वामी, एम ए.। मूल्य—२.२५
३५. राजस्थानी साहित्यसग्रह, भाग २, सम्पादक—श्रीपुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम. ए., साहित्यरत्न। मूल्य—२ ७५
३६. कवीन्द्र कल्पलता, कवीन्द्राचार्य सरस्वतीविरचित, सम्पादिका—श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत। मूल्य—२ ००
३७. जुगलविलास, महाराज पृथ्वीसिंहकृत, सम्पादिका—श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत। मूल्य—१ ७५
३८. भगतमाळ, ब्रह्मदासजी चारण कृत, सम्पादक—श्री उदैराजजी उज्ज्वल। मूल्य—१ ७५
३९. राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिरके हस्तलिखित ग्रथोंकी सूची, भाग १। मूल्य—७ ५०
४०. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठानके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूची, भाग २। मूल्य—१२.००
४१. मुहता नैणसीरी ख्यात, भाग १, मुहता नैणसीकृत, सम्पादक—श्रीबद्रीप्रसाद साकरिया। मूल्य—८ ५०
४२. ,, ,, ,, ,, २, ,, ,, ,, मूल्य—९ ५०
४३ रघुवरजसप्रकास, किसनाजी आढाकृत, सम्पादक—श्री सीताराम लाळस। मूल्य—८ २५
४४ राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची, भाग १ सं पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय। मूल्य—४.५०
४५ राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची, भाग २—सम्पादक—श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया एम ए, साहित्यरत्न। मूल्य—२ ७५
४६ वीरवांण, ढाढी बादरकृत, सम्पादिका—श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत। मूल्य—४ ५०
४७. स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण-ग्रन्थ-सग्रह-सूची, सम्पादक—श्रीगोपाल नारायण बहुरा, एम. ए. और श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी, दीक्षित। मूल्य—६.२५
४८. सूरजप्रकास, भाग १—कविया करणीदानजी कृत, सम्पादक—श्री सीताराम लाळस। मूल्य—८.००
४९ ,, ,, २ ,, ,, ,, ,, मूल्य—९.५०
५० नेहतरग, रावराजा बुधसिंह कृत—सम्पादक—श्री रामप्रसाद दाधीच एम.ए. मूल्य—४ ००
५१ मत्स्यप्रदेश की हिन्दी-साहित्य को देन, प्रो मोतीलाल गुप्त एम.ए ,पी एच डी. मूल्य—७ ००

प्रेसों में छप रहे ग्रंथ

संस्कृत

१. शकुनप्रदीप, लावण्यशर्मरचित, सम्पादक–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
२. त्रिपुराभारतीलघुस्तव, धर्माचार्यप्रणीत, सम्पादक–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
३. करुणामृतप्रपा, भट्ट सोमेश्वरविनिर्मित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
४. बालशिक्षाव्याकरण, ठक्कुर सग्रामसिंहरचित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
५. पदार्थरत्नमजूषा, प० कृष्णमिश्रविरचित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
६. वसन्तविलास फागु, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०–श्री एम सी मोदी ।
७ नन्दोपाख्यान, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०–श्री बी जे सांडेसरा ।
८. चान्द्रव्याकरण, आचार्य चन्द्रगोमिविरचित, सम्पा०–श्री बी. डी. दोशी ।
९ प्राकृतानन्द, रघुनाथकविरचित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्री जिनविजयजी ।
१० कविकौस्तुभ, प० रघुनाथरचित, सम्पा०–श्री एम. एन गोरी ।
११. एकाक्षर नाममाला—सम्पादक–मुनि श्री रमणीकविजयजी ।
१२. नृत्यरत्नकोश, भाग २, महाराणा कुभकर्णप्रणीत, सम्पा०–श्री आर. सी. पारीख और डॉ प्रियबाला शाह ।
१३. इन्द्रप्रस्थप्रबन्ध, सम्पा०–डॉ. श्रीदशरथ शर्मा ।
१४. हमीरमहाकाव्यम्, नयचन्द्रसूरिकृत, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
१५ स्थूलिभद्रकाकादि, सम्पा०–डॉ० आत्माराम जाजोदिया ।
१६ वासवदत्ता, सुबन्धुकृत, सम्पा०–डॉ० जयदेव मोहनलाल शुक्ल ।
१७. वृत्तमुक्तावली, कविलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट कृत; स० प० श्री मथुरानाथजी भट्ट
१८ आगमरहस्य, स्व० पं० सरयूप्रसादजी द्विवेदी कृत, सम्पा०–प्रो० गङ्गाधरजी द्विवेदी ।

राजस्थानी और हिन्दी

१९ मुहता नैणसीरी ख्यात, भाग ३, मुहता नैणसीकृत, सम्पा०–श्रीबद्रीप्रसाद साकरिया ।
२० गोरा बादल पदमिणी चऊपई, कवि हेमरतनकृत सम्पा०–श्रीउदयसिंह भटनागर, एम ए.
२१. राजस्थानमें सस्कृत साहित्यकी खोज, एस आर भाण्डारकर, हिन्दी अनुवादक–श्रीब्रह्मदत्त त्रिवेदी, एम ए ,
२२ राठौडांरी वशावली, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
२३ सचित्र राजस्थानी भाषासाहित्यग्रन्थसूची, सम्पादक–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
२४ मीरा-बृहत्-पदावली, स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण द्वारा सकलित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
२५. राजस्थानी साहित्यसग्रह, भाग ३, संपादक–श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी ।
२६ सूरजप्रकाश, भाग ३, कविया करणीदानकृत सम्पा०–श्रीसीताराम लाळस ।
२७ रुक्मिणी-हरण, सांयाजी झूला कृत, सम्पा० श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम ए ,सा रत्न।
२८ सन्त कवि रज्जबः सम्प्रदाय और साहित्य डॉ० ब्रजलाल वर्मा ।
२९ समदर्शी आचार्य हरिभद्रसूरि, श्री सुखलालजी सिंघवी ।
३० पश्चिमी भारत की यात्रा, कर्नल जेम्स टॉड, अनु० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम ए.

अंग्रेजी

31. Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts Part I, R.O.R.I. (Jodhpur Collection), ed, by Padamashree Jinvijaya Muni, Puratattvacharya
32 A List of Rare and Reference Books in the R.O.R.I., Jodhpur, ed, by P D Pathak, M A

विशेष–पुस्तक-विक्रेताओं को २५% कमीशन दिया जाता है ।